तेरापंथ का राजस्थानी को अवदान

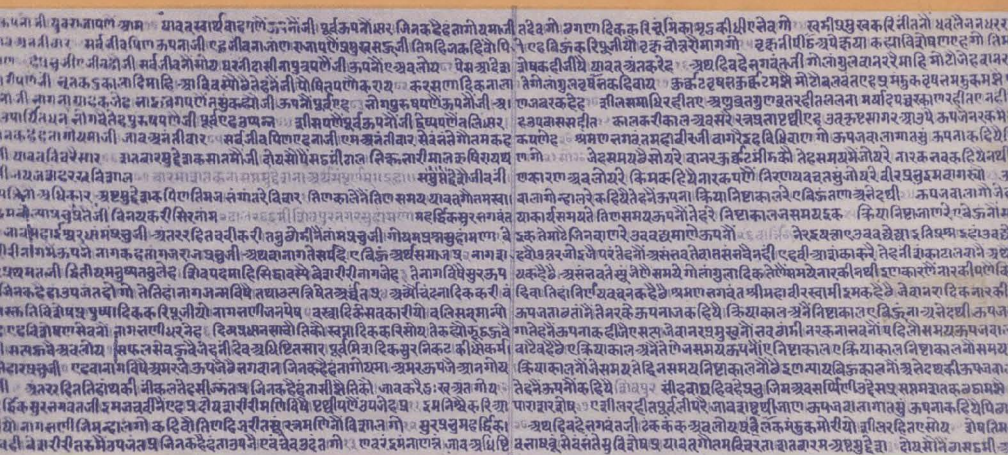

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापन्थ का राजस्थानी को अवदान

सम्पादक मण्डल :

डॉ० देवनारायण शर्मा

डॉ० देव कोठारी डॉ० किरण नाहटा

श्री जगतराम भट्टाचार्य डॉ० हरिशंकर पाण्डेय

डॉ० जिनेन्द्र जैन

जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं

(मान्य विश्वविद्यालय)

१९९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

० प्रकाशक : जैन विश्व भारती संस्थान
(मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं-३४१ ३०६ (राज०)

० © सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन

० संस्करण : प्रथम १९९३

० मूल्य : ४०.०० रुपये

० मुद्रक : जैन विश्व भारती प्रेस
लाडनूं

तेरापन्थ का राजस्थानी को अवदान

TERĀPANTHA KĀ RĀJASTHĀNĪ KO AVADĀNA

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशीर्वचन

भाषा अपने आप में महत्त्वपूर्ण नहीं होती। वह तब महत्त्वपूर्ण बनती है, जब कोई संवेदनशील साहित्यकार उसे अपना माध्यम बनाता है। राजस्थानी को भी अनेक समर्थ साहित्यकारों ने अपनी अभिव्यञ्जना का माध्यम बनाया है। कुछ वर्षों पहले तक राजस्थानी को केवल एक बोली ही समझा जाता था, पर ज्यों-ज्यों राजस्थानी साहित्य प्रकाश में आ रहा है त्यों-त्यों लोग इसके महत्त्व को समझने लगे हैं। अब इसे एक भाषा-प्रतिष्ठा मिलना भी कठिन नहीं है।

तेरापंथ का राजस्थानी से गहरा सम्बन्ध-सम्पर्क रहा है। आद्यप्रवर्तक आचार्य भिक्षु से लेकर आज तक विपुल साहित्य लिखा गया है। पहले यह साहित्य लोक-लोचन के सामने नहीं था। इन कुछ वर्षों में इस दिशा में कुछ कार्य हुआ है। ज्यों-ज्यों विद्वान् इससे परिचित होते जा रहे हैं, त्यों-त्यों न केवल तेरापंथ का गौरव बढ़ा है, अपितु राजस्थानी भाषा के बारे में नई धारणाएँ बनने लगी हैं। राजस्थानी की समृद्धि में अनेक लोगों का सहयोग रहा है, उसमें तेरापंथ का सहयोग भी उल्लेखनीय माना जाने लगा है।

तेरापंथ के साहित्य को प्रकाश में लाने की दिशा में अभी तक नियोजन प्रयत्न नहीं हुआ। कुछ साहित्य प्रकाश में आया, उस पर कुछ संगोष्ठियाँ भी आयोजित हुईं। इससे तेरापंथ के वाङ्मय के सुसम्पादन की एक महत्त्वाकांक्षी परिकल्पना परिस्फुरित हुई है। उस पर काम भी शुरू हो गया है। जब यह पूरा काम सामने आयेगा तब निःसंदेह पता लगेगा कि तेरापंथ धर्म-संघ ने राजस्थानी भाषा की कितनी सेवा की है।

पिछले वर्ष (१८-२० अक्टूबर ९२) 'तेरापंथ का राजस्थानी को अवदान' विषय पर एक संगोष्ठी जैन विश्व भारती संस्थान मान्य विश्व विद्यालय ने आयोजित की थी। उसमें अनेक विद्वानों ने भाग लिया। अनेक सार्थक चर्चाएं हुईं। यह अच्छा हुआ कि संगोष्ठी मे पठित निबंधों को पुस्तकाकार संजो लिया गया। इससे भी कुछ बातें लोगों की समझ में आयेंगी, ऐसा विश्वास है।

३१. १०. ९३
नाहर भवन, राजलदेसर

आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाथेय

शब्द और अर्थ—दोनों में भेदाभेद संबंध है। दूध यदि घी से सर्वात्मना अभिन्न होता तो मंथन या बिलौना अनावश्यक होता। दूध और घी यदि सर्वथा भिन्न होते तो घी के लिए दूध को जमाना और दही को मथना जरूरी नहीं होता। दोनों में सापेक्ष अभेद है इसलिए दूध से घी की आशा की जाती है और दोनों में सापेक्ष भेद है इसलिए मंथन होता है, दूध से नवनीत अलग हो जाता है।

अर्थ शून्य शब्द और शब्द शून्य अर्थ—दोनों अपने आपमें जटिल होते हैं। दोनों की जटिलता को कम करने के लिए भाषा का विकास किया गया। वह भाषा समर्थ होती है, जिसकी शब्द-शक्ति अर्थ का संग्रह और उसकी अभिव्यक्ति में सक्षम होती है। कानून की शब्दावलि में राजस्थानी भाषा नहीं है, मात्र बोली है, किन्तु क्षमता की दृष्टि से वह एक समर्थ भाषा है। उसकी शब्द-संहिता अर्थ के नियोजन और अभिव्यंजना में बहुत सक्षम है।

तेरापंथ का उद्भव राजस्थान में हुआ। उसका मुख्य विहार क्षेत्र भी राजस्थान रहा इसलिए उसने राजस्थानी का प्रचुर उपयोग किया और उसकी साहित्यिक समृद्धि गौरवपूर्ण बन गई। आचार्य भिक्षु, जयाचार्य और आचार्य तुलसी—इन तीनों महान् आचार्यों की विशाल रचनाएं राजस्थानी के भण्डार की महार्ध्य मणिमुक्ता हैं। साधु-साध्वियों तथा गृहस्थ श्रावकों ने भी पर्याप्त मात्रा में लिखा। जैन आगम प्राकृत में हैं। राजस्थानी का प्राकृत से घनिष्ठ संबंध है इसलिए सैकड़ों-सैकड़ों प्राकृत के शब्दों का राजस्थानी में प्रयोग हुआ है।

जैन विश्व भारती संस्थान, मान्य विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित त्रिदिवसीय संगोष्ठी (१८-२० अक्टूबर ९२) में उस विशाल साहित्य पर कुछ साहित्यकारों ने चञ्चुपात किया है। यह चञ्चुपात उस समृद्ध साहित्य के मूल्यांकन का साधन बन सके, यह विश्वास निरालंब नहीं है।

३१. १०. ९३
नाहर भवन, राजलदेसर

युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी बात

"धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई"

समाज में जब प्रदूषण प्रचंड होने लगता है तब उसके विरुद्ध धर्म-क्रांति के लिए भूमिका तैयार होती है और ऐसे ही अवसर पर किसी महापुरुष का आविर्भाव होता है—संभवामि युगे-युगे। धर्म का कर्मकांड और बाह्य कलेवर जब प्रधान हो जाता है तथा धर्म का हृदय एवं उसकी आत्मा के तत्त्व गौण हो जाते हैं तो फिर या तो धर्म-विनाश होता है या धर्मक्रांति। तेरापंथ जैन धर्म एवं संस्कृति में एक धर्मक्रांति है। अतः भाषा एवं साहित्य में इसका प्रभाव अवश्यम्भावी है।

तेरापंथ के सभी आचार्यों एवं प्रायः इसके सभी संतों एवं साध्वियों की साहित्य-साधना का माध्यम राजस्थानी भाषा ही रही है। तेरापंथ-परम्परा ने इतनी कम उम्र में जितना सारस्वत कार्य किया है, वह देखकर आश्चर्य होता है। चाहे चरित्र-लेखन हो या इतिहास, धर्म हो या दर्शन, स्तुति हों या ढालें, व्याकरण हो या ज्योतिष—शायद वाङ्मय की सभी विधाओं में तेरापंथ का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रथम आचार्य भीखणजी का वाङ्मय साधना का साहित्य है। दर्शनके गूढ़ तत्त्व कबीर की तरह उन्होंने लोकभाषा में नरचा होता तो शायद उसका लाभ नहीं मिलता—"भाषा निबद्धमति मंजुलमातनोति।" फिर जयाचार्य ने न केवल पुस्तकों का सांधिकीकरण किया बल्कि लिपि सुधार कर मुद्रांकन भी प्रारम्भ कराया। अन्य आचार्यों एवं साधु-साध्वियों ने राजस्थानी साहित्य का संबर्धन किया। इन सबों का भव्य रूप हम आचार्य तुलसी एवं युवाचार्य की रचनाओं में देखते हैं। इन दोनों को तो मैं जैनागम का विश्वकर्मा एवं जैन वाङ्मय की गंगोत्री का भगीरथ मानता हूँ।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि इस शिशु विश्वविद्यालय ने राजस्थान की साहित्यिक विरासत के ऋण को चुकाने का विनम्र प्रयास किया है। यह हमारा पूर्णविराम नहीं, प्रथम चरण है।

आचार्यश्री तुलसी ने प्रेरणा दी और डा० देव कोठारी एवं डा० किरण नाहटा ने न केवल योजना दी बल्कि संगीति का निर्देशन भी किया। उन्हें हम भूल नहीं सकते।

विश्वविद्याल के प्राकृत विभाग ने सब कुछ किया और विश्वविद्यालय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धन्य हुआ।

मैं न राजस्थानी-भाषी हूँ, न तेरापंथी किन्तु राजस्थानी की मधुरता एवं तेरापंथ की शुचिता का संस्पर्श पाकर कृत-कृत्य हूँ।

१५ नवम्बर, १९९३
आचार्यश्री तुलसी जन्म दिवस

रामजी सिंह
कुलपति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्ररोचना

'श्रद्धा स्वीकारो तेरापंथ रा अधिदेवता'

जहाँ की धरती रत्नगर्भा के पावन अभिधान से अभिहित है, जो अपनी वीरता, युद्धकला-कौशल, पवित्रता एवं अनेक दुर्लभ रत्नों की खनि है, जहाँ की भूमि प्राचीनकाल से ही अनेक अवतार, ऋषि, महर्षि एवं वीरों की जीवन स्थली है। जिस देश की मिट्टी त्याग, बलिदान, आत्मसमर्पण और सर्वस्व-विसर्जन की पावन सुगन्धि से सुवासित है, आज भी कण-कण इस तथ्य के साक्षी हैं कि यह प्रदेश राणासांगा, राणाप्रताप आदि जैसे धौरेय-गुण-सम्पन्न, पराक्रम-चरित्र-निष्ठ पुत्रों को जन्म दिया, पद्मिनी जैसी हजारों वीरांगना-सती-कुलवन्तियों का जनक बना तो दूसरी तरफ यहीं की मीरा सदेह कृष्ण में समा गई। क्रांतद्रष्टा-आचार्य भिक्षु, प्रतिभा-प्रवीण श्री मज्जयाचार्य एवं आधुनिक विश्व की महान् उपलब्धि, वाक्पति के सार्थक-अभिधान से अलंकृत आचार्यश्री तुलसी का सृजन भी वंदनीया मारुधरी-नंदना कुलवंती वदना के निरूपम एवं निर्वद्य-गोद में हुआ। इसी उर्वरा भूमि ने अनेक महापुरुषों के साथ विविध कलाओं एवं नव्य-साहित्यिक संविधानकों की महार्घ्य सम्पत्ति संसार को दी।

राजस्थान की धरती पर अनेक भाषाओं का अनवच्छिन्न प्रवाह आदि-काल से प्रवाहित है। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा का प्रभूत विकास इस प्रदेश की महती विशिष्टता है।

'गामगहेलरी' की तरह निसर्ग-रमणीयता, काम्य-कमनीयता एवं चारु-चर्वणीयता से युक्त राजस्थानी भाषा अत्यन्त समृद्ध है। इस भाषा में अनेक कवि, कथाकार एवं व्याख्याकार हुए हैं। सहस्रों ग्रन्थों—महाकाव्य, खंडकाव्य, चरितकाव्य, नीतिकाव्य, गीतिकाव्य गद्यसाहित्य एवं कथासाहित्य, का सृजन हुआ है। कुछ की ओर तो विद्वानों का ध्यान गया, प्रकाशन भी हुआ लेकिन आज भी सहस्राधिक ग्रन्थ संग्रहालयों एवं ग्रन्थागारों की शोभा बढ़ाते हुए अपने निर्वाण के अन्तिम क्षण गिन रहे हैं।

राजस्थान में अनेक आचार्य एवं सम्प्रदायों का उदय हुआ। विविध मनीषियों ने अपने अनुसार अपनी ज्ञान-गंगा को सामान्यजन के लिए प्रवाहित किया। श्वेताम्बर जैन परम्परा में सन् १७८३ ई० में आचार्य भिक्षु जैसे महान् क्रांतिकारी एवं निर्व्याज-ऋजुता-सम्पन्न सिद्ध-साधक का जन्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ, जिसने एक नये पंथ का निर्माण किया। जो आज तेरापन्थ के नाम से प्रसिद्ध है।

सम्मान्य आचार्य भिक्षु से लेकर आधुनिक काल के भारत-ज्योति आचार्य तुलसी तक नौ आचार्य एवं लगभग १००० साधु-साध्वियाँ हो चुकी हैं। त्याग, तपस्या, व्रत, उपवास एवं आचार-निष्ठा में यह पंथ श्रेष्ठ है, साथ ही प्रत्येक साधु-साध्वी, समण-समणी अध्ययनरत और प्रतिभा-सम्पन्न हैं। दीक्षा पूर्व शिक्षा पर प्रभूत बल दिया जाता है, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस पन्थ ने एक तरफ तुलसीराम को तराशकर समदर्शी आचार्य श्री तुलसी बना दिया तो दूसरी तरफ गवांरू बालक 'नत्थुआ' भी युवाचार्य महाप्रज्ञ जैसे श्रेष्ठ दार्शनिक, आशुकवि एवं सहस्रावधानी व्यक्तित्व बन गया।

इस पंथ के सन्तों द्वारा संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, राजस्थानी एवं अंग्रेजी साहित्य के विभिन्न विधाओं से सम्बद्ध अनेक महार्घ्य ग्रन्थों की विरचना की गई।

राजस्थानी साहित्य के क्षेत्र में यह पंथ सबसे आगे है। आचार्य भिक्षु से लेकर आचार्यश्री तुलसी तक राजस्थानी भाषा में शताधिक ग्रंथों का विरचन हुआ है।

"चर्चावादी कुशल-प्रशासक मीमांसक संगायक हो" आदि गुण सम्पन्न आचार्य भिक्षु के अनेक ग्रन्थ भिक्षुग्रन्थरत्नाकर (दो भागों) में संकलित हैं, जो उनकी महनीय-कवित्व-शक्ति एवं सारस्वत-प्रतिभा के चूड़ान्त निदर्शन हैं।

तेरापंथ के कवियों एवं लेखकों में भिक्षु स्वामी के बाद श्रीमज्जयाचार्य का प्रमुख स्थान है। श्रीजयाचार्य ने अनेक ग्रन्थों की विरचना की, जिसमें आगमों की व्याख्यायें—भगवती की जोड़, पण्णवणा की जोड़, उत्तराध्ययन की जोड़ आदि प्रसिद्ध हैं। राजस्थानी-साहित्य की प्राचीन-विधाओं—हुंडी दृष्टांत-साहित्य, चोढालियो, विलास, ढालियो, रास, ढालां, चौपई, सिखावण आदि का संवर्द्धन किया। उनकी रचनाएं आगम भाष्य, तत्त्वचिंतन, संस्मरण, आख्यान, स्तुति-काव्य, विधान-मर्यादा, व्याकरण, उपदेश आदि से सम्बद्ध हैं। संस्मरण-साहित्य में भिक्षु-दृष्टांत प्रसिद्ध है।

आचार्य परम्परा में जयाचार्य के बाद राजस्थानी-साहित्य-सम्वर्द्धकों में आचार्यश्री तुलसी का महत्वपूर्ण स्थान है। आपको संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा में 'महारथ' हासिल है। माणकमहिमा, डालिम-चरित्र, कालूयशोविलास मगनचरित्र, मां वदनां, नंदन-निकुंज, सोमरस आदि कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। कालूयशोविलास राजस्थानी साहित्य का मानक ग्रंथ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषा की प्रवहणीयता एवं अभिव्यक्ति की चारुता में आचार्य तुलसी का साहित्य बेजोड़ है।

आचार्यों के बाद पंथ के शताधिक साधु-साध्वियों ने राजस्थानी भाषा की प्रभूत अभ्यर्थना की है। मुनिश्री वेणीरामजी एवं मुनिश्री हेमराजजी आचार्य भिक्षु के समय के प्रसिद्ध लेखक हो चुके हैं। आचार्यश्री भारमलजी के शासन-काल के मुनिश्री कर्मचन्द जी का 'ध्यान' नामक ग्रन्थ एवं मुनिश्री जीवो जी के लगभग १० हजार पद्य प्रसिद्ध हैं। उनका 'शासन-विलास' महत्वपूर्ण है।

तृतीय आचार्य रायचन्दजी के दीक्षित शिष्य मुनिश्री गुलहजारी जी की कुछ गीतिकाएं आज भी उपलब्ध हैं। मुनिश्री छोगजी की 'जयछोग सुजना विलास' नामक कृति प्रसिद्ध है।

आधुनिक काल के भास्वर-भास्कर आचार्यश्री तुलसी का शासनकाल तेरापंथ का स्वर्णकाल कहा जा सकता है। इस काल में अनेक शेमुषी-प्रतिभा-सम्पन्न, सारस्वत-गुण-गुंफित कवि हो चुके हैं। इस काल ने भारतीय साहित्याकाश को एक ऐसा विद्योतित नक्षत्र समर्पित किया है, जो सहस्राब्दियों तक आने वाले काल को अपनी प्रखर-आभा से विद्योतित करता रहेगा। वक्तृता और लेखन उभयविध दुर्लभ-कलाओं से परिपूर्ण एवं महाप्रज्ञ के सार्थक अभिधान से अभिहित यह कलाकार निश्चित ही युग-युग तक युवक आचार्य-युवाचार्य बना रहेगा। संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा भी इस मनीषी की पावन-लेखनी का संस्पर्श पाकर धन्य हो गई।

मुनिश्री बुद्धमल जी अपनी माटी के कवि हैं। 'उणियारो', 'मिणकला', 'पगतियां' आदि इनके प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ हैं। ये सुप्रसिद्ध गीतिकार एवं गायक भी हैं। 'जागण रो हेलो' में संकलित १०८ गीत इनकी गीतिसृजन-प्रतिभा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आधुनिक साहित्यकारों में मुनिश्री काणमल जी की 'पायलिप्त', मयरावती' एवं 'जा सा सा' आदि प्रमुख रचनाएं हैं। इस परंपरा के साहित्यकारों में मुनिश्री दुलीचन्दजी का नाम अग्रगण्य है। सृजन-कला एवं सुस्वर गला रूप एकत्र—अलभ्यमान द्विविध तत्त्वों से मुनिश्री का व्यक्तित्व सम्पन्न है। 'आत्मबावनी', अध्यात्म-गीतांजली, मायलीबात आदि इनकी प्रमुख रचनाएं हैं। सौम्य-सृजन की सुगंधि से सुवासित मुनिश्री छत्रमल जी की लेखनी साहित्य की अनेक विधाओं में पहुँची है। 'अमृत रा गुटका' 'छत्रदोहावली' मंजुला आदि इनके प्रमुख प्रकाशित ग्रंथ हैं। मुनिश्री सुखलाल जी राजस्थानी गद्य एवं पद्य दोनों के विरचन में निष्णात हैं। मुनियों के अतिरिक्त अनेक साध्वियाँ इस क्षेत्र में काफी आगे हैं। साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी लेखन एवं वक्तृता के लिए विख्यात हैं।

अनेक मुनिगण ऐसे हैं जो विविधआयामी-प्रतिभा के धनी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्य-विरचना, गद्य-लेखन, गीत-निर्माण एवं नैसर्गिक-स्वरशास्त्र में पारंगत हैं। विस्तार-भय के कारण यहाँ सबका परिचय नहीं दिया जा सका है।

इस विशाल साहित्य की रसात्मकता के सरोवर में संसार स्नात हो सके, इसकी सुगंधि से चतुर्दिक वातावरण सुरभित हो सके, साहित्याचार्यों एवं रसिकों का जीवित हृदय परितोष को प्राप्त कर सके इसी श्रेष्ठ भावना से भावित होकर अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी, श्री युवाचार्य महाप्रज्ञ एवं साध्वी प्रमुखाश्री कनकप्रभाजी के निर्देशन में प्राकृत भाषा एवं साहित्य विभाग जैन विश्व भारती संस्थान, मान्य विश्वविद्यालय की ओर से दिनांक १८ से २० अक्टूबर १९९२ तक एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन किया गया, जिसमें भारत के लगभग २५ ख्यातिलब्ध विद्वानों ने अपना महार्घ्य योगदान दिया। सभी ने अपना-अपना शोध-निबन्ध प्रस्तुत किया। समीक्षा एवं शोध की दृष्टि में सभी निबन्ध उच्चकोटि के हैं। सीमित पृष्ठों को ही पुस्तकाकार देने से परिसंवाद में पठित कुछ शोध-निबन्धों को हम प्रकाशित नहीं कर रहे हैं। वे सभी विद्वान् धन्यवादार्ह हैं जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय निकालकर इस विद्या-यज्ञ की पूर्णता में सहायता की। इस राष्ट्रीय परिसंवाद के परिप्रेक्ष्य में भारत के दो विशिष्ट विद्वानों—डॉ० देवकोठारी, उदयपुर एवं डॉ० किरण नाहटा, बीकानेर को नहीं भुलाया जा सकता है जिनके सफल निदेशकत्व में यह कार्य सफल हुआ।

माता-पिता अपनी सन्तान के प्रति उदार होते हैं, अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति सन्तान के लिए समर्पित कर देते हैं। यहाँ भी ऐसा ही देखा गया। मातृ-संस्था जैन विश्वभारती ने सम्पूर्ण वित्तीय सहायता दी। माननीय अध्यक्ष महोदय श्री श्रीचन्दजी बैंगानी एवं आदरेण्य मन्त्री श्री झूमरमलजी बैंगानी ने इस यज्ञ में अपनी सहज उदारता का परिचय दिया। हम किसी कार्य के लिए जब भी गए, बिना 'ननुनच' किए ही इन लोगों ने आगे आकर कार्य पूर्ण किया। हम हृदय से इनके आभारी हैं। मातृ-संस्था के अन्य अधिकारी श्री समदड़िया जी, श्री बांठिया जी आदि ने काफी सहयोग दिया। हम उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

इस प्रसंग में दो वैसे महापुरुष याद आ रहे हैं जो धरती के भगवान् हैं। हम अल्पज्ञ, बुद्धिहीन और अगुणी तथा वे महासत्त्व गुण समुद्र एवं रत्नत्रय के उत्स हैं। उनके बारे में कुछ कहने के लिए हमारे शब्दों ने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी है। फिर भी उन्हीं की भक्तिवशात् उन्हीं से शक्ति प्राप्त कर हम अबोध उनके प्रति प्रणामाञ्जलि समर्पित करते हैं। वे महापुरुष हैं, अनादिकाल से अनवच्छिन्न रूप में प्रवाहित द्विपुटी परम्परा के दो तत्त्व—गुरु और शिष्य। कैसा दुर्लभ संयोग ? समर्थ गुरु आचार्यश्री तुलसी और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य गुरु के योग्य शिष्य महाप्रज्ञ—उन्हीं की महनीय-कृपा एवं अनाविल-आशीर्वाद से यह विद्या-यज्ञ पूर्ण हुआ। हम कामना करते हैं कि हम मणसा-वाचाकर्मणा इन महापुरुषों की सेवा में लगे रहें और हम लोगों का जीवन भी इन्हें ही लग जाए, जिससे युग-युगांतर तक ये महापुरुष संसारानल में दग्ध जीवों को शैत्य-पावनत्व प्रदान करते रहें, उनका शरण्य बनते रहें।

नव-शिशु विश्वविद्यालय इसलिए भी धनी है कि एक तरफ अनुशास्ता जैसा महान् मार्गदर्शक मिला है तो दूसरी तरफ ज्ञान के क्षेत्र में पितामह कुलाधिपति श्री श्रीचन्द रामपुरिया एवं डॉ० रामजी सिंह जैसे कुलपति मिले हैं। इनके प्रति हम कृतज्ञ हैं।

जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) के सम्पूर्ण प्राध्यापकों, छात्रों, अधिकारियों, कर्मचारियों आदि के प्रति हम कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं जिन्होंने इस कार्य में अपना अमूल्य योगदान दिया। इस ग्रन्थ के मुद्रण में जैन विश्व भारती प्रेस के समस्त अधिकारी एवं कर्मचारी-गण साधुवाद के पात्र हैं जिन्होंने स्वच्छ एवं सुन्दर मुद्रण कार्य कर इसे पुस्तकाकार प्रदान किया।

अन्त में हम उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं जिन्होंने परोक्ष या अपरोक्ष रूप में इस विद्या-यज्ञ की पूर्णता में सहयोग किया है।

लाडनूं
विजयादशमी, १९९३

विनयावनत
सम्पादक मण्डल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठ
☐ आशीर्वचन	: आचार्य श्री तुलसी	iii
☐ पाथेय	: युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ	iv
☐ अपनी बात	: डॉ० रामजी सिंह	v
☐ प्ररोचना		vii—xi
१. तेरापंथ का राजस्थानी गद्य-साहित्य —मुनि सुखलाल जी		१—८
२. राजस्थानी शब्द-सम्पदा को तेरापंथ का योगदान —डॉ० सियाराम सक्सेना		९—४१
३. राजस्थानी चरित काव्य-परम्परा और आचार्य तुलसीकृत चरित काव्य —डॉ० देव कोठारी		४२—६१
४. आचार्य भिक्षुकृत सुदर्शनचरित का काव्य-सौंदर्य —डॉ० हरिशंकर पाण्डेय		६२—७०
५. तेरापंथ के राजस्थानी साहित्य का कलापक्ष —डॉ० मनमोहन स्वरूप माथुर		७१—८३
६. आधुनिक राजस्थानी कविता को तेरापंथी सन्तों का योगदान —डॉ० मूलचन्द सेठिया		८४—९२
७. भिक्खु दृष्टान्त : एक अनुशीलन —साध्वी कानकुमारी		९३—१०१
८. कालूयशोविलास : विविध संगीतों का संगम —मुनि मधुकरजी		१०२—११२
९. सुदर्शनचरित में सुदर्शन का चरित्र-चित्रण —सुश्री निरंजना जैन		११३—११८
१०. आचार्य भिक्षु की साहित्य-साधना —साध्वी चन्दनबाला		११९—१३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. आचार्य भिक्षु की कृतियों का काव्यात्मक मूल्यांकन
—साध्वी निर्वाणश्री १३८—१४२
१२. उपदेशरत्न कथाकोश : एक विवेचन
—डॉ० किरण नाहटा १४३—१५२
१३. तेरापंथी राजस्थानी साहित्य की रूप-परम्परा
—डॉ० परमेश्वर सोलंकी १५३—१६०
१४. तेरापंथ का राजस्थानी में अनूदित साहित्य
—साध्वी जिनप्रभा १६१—१६७
१५. तेरापंथ के प्रमुख राजस्थानी कवि
—साध्वी पीयूषप्रभा १६८—१७५
१६. तेरापंथ के राजस्थानी कवियों में चारित्रिक संयोजन
—डॉ० लक्ष्मीकान्त व्यास १७६—१८४
१७. आचार्य भिक्षुकृत जम्बूचरित का सांस्कृतिक अध्ययन
—समणी स्थितप्रज्ञा १८५—१९३
१८. तेरापंथ-प्रबोध : एक अध्ययन
—समणी प्रतिभाप्रज्ञा १९४—२००
१९. तेरापंथ का राजस्थानी प्रबन्ध-काव्य
—डॉ० उमाकान्त गुप्त २०१—२१४
२०. तेरापंथी आस्था की धुन : 'नन्दन-निकुञ्ज'
—डॉ० एन० एल० कल्ला २१५—२१८
२१. आचार्यश्री तुलसी विरचित 'माणक-महिमा' और 'डालिम चरित्र' में आवर्तन के परिदृश्य : शैलीवैज्ञानिक संदृष्टि
—डॉ० कृष्ण कुमार शर्मा २१९—२२६
परिशिष्ट—लेखक-परिचय २२७—२२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापंथ का राजस्थानी गद्य-साहित्य

☐ मुनि सुखलाल

तेरापंथ का विपुल गद्य-साहित्य है। उसे मुख्य रूप से निम्न विधाओं में बाँटा जा सकता है—

१ ख्यात	१२ चर्चा प्रसंग
२ टब्बा	१३ ध्यान
३ वार्तिकाएं	१४ कथा-कहानी
४ रसा कसा	१५ परिसंवाद
५ हुंडी	१६ गद्य-कविता
६ सिद्धान्तसार	१७ संस्मरण
७ मरजादा	१८ सिखामण
८ लिखत	१९ प्रकीर्ण-पत्र
९ हाजरी, टहूको	२० बख्शीस पत्र
१० उत्तराधिकारपत्र	२१ संदेश-पत्र आदि
११ तत्त्व बोध, बोल थोकड़ा	

ख्यात—

तेरापंथ की 'ख्यात' का विधिवत् लेखन चतुर्थाचार्य जयाचार्य के युग में शुरू हुआ। इसके प्रमुख स्रोत थे मुनिश्री हेमराजजी तथा प्रमुख लेखक थे मुनिश्री कालूजी। मुनिश्री हेमराजजी आचार्य भिक्षु के न केवल प्रत्यक्ष द्रष्टा ही थे अपितु प्रमुख सहयोगी शिष्य भी थे। यही कारण है कि उनके द्वारा सौ वर्षों के अंतराल के बाद लिखे जाने के बावजूद भी ख्यात पूर्ण रूप से प्रामाणिक दस्तावेज है। मुनिश्री कालूजी के बाद इसके लेखक क्रमशः मुनिश्री चौथमलजी, मुनिश्री नथमलजी (युवाचार्य महाप्रज्ञ), मुनिश्री दुलीचन्दजी, मुनिश्री दुलहराजजी तथा मुनिश्री मधुकरजी रहे हैं। यह क्रम अब भी चालू है तथा मुनिश्री मधुकरजी इस कार्य में विशेष रूप से नियुक्त हैं। यद्यपि पिछले ३५ वर्षों में इसका भाषा-माध्यम हिन्दी बन गया है पर २०० वर्षों का तेरापंथ का इतिहास 'ख्यात' के रूप में राजस्थानी भाषा में ही लिखा जाता रहा है।

'ख्यात' में आचार्यों, साधु-साध्वियों तथा संघ की विशेष घटनाओं का उल्लेख है। पूरा वर्णन काँच की तरह स्पष्ट है। वह पूर्ण प्रामाणिकता से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखा गया है। शायद ही कोई ऐसा धर्म संघ होगा जो अपने इतिहास को इतना व्यवस्थित रख सका हो। इसके सैकड़ों-सैकड़ों हस्तलिखित पृष्ठ-पत्र हैं। यद्यपि मुख्य रूप से यह तेरापंथ की घटनाओं से ही आकीर्ण है पर प्रसंगतः तत्कालीन समाज, राजनीति, साहित्य तथा सम्प्रदायों का भी इसमें उल्लेख हुआ है।

टब्बा—

जैन आगमों की मूल भाषा प्राकृत है। राजस्थानी जानने वालों को लाभान्वित करने के लिए उस पर राजस्थानी में टब्बे लिखे जाते रहे हैं। एक प्रकार से ये शब्दार्थ तथा भावार्थ के मिश्रित प्रतिरूप होते हैं। इन्हें लिपिबद्ध करने का एक विशेष क्रम होता है। हस्तलिखित प्रतियों में बड़े अक्षरों में एक विशेष अन्तराल से सूत्र-पाठ लिखा होता है। उस अन्तराल में छोटे अक्षरों में अर्थ लिखा हुआ होता है। जिन साधु-साध्वियों को प्राकृत का ज्ञान नहीं होता वे ऐसी प्रतियों का प्रवचन के अवसर पर उपयोग करते हैं। इनके पढ़ने का भी एक क्रम होता है। पहले शब्द पढ़ना तथा फिर शब्दार्थ पढ़ना, यह इसका एक क्रम होता है। आचार्य भिक्षु ने ठाणां पर टब्बा लिखा है। जयाचार्य ने भी आचारांग सूत्र पर टब्बा लिखा है। आपके द्वारा लिखित टब्बे की यह विशेषता है कि उन्हें किसी प्रसंग में जहां भी कोई विसंगति प्रतीत हुई उसका दूसरे आगम से न्याय मिला कर उसे स्पष्ट किया है।

वार्तिकाएं—

स्पष्टता की इस विधा को वार्तिका कहा जाता है। न केवल जयाचार्य ने अपितु अनेक ग्रन्थों पर अनेक लोगों ने महत्वपूर्ण वार्तिकाएं लिखी हैं। ऐसी सैकड़ों-सैकड़ों वार्तिकाएं समय-समय पर लिखी जाती रही हैं। अकेले भगवती सूत्र पर सैकड़ों महत्त्वपूर्ण वार्तिकाएं लिखी हैं।

रसाकसा—

रसाकसा एक परिभाषिक शब्द-संकेत हैं। संस्कृत में इसका रूप रहस्याकर्षण समझा जाता है। शास्त्रों में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनका कोई स्पष्ट विधि-निषेध नहीं होता। उन्हें प्रकरण-संदर्भ से ही समझा जा सकता है। ऐसे रहस्यपूर्ण प्रसंगों को संकेतित करने के लिए 'रसाकसा' के रूप में विषयवार सूचियाँ बना ली जाती हैं। जब भी आवश्यकता होती है उन सूचियों के आधार पर मूल पाठ से इच्छित रहस्य को समझ लिया जाता है। पूरे शास्त्रों पर इस प्रकार के अनेक रसाकसा बने हुए हैं। ये रसाकसा किसी एक-एक व्यक्ति द्वारा नहीं लिखे गए हैं। समय-समय पर अनेक साधु-संतों तथा आचार्यों ने इनकी रचना की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुंडी—

हुंडियां एक प्रकार से विस्तृत विषय-सूचियां हैं। आगम तथा कुछ विशिष्ट विषयों पर अनेक हुंडियां लिखी गई हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं— १. निशीथ की हुंडी २. वृहत्कल्प की हुंडी ३. व्यवहार की हुंडी ४. भगवती की संक्षिप्त हुंडी ५. भ्रम विध्वंसन की हुंडी (इन सबके लेखक जयाचार्य हैं) ६. तीन सौ छह बोलां की हुंडी ७. एक सौ इक्यासी बोलां की हुंडी (आचार्य भिक्षु द्वारा) लिखी गई ८. लंका महंता की हुंडी ९. पुराण की हुंडी बहुत प्रसिद्ध है।

सिद्धान्त सार—

तेरापंथ के आद्य गुरु आचार्य भिक्षु के साहित्य का एक बड़ा भाग आगम-ग्रन्थों से अनुप्राणित रहा है। निश्चय ही उनका आगम स्वाध्याय अत्यंत पुष्ट था। जयाचार्य ने उसके एक-एक संदर्भ की बडी परिश्रम पूर्ण खोज की है। आज से सौ वर्ष पूर्व इस प्रकार की संदर्भित अध्ययन दृष्टि अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सिद्धांतसारों के दो रूप हैं। एक लघु तथा दूसरा वृहद्। उनकी सूची इस प्रकार है—

नव पदार्थ की	चौली	पर सिद्धांत सार	जयाचार्य
बारै व्रत री	,,	,,	,,
कालवादी	,,	,,	,,
पर्यायवादी	,,	,,	,,
मर्यादावली	,,	,,	,,
टीकम डोसी	,,	,,	,,
निक्षेप की चौपई		,,	,,
एकल री चौली		,,	,,
जिनाज्ञा री	,,	,,	,,
पोतियाबंध	,,	,,	,,
विनीत-अविनीत की चौपई		,,	,,
अनुकम्पा री		,,	,,
वृताव्रत		,,	,,
श्रद्धा		,,	,,
आचार लघु सिद्धांत सार		,,	,,
जिनाज्ञा	,,		,,
मिथ्यात्वी	,,		,,
श्रद्धा री चौपी पर सिद्धान्त सार			,,
वृताव्रत	,,	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनीत-अविनीत " "
एकल " "

तुलनात्मक अध्ययन हमारे वर्तमान युग की एक विशेष दृष्टि है। चतुर्थाचार्य जयाचार्य ने आज से सौ वर्ष पहले ही इसके महत्व को समझ लिया था। इसीलिए उन्होंने सिद्धान्तसार के साथ-साथ "आगमिक अधिकार" के नाम से तुलनात्मक अध्ययन की दिशा में एक और सुदृढ़ कदम उठाया था। उनका यह ग्रन्थ पूरा नहीं हो सका। पर यदि पूरा हो जाता तो न केवल हम उनके अगाध पांडित्य से ही परिचित होते अपितु आगम-साहित्य के बारे में हमें बहुत सारी गुत्थियों का भी समुचित उत्तर मिल जाता।

मरजादा—

धर्म-सम्प्रदायों की उपयोगिता को कायम रखने के लिए मर्यादाओं का अपना विशेष स्थान है। पूरा आगम साहित्य विशेषतः छेद सूत्र इन्हीं विधि-निषेधों से भरे पड़े हैं। आचार्य भिक्षु से लेकर आचार्य तुलसी तक तेरापंथ के सभी आचार्यों ने इस महत्व को आंक कर समयानुसार अनेक मर्यादाओं का निर्माण किया है। उनके पचासों पत्र संघ के साहित्य भण्डार में सुरक्षित हैं। निश्चिय ही इन मर्यादाओं ने तेरापंथ को स्पृहणीय संगठन क्षमता प्रदान की है। इन सबके समुचित रूप को ही हम तेरापंथ का संविधान कह सकते हैं। इस दृष्टि से तृतीय आचार्य रायचन्दजी कृत 'पांच व्यवहार' कृति का भी अपना विशेष महत्त्व है।

लिखत—

मर्यादा का ही एक दूसरा रूप है लिखत। मर्यादा जहां आचार्य द्वारा निर्देशित होती है वहां लिखतों पर हस्ताक्षरों के रूप में सदस्यों की स्वीकृति अंकित रहती है। तेरापंथ का अपना कोई विधिवत् स्वीकृत संविधान नहीं है। समय-समय पर मर्यादाओं तथा लिखतों के रूप में जो व्यवस्था उभरी है वही इसका संविधान है। मर्यादामहोत्सव के अवसर पर जो जिस पत्र का सार्वजनिक रूप से वाचन-परिचय किया-कराया जाता है वह तेरापंथ का सबसे पहला मर्यादा-पत्र है। वही इस धर्मसंघ का अपना सुदृढ़ मेरूदंड है।

लिखत व्यक्तिगत रूप से भी होते हैं तथा सामूहिक रूप से भी होते हैं। इनसे तेरापंथ के साहित्य के संघीय ढांचे के विकास-विस्तार का भी सटीक परिचय मिलता है।

हाजरी—

मर्यादा का ही एक तीसरा रूप है हाजरी। आचार्य भिक्षु ने जो मर्यादाएं बनाई थी। उनका प्रतिदिन वाचन करने के लिए जयाचार्य ने हाजरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के रूप में उनका एक विधिवत संकलन कर दिया था। सब साधु-साध्वियां उनका प्रतिदिन वाचन करते थे। उनकी संख्या २७ है।

टहूको—

मर्यादाओं, हाजरियों के इस वाचन क्रम में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। कभी इनका दैनिक वाचन होता था तो कभी सप्ताह में दो बार एक बार तथा पाक्षिक वाचन भी होता रहा है। जब इसका दैनिक वाचन आवश्यक था तो इसे आहार करते समय भी पढ़ा जाता था। उस समय इसका नाम टहूका था। टहूका का अर्थ है कोयल का कूंजन। एक संत टहूका का वाचन करता तथा शेष सभी संत आहार करते-करते इसे सुनते जाते थे। समय और संगठन का यह एक अद्‌भुत प्रयोग था।

उत्तराधिकारपत्र—

तेरापंथ की परम्परा में वर्तमान आचार्य ही अपने भावी उत्तराधिकारी का चयन करता है। चयन की इस प्रक्रिया में उत्तराधिकार-पत्र का लेखन भी एक अनिवार्य परम्परा है। सभी आचार्यों ने अपने उत्तराधिकारी का नियुक्ति पत्र लिखा है।

बख्शीस-पत्र—

इसके अतिरिक्त आचार्य साधु-साध्वियों को बख्शीस, पत्र भी देते थे। ऐसे बख्शीस पत्रों का एक बहुत बड़ा संग्रह हो सकता है।

संदेश-पत्र—

आचार्य समय-समय पर अपने शिष्यों को व्यक्तिगत पत्र, संदेश पत्र भी लिखते रहे हैं। उनका भी एक बड़ा संकलन भण्डार में संगृहीत है।

आचार्यश्री तुलसी ने मुनिश्री मगनलालजी को एक खास रुक्का भी प्रदान किया था जो तेरापंथ इतिहास की एक विरल घटना है।

तत्त्वबोध—

सैद्धान्तिक स्पष्टताओं के लिए आचार्यों तथा संतजनों ने समय-समय पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। खंडन-मंडन की विधा में उन्हें उत्कृष्ट कोटि के तात्विक ग्रन्थ कहा जा सकता है। उनकी सूची इस प्रकार है—

१ भ्रम विध्वंसन
२ संदेह विषौषधि
३ जिनाज्ञा मुख मंडन
४ कुमति विहंडन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५ प्रश्नोत्तर सार्धशतक
६ चस्ता रत्नमाला
७ भिक्खु पृच्छा
८ झीणो ज्ञान
९ हरखचन्दजी स्वामी की चर्चा
१० खुलना बोल आदि-आदि

बोल थोकड़ा—

इस विषय में बोल थोकड़ों का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है। बोल-थोकड़े द्रव्यानुयोग के अन्तर्गत आते हैं। मूल आगमों में इस विषय में जो तात्विक प्रसंग आते हैं उन्हें बोल-थोकड़ों के रूप में संगृहीत कर कंठस्थ करने-कराने की पुष्ट परम्परा जैन सम्प्रदायों में रही है। तेरापंथ में इस संदर्भ में मुनिश्री हेमराज कृत एक पूरी हस्तलिखित पुस्तक थोकड़ों से भरी पड़ी है। पच्चीस बोल अर्थ संग्रह, पानां री चर्चा, गुण ठाणा द्वार, संजया, निमंठा, गमा, इकतीस द्वार, अल्पाबहुत आदि थोकड़े उसमें संगृहीत हैं।

इनके अतिरिक्त आचार्य भिक्षु द्वारा लिखित पांच भावांरो थोकड़ो तथा तेरह द्वार का थोकड़ा तो तत्त्वज्ञान की दृष्टि से अपूर्व थोकड़े हैं। उनमें सरल विधि से गहन तत्त्वों को अत्यन्त मनोवैज्ञानिक तरीके से समझाया गया है।

मुनिश्री हीरालालजी का ५२ बोलांरो थोकड़ा भी बहुप्रचलित थोकड़ा है।

चर्चा प्रसंग—

सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित होने के लिए तेरापंथ को अनेक चर्चाओं को अनेक घाटियों से होकर गुजरना पड़ता है। यद्यपि चर्चाएं प्राय: जय-विजय की भावना पर आधारित होती हैं, पर उन्हें "वादे-वादे जायते तत्त्व-बोध" के रूप में भी लिया जाता है। तेरापंथ के अनेक आचार्यों को चर्चाओं के अखाड़े में उतरना पड़ा है। दूरदर्शिता की बात यह है कि उन्हें लिपिबद्ध करके एक चिरस्थायी रूप प्रदान कर दिया गया है। ऐसी अनेक लिखित चर्चाओं में से कुछ ये हैं—

टीकम डोसी की चर्चा
जोगां री चर्चा
सपनां री चर्चा
अल्पमत्यां पर चर्चा
मघवागणी की चर्चा
चूरू री चर्चा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी चर्चाएं गहरी बौद्धिक क्षमताओं की प्रतीक हैं। इनसे तेरापंथ के विचार-दर्शन को एक तार्किक प्रखरता प्राप्त होती रही है। यही वह कारण है जिससे तेरापंथ की एक विचारता परिपुष्ट होती रही है।

ध्यान—

ध्यान मुख्य रूप से प्रयोग का विषय है। पर ध्यान की विधि को उट्टंकित करने के लिए शब्द का टाइपराइटर भी आवश्यक होता है। जयाचार्य तथा मुनिश्री कर्मचन्दजी के ध्यान इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

कथा-कहानियां—

उपदेश-दान साधु-जीवन का एक अभिन्न अंग है। उसमें कथा-कहानियों का भी अपना महत्वपूर्ण योगदान रहता है। सभी धर्म-परम्पराओं की तरह जैन धर्म का कथा साहित्य भी बहुत समृद्ध है। तेरापंथ ने उस समृद्धता को और अधिक पुष्ट किया है। आचार्य भिक्षु ने जो कहानियां लिखी हैं वे कथा-साहित्य की उत्कृष्ट निधियां हैं। उनकी कहानियां मार्मिक होने के साथ-साथ भाषा तथा शिल्प की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

जयाचार्य का "कथारत्नकोष" तो इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूण संग्रह ग्रन्थ है। लगभग ४५० कथाओं का यह संग्रह राजस्थानी के कथा-संग्रह का अमोल रत्न है। इन कहानियों का सम्पादन डॉ० किरण नाहटा ने किया है।

इस दृष्टि से मुनिश्री कालूजी का भी बहुत बड़ा महत्व है। कहा जाता है कि उन्होंने सैकडों-सैकड़ों स्वोपज्ञ कहानियां लिखी थीं, पर खेद की बात है वे सुरक्षित नहीं रह पाई।

परिसंवाद—

कथोपकथन के रूप में भावों को अभिव्यक्ति देने की दृष्टि से परिसंवाद का एक रूप इन वर्षों में तेरापंथ साहित्य में उभरा है। स्व. मुनिश्री नेमीचंदजी ने बालोपयोगी परिसंवादों की दृष्टि से काफी परिसंवाद लिखे हैं।

"निर्माण के बीज" में मैंने भी कुछ परिसंवाद लिखे हैं।

गद्य-कविता—

पुराने जमाने में कविता छन्दों के बंध से बंधी हुई थी। वर्तमान युग में कविता को भी गद्य के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा है। इस दृष्टि से युवाचार्य श्री ने कुछ कविताएं लिखी हैं। मुनि मोहनलालजी का 'तथ और कथ' भी एक सशक्त प्रस्तुति है।

संस्मरण—

संस्मरण साहित्य की दृष्टि से मुनिश्री हेमराजजी द्वारा प्रबोधित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा जयाचार्य द्वारा लिखित "भिक्षु दृष्टांत" न केवल तेरापंथ का ही अपितु राजस्थानी साहित्य का भी एक अमोल रत्न है। थोड़े में बहुत कह देना, शिष्ट-मिष्ट व्यंग्य, शब्दों का सटीक चुनाव आदि भिक्षु दृष्टांत की अनेक अनुपम विशेषताएं हैं।

इसी तरह हेम दृष्टांतों तथा श्रावकां रा दृष्टांतों का संग्रह भी अमूल्य कृतियां हैं।

सिखामण—

शिष्य प्रबोध की दृष्टि से सिखामण की एक सीधी चोट करने वाली विधा का भी संघ में विकास हुआ है। अतः अपने उत्तराधिकारियों को सीख देने की दृष्टि से जयाचार्य की गणपति सिखामण कृति भी महत्वपूर्ण है।

प्रकीर्ण-पत्र—

इन सबके अतिरिक्त प्रकीर्ण-पत्रों के अनेक संग्रह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। पुराने जमाने में न तो कागज इतना सुलभ था और न लिखने की प्रवृत्ति भी बहुत विकसित थी, पर फिर भी संघ के अनेक सदस्यों ने समय-समय पर अपनी कुछ अनुभूतियों कुछ स्मृतियों, कुछ आदेश-निर्देश छोटे-छोटे कागजों पर लिख लिए थे। कुछ पत्र तो ऐसे भी हैं जो दो-दो चार-चार अंगुल के हैं, पर उन पर जो संदेश अंकित हैं वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। कभी-कभी तो ये चीप चिमटिये इतने महत्वपूर्ण बन जाते हैं कि पूरी धारणा में ही परिवर्तन कर देते हैं। ऐसे अनेक पत्र नष्ट भी हो गए। पर बचे हुए पत्रों को आचार्य तुलसी ने संग्रहीत कर उनका नाम प्रकीर्ण-पत्र दे दिया। सचमुच साहित्य परम्परा तथा इतिहास की दृष्टि से उनका बहुत बड़ा मूल्य है।

इस तरह तेरापंथी के राजस्थानी गद्य-साहित्य पर एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हुए मैं अपने निबन्ध पर विराम लगाता हूं, पर यह भी सही है कि अनुसंधान पर कभी भी पूर्ण विराम नहीं लगाया जा सकता। अनुसंधान का अर्थ ही है आगे-से-आगे जुड़ते चले जाना। आशा है मैं जो नहीं कह पाया हूं आने वाले लोग उसे और जोड़ने का प्रयत्न करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थानी शब्द-सम्पदा को तेरापंथ का योगदान

☐ डा० सियाराम सक्सेना 'प्रवर'

कई शताब्दियों से जन-जन की भावनाओं और विचार-सरणियों का वहन और अभिव्यंजन करती आ रही राजस्थानी भाषा एक स्वत्ववती भाषा है। डिंगल जन-भाषा के साथ ही वैचारिकों, दार्शनिकों, भक्तों और राज-काजियों की भी भाषा रही है। अतः इसमें संप्रेषण और अभिव्यक्ति की प्रभूत क्षमता है; और इस प्रकार यह विचारों और अनुभूतियों को तीव्रता तथा व्यापकता दोनों स्तरों पर हृदयंगामी बनाने में पूर्णतया सक्षम है। परिमाण में और गुण में भी यह भाषा पर्याप्त रूप से समृद्ध है।

तेरापंथ के सन्तों ने भाषा और साहित्य की अपूर्व श्रीवृद्धि की है। उनकी सहज और अजस्र-धारा-प्रवाह वाणी ने काव्य और गद्य साहित्य का भर पूर शृंगार किया है। उनके भक्ति-गीत, अध्यात्म-पद, स्तुति काव्य, कथाएं, जीवनियां, आख्यान, संस्मरण, और तत्त्व-निरूपण राजस्थानी भाषा की सुन्दर निधि हैं। यह कालजयी साहित्य है, जो अपने समाज और राष्ट्र को भी कालजयी शक्ति प्रदान करता है। तेरापंथी सन्तों की समृद्ध भाषा अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति करती है। तीव्रता से प्रवाहित हुई अभि-व्यक्ति जन-मानस में सहज रूप से प्रविष्ट और संवादित होती है, और उसे आन्दोलित तथा कल्लोलित करती है। तेरापंथी संतों के साहित्य में आत्मा की सुगंध है, जो भाषा के माध्यम से जन-चेतना को सुवासित और ऊर्ध्वमुखी करती है।

किसी भी भाषा की शब्द-सम्पदा की समृद्धि का प्रथम और प्रमुख लक्षण है उसकी संख्या की विशालता। उसमें शब्द इतनी अधिक संख्या में हों कि वे विश्व भर में उत्पन्न की हुई चिन्तन-राशियों के एक-एक सूत्र और विचार की प्रत्येक इकाई को स्पष्टता के साथ प्रकट कर सकें। शब्दों की दूसरी प्रमुख विशेषता होनी चाहिये चिन्तना-व्यक्तियों को बिम्बात्मकता प्रदान करने की क्षमता। बिम्ब-क्षमता प्राप्त करने के लिए शब्दों को प्रायशः प्रतीका-त्मकता धारण करनी होती है। अतः हृदयंगामी प्रतीकात्मकता भाषा की तीसरी प्रमुख विशेषता है। तेरापंथी काव्य में यह बहुत-कुछ दिखाई देती है। भाषा की चौथी विशेषता होती है शब्दों की अर्थ-वैशद्यकारिणी पर्याय-बहु-लता। इसके सहयोग से भाषा अर्थ-विच्छित्तियों की बहुरंगी भंगिमा धारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करती है, और भाषिकों तथा भाषाविदों का कण्ठहार बनती है। तेरापंथी कवियों की राजस्थानी भाषा संस्कृत और प्राकृत कवियों की उत्कृष्ट शब्दावलि से व्युत्पन्न और समीकृत होने से पर्याय-बाहुल्य-कृत अर्थ-वैशद्य प्रदर्शित करती है। भाषा की पांचवीं विशेषता है उसकी आदान-क्षमता, जिसके बल पर वह अपना क्षेत्र विस्तृत करती है, और अर्थ की नयी-नयी अवाप्तियों और नये-नये आयामों को अपना बनाती चलती है। तेरापंथी साहित्य आदान के द्वारा समृद्ध हो रहा है।

यहां तक तो शब्दों की बात है। इससे आगे, शब्दों के प्रयोग का क्षेत्र है। प्रयोग-क्षेत्र में आकर शब्द वाक्य-संरचना के अंग-रूप में परिलक्षित होते हैं, जिससे एक ही कथन विविध अर्थों को ध्वनित करता है, तथा सन्दर्भ-विशेष से अपना अनुकूलन करता हुआ उस स्थिति-विशेष को सामान्यीकृत बनाकर उसकी मूलभूत वैचारिकता को, तथा उस वैचारिकता के विविध आयामों को जीवन्त रूप में पल्लवित और प्रस्फुटित करने लगता है। भाषा की यह ध्वन्यात्मकता काव्य का तो हार्द ही है, आख्यान आदि में भी अर्थ-गांभीर्य का स्रोत बनती है। तेरापंथी सन्त-काव्य में ऐसे अर्थ-गांभीर्य के पुष्कल उदाहरण दिखायी देते हैं।

इसी के साथ शब्दों की संगीत-मयता भी एक तत्त्व है जो भाषा को चारुत्व-सम्पन्न करता है, और उसकी संप्रेषण-क्षमता में अतिशय वृद्धि करता है। तेरापंथी सन्त संगीत के क्षेत्र में भी अग्रणी हैं। आचार्यों ने पांच सौ से अधिक राग-रागिनियों में रचना की है। संगीत का ऐसा विभुत्व और विस्तार अन्यत्र गोचर नहीं होता।

उपर्युक्त इन सब तत्त्वों के मिलित सहयोग से भाषा को पारगामिता प्राप्त होती है। किन्तु ऐसा तत्त्व-संयोजन हर किसी के बूते की बात नहीं है। इसके लिए भाषा-प्रयोक्ता में मनन, संधारण और प्रज्ञान-प्रतिफलन की पर्याप्त क्षमता होना अपेक्षित है। इन क्षमताओं को हम क्रमशः मति, धी (बुद्धि) और प्रज्ञा संज्ञाओं से अभिहित करते हैं। मति और धी की योजना भाषा को यथार्थ-अवबोध के सन्निकट ले जाती है, और तब प्रज्ञा हमारी चेतना को सत्य में अन्तर्निविष्ट कराती है। यह तत्त्व का पारदर्शन है, जिसका माध्यम प्रज्ञा है। अन्तर्निवेश कराने वाली होने से, तथा चेतना की स्वकीय आन्तर्वस्तु होने के कारण प्रज्ञा को 'अन्तर्दृष्टि' के नाम से भी जाना जाता है। शब्दों का ऐसी अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न होना भाषा का परम वैशद्य होता है। तेरापंथी काव्य संत-काव्य है, अतः अन्तर्दृष्टिमय भी है।

तेरापंथी साहित्य ने राजस्थानी शब्द-सम्पदा में विपुल वृद्धि की है। अकेले जयाचार्यजी ने ही दस सहस्र से अधिक शब्द उसमें जोड़े हैं। अन्य आचार्यों, मुनियों और कवियों का एतद् विषयक योगदान बहुत बड़ा है। उन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबकी राजस्थानी शब्दावलि मिलकर तो अतिविशाल राशि हो जाती है। ये शब्द संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं एवं उर्दू, अंग्रेजी आदि से लिये गये हैं। जैसे कविचन्द का पृथ्वीराज रासो, षड्भाषा-समन्वित होने से सम्पूर्ण देश में समादृत हुआ, वैसे ही तेरापंथी काव्य, विशेषतः सन्त जयाचार्य और आचार्य तुलसी का काव्य सर्वजन-समादरणीय बन गया है।

संस्कृत तो राजस्थानी आदि सभी भारतीय भाषाओं का मूलाधार है। अतः संस्कृत के शब्द तो राजस्थानी में प्रचुर संख्या में हैं ही। संत जयाचार्य के समान ही आचार्य तुलसी ने भी अपने राजस्थानी काव्य में संस्कृत-शब्दावलि का प्रयोग सर्वत्र और बाहुल्यपूर्वक किया है। इससे उनकी रचनाएं सारे देश में सुबोध्य हो गयी हैं, और तेरापंथी राजस्थानी काव्य को राष्ट्र-व्यापकता प्राप्त हो गयी है।

तेरापंथी काव्य में बहु प्रयुक्त संस्कृत-शब्दावलि बहुत विशाल है। अतः संस्कृत शब्दों को पृथक्शः बताना निरर्थक प्रयास प्रतीत होता है। फिर भी तेरापंथी साहित्य में प्रयुक्त ऐसे कुछ संस्कृत शब्द यहां दिये जा रहे हैं, जिनका प्रयोग सामान्यतः हिन्दी या राजस्थानी में कम ही होता है। ऐसे शब्दों के प्रयोग से यह ज्ञात होता है कि तेरापंथी साहित्यकार राजस्थानी भाषा को समृद्ध करने में कितने तत्पर हैं।

विशेष संस्कृत-शब्द—

अंगज (पुत्र)
अदेही
अधम
अधरीकृत—निराकृत
अनन्य—असाधारण
अनवद्य—दोषरहित
अनीति
अनुताप—ताप—सन्ताप
अन्तराल
अपलक
अप्रतिघात
अप्रतिबद्ध
अप्रतिम
अप्रतिहत
अभिमान
अभ्यस्त
अम्भोज—कमल
अरण्य
अव्यय
आकस्मिक
आकार
आक्रोश
आखण्डल—इन्द्र
आतपत्र
आतुरता
आधिव्याधि
आध्यात्मिक
आराम—वाटिका
आशा का आसार
आशी-विष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्फालित
उज्ज्वलता—सुरसरिता
उत्कर्ष
उत्तेजित
उत्थान-पतन
उदन्त—वृत्तान्त
उपकंठ—निकट
उपधात—तकिया
उपवास
उवाच
ऊहापोह
करुणार्द्र
कलधौत
कलानिधि
काकिणी
किम्पाक
कूप-भेकता
क्रूरता
क्षमता
गीर्वाणी
चित्र-विचित्र
छिद्रान्वेषी
जंगम
जिजीविषा
जिज्ञासा
तुरंगम
त्रिभुवन त्रायी
दिङ्मूढ़
दोर्दण्ड
धूलि-धूसरित
पथ्य
परधाती
पाप भीता
पिशिताशी
प्रतिस्रोत
प्रत्युपकार
प्रवास
बहुश्रुत
ब्राह्मी
भगवच्चरण
भावना
भैषज्य
भोगरसिक
भोगी
मत्तमतंग
मनसा
मान
माया
मृति
वपुषा
वाचा
वान्त (वमन किया हुआ)
वामा
वास्तविकता
वितथ
विद्रूप
विश्रुत
विषमता
विहग
व्यवधान
शल्य
संशय
समाधान
स्कन्धावार
स्खलना
स्थावर
स्वेद
हृदय-विदार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहीं-कहीं तो तेरापंथी कवियों ने संस्कृत के शब्द विभक्ति-सहित ग्रहण कर लिये हैं। इससे भी उनकी राजस्थानी भाषा को गरिमा और उदात्तता प्राप्त हुई है। द्रष्टव्य है आचार्य तुलसी के काव्यों से कुछ उदाहरण:—

'प्रभुता री पराजय' में—	पुनरपि वस्त्राभरणे।
'कुम्हारी री करामात' में—	पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्।
'सपनै रै संसार' में—	इष्टदेव, देवाधिदेव ! मां पाहि।
	यूयं वयं।
	रुदती सुदती।
'समता रो समन्दर' में—	एषः।
'पतझड़ में वसन्त' में—	अन्यायीमायी मांसाशी मदपायी।
	उत्तिष्ठत !
'करै जिस्यो भरै' में—	अयि पतिव्रते !

कहीं-कहीं ऐसी वाक्य-रचना मिलती है जिसमें राजस्थानी का एकाध लघु शब्द होता है, शेष सब कुछ संस्कृत-निष्ठ है। इससे ऐसे वाक्यों को संस्कृत, हिन्दी या राजस्थानी किसी भी भाषा का कहा जा सकता है। आचार्य तुलसी के काव्यों से कुछ उदाहरण यहां दिये जा रहे हैं—

'प्रभुता री पराजय' में—

धर्म को मूल विनय अवधार।
क्षान्ति, मुक्ति अरु आर्जव मार्दव च्यार मोक्ष का द्वार॥
अविनय विपदा, विनय सम्पदा, आगम वाक्य उदार।
प्रवर प्रेरणादायी बोध-विधायी त्रिभुवन त्रायी।
प्रबल मनोरथ 'भरत-बाहुबल' आन्तर अनुसंधायी॥

'कुम्हारी री करामात' में—

प्रवचन वदन घनाघन घन पीयूष-वर्षिणी वाणी।
शासन शोषण, परिजन परजन, दारा सुख की कारा।
विनय विवेक विचार में आचार क्रिया में दक्ष।
समता में रमतो रहै अध्यात्म-साधना लक्ष॥
जन-संकुल मृगवन आराम॥
प्रतिदिन अप्रतिहत गती मुनि प्रतिबद्ध समीर।
पथ-श्रम पथ्य-अभाव सूं है रोगाक्रान्त शरीर॥

'समता रो समन्दर' में—

जन्मान्तर संस्कारी प्रतिपल तत्पर पाप-प्रलय में॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पतझड़ में वसन्त' में—

अन्यायी मायी मांसीशी मदपायी ।।
लाभालाभ और सुख-दुःख में,
स्तुति-निंदा जीवन-मृति सुख में,
सम अपमान-मान संन्यासी ।।

'भरी जवानी आ कुर्बानी' में—

काम भोग किम्पाक फलोपम,
शल्य काम है आशी-विष सम ।
बिना प्रयत्न परम गुरु वाणी,
बणी स्वयं वरदान रे, धर ध्यान रे ।।

'दिशा ही बदलगी' में—

इह भव तज परभविक पिपासा ।।

तेरापंथी साहित्य में प्राकृत भाषा के भी बहुत से शब्द अंगीकृत हुए हैं । उदाहरणार्थ—

अखम—अक्षम	ऋख—ऋषि
अखुद्र—अक्षुद्र	गुणठाणो—आत्म-विस्तार की भूमिका
अरिहंत—तीर्थंकर जो चार घाति कर्मों का क्षय कर देते हैं ।	चोलपट्ट—मुनियों का अधोवस्त्र
	भन्ते—सम्बोधन
अलख—अलक्ष्य	श्राय—धर्मशाला
अलुज्झ—उलझ	श्रावक—आस्थाशील व्रतचारी ।

आचार्य तुलसी के काव्य में उद्धृत प्राकृत के कुछ उदाहरण—

'कुम्हारी री करामात' में—

अइमंता जीवजशा ।
अहासुहं ।
संजम तपसा अप्पाणं भावेमाणे ।
सुक्कज्झाणं तरिया ।

'समता रो समन्दर' में—

अइमुत्ता ।
अत्ता कत्ता विकत्ता ।
तहत्ति भगवन ! तहत्ति भगवन !
भिक्खु पडिमा

'पतझड़ में वसन्त' में—अमारि पडह ।
पजूषण ।

'दिशा ही बदलगी' में—मत्थेण वन्दामि ।
सेणिया (श्रेणिक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सरधा रो सबूत' में—नमोत्थुणं समणस्स भगवओ !
न्हाए कय बलिकम्मे ।
पिय धम्मे दढ़ धम्मे ।

अन्यत्र—अहासुहं (यथा सुखम्)
उन्मज्जा तस्स दुल्लहा (उन्मज्जनं तस्य दुर्लभम्)
देवाणुप्पिया (देवानुप्रिय)
पण्णा समिक्खए (प्रज्ञां समीक्षे)
पत्तेयं सायं, पत्तेयं वेयणा (आत्मनः सुखं, आत्मनः वेदना)
मा पडिबंधं करेह (मा प्रतिबन्धं कुरुध्व)
संपिक्खए अप्पगमप्पएणं ।
—आदि ।

इसी क्रम में तेरापंथी सम्प्रदाय के पारिभाषिक शब्दों को बड़ी संख्या में प्रयुक्त कर राजस्थानी शब्द-भंडार की श्रीवृद्धि की गयी है । साहित्य में प्रयुक्त कतिपय पारिभाषिक शब्द द्रष्टव्य हैं—

अकर्म
अजरामर पद
अट्ठाई - अष्टाह्निक पर्व पर्यूषण का प्रथम दिन ।
अणगार—अनागार
अणुव्रत
अतिक्रमण
अनशन—उपवास आदि तपस्या
अनाक्रमण
अनिकेत
अनियताचारी
अनुज्ञा
अनुप्रेक्षा
अनेकान्त
अन्तरंग—आह्लाद-स्वाद
अन्तराय
अन्तर्जागरणा
अन्तर्ज्योति
अन्तर्मुखता
अन्तश्चेतना
अन्तःशल्य
अपछन्दा—स्वच्छंदाचारी
अपयोग—प्रतिकूल ग्रह-नक्षत्र का योग
अपान
अप्रकम्प
अप्रतिकर्म
अप्रमाद
अभयवृत्ति
अभिग्रह
अभेद दृष्टि
अमुत्र—परलोक
अरिहन्त
अवग्रह-याचना
अवसर्पिणी
अशौच भावना
अष्ट अघ
अष्टाह्निक ओच्छव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा-अणुव्रती
आत्म-आराधना
आत्म-गुप्त
आत्म-रमण
आत्मलीन साधना
आत्मस्थ
आत्माराम
आध्यात्मिक उल्लास
आन्तर-अनुसंधायी
आन्तर-परिवर्तन
आमिष
आयम्बिल
आर्जव
आर्त्त-गवेषक
आश्रव
उत्पथ-पदन्यास
उत्सर्ग
उत्सर्पिणी
उपाश्रय—उपासरो
उभयानुकम्पिता
ऊर्ध्वारोहण
एकात्म
एषणा
करपात्री
करणी है भरणी
कर्म-कटक सों युद्ध
कर्मवाद
कषाय
कषाय-विसर्जन
कामणगारी
कायक्लेश
कायिक ध्यान
कायोत्सर्ग
कायोत्सर्गधारी
कायोत्सर्गी
कृत करज
केवलज्ञान
केवल ज्योति
केवलनाणी (केवलज्ञानी)
केवल भुक्ति
केवली
केश-लोच
क्षण-नश्वर
क्षमा-श्रमण
क्षयोपशम—चार घाति कर्मों की साक्षात् फलानुभूति का अभाव
क्षीणावरणी
खमतखामणा—क्षमा मांगना और देना
खायक—क्षायक : सम्यक्त्व, सम्यक् दृष्टिकोण जो कभी विपरीत नहीं होता।
गण—धर्मसंघ
गणी—आचार्य
गति
गाथा—धर्मसंघ की कल्पित मुद्रा
गुरु
गुरु-चरण-शरण
गोचरी करना
ग्रंथि-भेदन
चंड
चउ विहार—चार प्रकार का भोजन अन्न, पेय, खदिम और स्वादिम।
चरमोच्छव
चराचर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिदानन्द
चिदानन्दमय
चिन्मय
छन्द
जन्मान्तर-संस्कारी
जप
जय जिनेन्द्र
जिण-संकाशा—तीर्थंकर के समान
जिनधर्म
जिनमत
जैनागम
जोग—मुनिधर्म की दीक्षा
झाझा झोली
तथागत
तन्मय
तपोबल
तात्कालिक
तामस
तिर्यञ्च
तीन तत्त्व
तीरथ—धर्मसंघः साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका
तीर्थंकर
त्रैकालिक
थाणो—साधु-साध्वियों का स्थिरवास
दमीश्वर—दमनशील व्यक्तियों का अगुआ।
दया
दिगम्बर
दुःख
दुरभिसंधि
दुरितखपावो
देहरावासी—मूर्तिपूजक जैनों का एक सम्प्रदाय
देह व्युत्सर्ग, देह व्युत्सर्जन—शव का विसर्जन
देही
दोगुन्दक देव
द्रव्यार्थिक
धर्म-धारणा
धर्मध्वज
ध्यान
ध्यानी
नवबाड़—ब्रह्मचर्य रक्षा के लिए निर्धारित नव सूत्र—एकान्तस्थानसेवन, विकथा-परिहार, एक आसन वर्जन, दृष्टि-संयम, खाद्य-पेय-संयम, भोजन-परित्याग, विभूषा-परिवर्जन।
निज-अनुसंधान
निरंजन
निरतिचारी
निरधंध
निराकर
निरुपाधिक
निर्ग्रन्थ
निर्ग्रन्थता
निर्युक्तिकार
निश्चय नय
नेवज—नैवेद्य, पूजा-सामग्री
नैर्मल्य-कूप
नोकार—नवकार मंत्र
पंचभूत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचम आरा—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल का एक विभाग
पंचम गति
पंचम गुण ठाणी
पंच महाव्रत
पंचाचारी
पंचेन्द्रिय प्राणी
पंडितमरण, पंडितमृति—संयम-पूर्वक समाधि-मरण
पक्खी – पक्ष का वह दिन जब पाक्षिक प्रतिक्रमण किया जाताहै ।
पछेवड़ी —साधु-साध्वियों का उत्तरीय वस्त्र ।
पजुवास—उपासना ।
पडिक्कमण—जैन-मुनियों की आलोचना-विधि ।
पडिलेहण—साधुओं के निश्रित वस्त्र, पात्र आदि का निरीक्षण करना ।
पद-आराधी
पद-निरपेक्ष—निराशंसी
परखदा—परिषद्
परतख—प्रत्यक्ष
परमार्थ
परम समाधि
परिपाक
परीनिर्वाण
परीषह—संयम मार्ग में समागत कष्ट ।
पर्यायार्थिक
पर्युपासना
पर्यु (र्यू) षण पर्व—जैनधर्म का अष्टाह्निक पर्व ।
पांच अणुव्रत
पारणा—उपवास आदि तपस्या का समापन ।
पावस—चातुर्मास
पितवाणी
पुण्यबन्ध—शुभकर्म का बन्धन ।
पुरुषार्थवाद
पूंजनी—रजोहरणी
पूज—आचार्य
पूर्ण अहिंसा
पौद्गलिक सुख
प्रणिधि—निर्मल चेतना के समय होने वाली स्थिरता ।
प्रतिक्रमण
प्रत्यनीक
प्रदक्षिणा
प्रमार्जन
प्रवचन
प्रवृत्ति—चित्त की निर्मलता का औत्सुक्य-रहित आचरण ।
प्राणायाम
प्रातिभ प्रज्ञान—प्रतिभा की विशेष स्फुरणा; मतिज्ञान का एक प्रकार ।
प्रासुक एषणीय
प्रेक्षाध्यान
प्रेक्षा प्रेरित ।
बारह व्रत—जैन श्रावक की आचार-संहिता ।
बारा—मृत्यु के बाद बारहवें दिन होने वाली लौकिक विधि ।
बारी—सामूहिक कार्यों का क्रम ।
बेहरणो—भिक्षा लेना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बेहरावणो—भिक्षा देना
ब्रह्मचर्य—आत्मरमण, वस्ति-संयम ।
भगती—आतिथ्य; अतिथि साधु-साध्वी को आहार-पानी लाकर देना ।
भव—जन्म
भव—बाधा
भव-भीरु
भवाम्बुधि
भविजीव
भात-पाण—आहार-पानी
भावोपक्रम—अभिप्राय जानने का उपाय ।
भाषा-समिति—दोष-रहित भाषा का प्रयोग ।
भेद-दृष्टि
भैक्षव शासन
भोगायतन—शरीर ।
मंगलीक—शास्त्रों के कुछ मंगल-सूक्त ।
मंडी—शव-यात्रा का विमान ।
मता—सम्पदा ।
मन-गमती—मनोनुकूल
मगकार
महापंथ
महायान
मार्दव
मास-खमण—एक मास का उपवास ।
मिथ्यात्वी
मुखपति—जैन मुनियों का एक उपकरण जो मुख पर बांधा जाता है ।
मुनिवर
मूलोत्तर दूषण ।
यावत्कथिक देह-व्युत्सर्जन ।
राग
राम ।
लांछना
लोलुपता ।
वंचना
विकथा
विनिवर्त्तना
विभुता
विभूति
विमल विवेक
विरक्ति
विराग
विवशता
विषय-वर्जन
वीतरागता
वीर दर्शन
वृत्ति
वेदनीय कर्म
व्युत्सर्ग
व्रतधारी ।
शिक्षाद्वय
शिरलुंचन
शुक्ल धर्म
शोणित
श्रामण्य
श्रावक
संकलक
संक्लेश
संगम समता
संघीय सुरक्षा
संचित कर्माश्रित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संज्ञी—ज्ञान वाला
संधि
संयम
संवर-संयम
संवेदना
संसरण
संसार
समकित सार
समताधारी
समता में रममाण
समता रस रंगी
समनन
समन्वय
समरस वृति
समवर्त्तीपन
समवसरण
समवसर्या
समाधि
समाधिमृत्यु
सह-अस्तित्व
सात सिखाव्रत
साता
सातों व्यसन
सामाचारी
सामायक
सामायिक
सारणा-विवारणा
सावद्य प्रवृत्ति
सिंघाड़ो
सिद्ध
स्थविर
स्याद्वाद
स्व-पर-निर्माण
स्वाति
स्वात्म-नियन्त्री
स्वाध्याय ।
हार ।

तेरापंथी राजस्थानी साहित्य में, आधुनिक काल में प्रचलित हुए विशेष हिन्दी शब्दों का भी समावेश हो रहा है । ऐसे सहस्रों शब्द हैं । उदाहरण के लिए कुछ शब्द देखिये—निषेधाज्ञा, पलायनवाद, धूम्रपान (धूमपान) आदि ।

उर्दू (अरबी, फारसी, तुर्की) की शब्द-राशि ग्रहण करके भी तेरापंथी काव्य ने राजस्थानी शब्द-सम्पदा में प्रभूत वृद्धि की है । तेरापंथी काव्य में प्रयुक्त उर्दू शब्दों में से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं :—

अगर
अजब
अजमावो
अदल
अफ़सोस
अरमान
असर
असली
आज़ाद
आदत
आदम
आफ़त
आब
आमद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलीशान
आवाज़
इकतारी—तल्लीनता
इकरार—वायदा
इज़्ज़त
इज़्ज़त-आबरू
इनायत (कृपा, पुरस्कार)
इन्साफ़
क़दम
क़दमी (चरणों का)
क़बूल
कमज़ोर
कमनसीब
कमाल
कमी
कमोबेश
कायल
कारख़ाना
कारीगर
काश
किस्मत
क़ीमत
कोहिनूर।
खबर
ख़बरदारी
ख़राबी
ख़ामी
ख़ामोश
ख़ाली
ख़ासी
ख़ुदा
ख़ुलासा
ख़ुशखबरी
ख़ुशहाल
ख़ुशियां
ख़ुशी-खुशी
ख़ूब
ख़ैर
ख़्याल
ख़्वारी
ग़जब
गन्दगी
ग़मी
गर्मी
गवाही
ग़ाफ़िल
गुनह्
गुलज़ार
ग़ुलदस्ता
गुलाबी
ग़ौर
चापलूसी
चाबुक
चुग़ल
चोज़।
जंग
जंगल
जबर
जबरी
ज़बान
ज़बानी
ज़ब्त
जमात
जमीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज़रा
ज़रूरी
जवानी
ज़हर
ज़िन्दगी
जुदा
जुर्म
जे़वर
जोखिम
जोम
ज़ोर
जोश
जोश-खरोश
ज़्यादः ।
तक़दीर
तक़दीर सिकन्दर
तबाही
तमीज़
ताक़ीद
ताबेदारी
तालाब—सं. ताल
तूफान
तेज़
तौर-तरीके
दर-दर
दरकार
दरवाज़ा
दरिया
दर्दी
दारूखोर
दावेदारी
दिमाग़
दिल
दिलगीर
दिलजमी
दिलासा
दुनिया
दुनियादारी
दुश्मन
दोज़ख
दौलत ।
नज़र
नज़ारा
नाज़
नाजुक़
नाराज़ी
नूर ।
पीकदानी ।
फ़रियाद
फ़िरका ।
बग़ावत
बदनाम
बदबू
बन्द
बन्दगी
बरकत
बहार
बाग
बागडोर
बाज़ी
बिलकुल
बीमारी
बेकार
बेगारी
बेराज़ी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बेशर्मी
बेहाल
बेहोश ।
मग़रूर
मग़रूरी
मज़बूत
मज़बूती
मज़बूरी
मंज़ूर
मतलब
मनमोज़ी
मनाही
मस्ती—सं. मत्तता
महफ़िल
महर
महरबानी
महल
महसूस
मात
माफ़ी
मुनीम
मुफ़्त
मुश्किल
मुसीबत
मौज़
मौजी
मौत ।
याद ।
रग-रग
रज़ा
रय्या
राज़ी
रिवाज़
रूबरू (आमने-सामने)
रोज़ ।
लाश
लौ ।
वाह-वाह ।
शराब
शराबी
शर्म
शर्मिन्दगी
शहनाई
शहर
शान
शायद
शाह
शाही
शिकायत
शिकार
शेर
शोर ।
सख़्त
संगीन
सफ़ाई
सलाम
स्याही
साज़िश
साहिबी
सीनाज़ोरी ।
हक
हक़दार
हज़ार
हमदर्दी
हमेशा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हराम	हिदायत
हस्ती	हिम्मत
हालत	होश ।

अंग्रेजी शब्दों को भी तेरापंथी काव्य ने, और अधिकांशतः गद्य ने, अंगीकार किया है। तेरापंथी काव्य में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दों में से कुछ यहां दिये जाते हैं :—

अलमारियां	बाबू	रूम
पुलिस	बीमा	शॉल
फाइलां	बोतल	सीज़न
फ़िल्म	मार्केट	सीन (दृश्य)
फ़ीस	मिनट	हॉल ।

तेरापंथी काव्य राजस्थानी मारवाड़ी भाषा में है। फिर भी, उसमें राजस्थानी के कतिपय विशिष्ट शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जो द्रष्टव्य है :—

अँवली सँवली—उल्टी-सीधी
अगवाणी—स्वागत, अग्रगण्य
अगाऊ—पहले से
अगाड़ी—आगे
अचंपलो
अजोग—अयोग्य
अटावरी—जोरदार
अठी वठी—इधर-उधर
अडाणै—गिरवी
अडीक—प्रतीक्षा
अडोला—सूना
अणखाणी—असुहानी
अणखावणा—असुहावना
अणखावणूं—अनखना,
ब्रज—अनखौंही
अणगमो—अप्रसन्नता
अणतेड़ी—बिना बुलाई हुई
अणहद—अनाहद, असीम
अतरे—इस बीच में
अतेड्यो
अनजल—भोजन-पानी
अनोप—अनुपमेय
अबींह—निर्भय
अम्बरियो—आकाश
अलख—जिसकी कल्पना न हो।
अलपभणी—कम शिक्षित
अलसाग—अलस्य
अलूझणा—उलझना
असवार—अश्ववार, घुड़सवार
आंधापणो
आभै—सं अभ्रे—आ—अभ्भ
आखाण
इधको—सं.—एध
उजास
उन्हा—गर्म
उन्हालो—ग्रीष्म ऋतु
उपरन्त—प्रतिकूल
उपासरा—मूर्तिपूजक संप्रदाय का
धर्म-स्थान
उमायोड़ा—उमड़े हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उम्हावो
उलाहणो
उल्लंठ—आग्रही
ऊंडो—गहरा
ऊजलो—उज्ज्वल
ऊणो—सं ऊन, न्यून
एकठ—संगठन
एड़छेड़—ओरछोर
ओगाज—गर्जना
ओघा—रजोहरण
ओचाट—अस्थिरता, आतुरता
ओपना—सुशोभित होना
ओपरी छाया—भूतप्रेत का प्रभाव
ओसर मोसर—मृत्यु भोज
ओहड़ा—उत्तर
कच्छ कटना—जड़ मूल से उखाड़ना
कजिया राड़—कदाग्रह, लड़ाई-झगड़ा
कटबीं—निन्दात्मक
कड़ी—शृंखला
कनै—निकट
कबाड़ो—ढोंग
कलपाना—व्यथित करना
कालजो—कलेजा, हृदय
कुचमादी—विज्ञान
कोड़ां—करोड़ों
कोर्‌योड़ी—कोरी हुई मूर्ति
खिण—क्षण
खीरा—अंगारे
खेड्यो
गहलीज्
गुलगुलाट
गैलो—गैल
चन्नण—चन्दन
चातर—चतुर
चितराम
चिरच्योड़ी—चर्चित
चौभंगी
जमारो—जन्म
जाण—पितवाण
जाझा—जाझ
जोणी—योनि
झलकै
झेल्यो
टंकीज्यो
टाबर
ठवकै
डंकीज्यो
डावड़ो
तरणाटो
तिवार—त्यौहार
धणियाप
नानड़ियो
नूंतो—निमंत्रण, न्यौता
पगोथ्यां
पधरास्यो
पिसताबो—पछतावा—पश्चात्ताप
पुच्छाच्छोए
पूगग्या—पहुंच गये
पेड्यां—पैंडियां—सीढ़ियां
पो'र—प्रहर
पोसाल
फंफेर्‌यो
फूलधाणना—अस्थि विसर्जन करना
फोसरो
बखांण
बंजरबट्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बयागट—बनावट
बायड़ आबो
बलद—बैल
बिरंग
बीरा
ब्हावड़ी—लौंटी
मसोसीजता—मसोसते हुए
मुण्डागै—मुण्ड अग्रे
मेलो मंड्यो
मैकता—महकते
रूं रूं—रोम-रोम
रूंवाली—रोमाली
लागी के ल्याऊं
लाय—आग
वृत्तंत—घटना
सचकारी
सरीसा—सरिस
सागै—साथ
सादावै
सुणणारो
सेंचनण—सिंचन
सेज—शय्या
(अ) सैंधापण
सैनाण—संज्ञान
स्यांच्योई
स्याणो
हिचकोलै
हूंस—मनहूस
हेज
होतव—भवितव्य ।

यह भी ध्यातव्य है कि तेरापंथी साहित्य में विभिन्न भाषाओं से शब्द लिये मात्र नहीं गये हैं, उनका समुपयुक्त संस्कार भी किया गया है। यह संस्कार कई प्रकार का है। प्रथम है अन्य भाषाओं के शब्दों को राजस्थानी सांचे में ढालना। यथा—संस्कृत 'दिङ्मूढ़' का 'दिग्मूढ़, 'अक्षुद्र' (प्रा. अखुद्द) का 'अखुद्र', हिन्दी 'होकर' का 'हू'र', प्राकृत 'अलुज्झ' का 'उलझ', पंजाबी 'शासणदा' और 'बणदा' (बनता है) को इन्हीं रूपों में ग्रहण करना तथा उर्दू का 'लवाज़मा' का 'लकजमो' बना लेना, आदि। इसी प्रकार अन्य भाषाओं के शब्दों को राजस्थानी रूप दिया गया है। संस्कृत, उर्दू, हिन्दी के उदाहरण यहां दिये जाते हैं। देखिये—

राजस्थानी में रूपान्तरित संस्कृत शब्द—

अगन सिनान—अग्नि स्नान
अणगारी—अनागार
अणबूझ—अबूझ—अबुध्य
अणभूती—अनुभूति
अणभूत्यां—अनुभूतियाँ
अणभै—अभय
अणलाध्यै—अलब्ध
अदीठ—अदृष्ट
अधवसाय—अध्यवसाय
अंधारो—अंधकार
अंतरजामी—अंतर्यामी
अंतरिख—अंतरिक्ष
अपरमाद—अप्रमाद
अमरित—अमृत
अमावस—अमावस्या
अरथकार—अर्थकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरहत—अर्हन्त
अहिंस्या—अहिंसा
आंख्यां—अक्षि
आंगणै—अंगणे
आंतरै—अन्तरे
आकड़ो—आक
आकरति—आकृति
आकल बाकल—अकल विकल
आखडण्लू—आखण्डल, इन्द्र
आतम—आत्म
आतमगिलानी—आत्मग्लानि
आद-अनाद—आदि-अनादि
आदरस—आदर्श
आसगति—आसक्ति
आसता, आसथा—आस्था
आसरो—आश्रय
इचरज—अचरज—आश्चर्य
इमरत—अमृत
इसड़ो—ईदृश
ईसवर—ईश्वर
उजली—उज्ज्वल
उतष—उत्तप्त
उदारण—उदाहरण
उपचारिक—औपचारिक
ओसाण—अवसान—अर्थान्तर
कठण—कठिन
कथ—कथ्य
कलपना—कल्पना
कलप बिरछ—कल्पवृक्ष
काजल—कज्जल
कादो—कर्दम
कामधेणु—कामधेनु
कामल—कम्बल
कालूंस—कालुष्य
किरोध—क्रोध
किल्यान—कल्याण
कुरखेतर—कुरुक्षेत्र
खिण—क्षण
खमता—क्षमता
खीर—क्षीर
खांधो—कंधा—स्कंध
गिरह—ग्रह
चिंतणा—चिन्तना
चिमत्कारी—चमत्कारी
चेतण—चेतन
चेतणा—चेतना
छोणो—शावक
जतातथ—यथातथ्य
जथारथ—यथार्थ
जलपना—जल्पना
जलम—जन्म
जलमै—जन्मे
जातरा—यात्रा
जोग—योग
जोगी—योगी
जोणी—योनि
जोत—ज्योति
ततखिण—तत्क्षण
तथ—तथ्य
तंतर-मंतर—तंत्र मंत्र
तरंगणी—तरंगिणी
तिरपति—तृप्ति
तिरसणा—तृष्णा
तिलमात—तिलमात्र
तीरथ—तीर्थ
तीरथां—तीर्थानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसां—तृषया, तृषा
थल—स्थल
दरपण—दर्पण
दरपी—दर्पी
दाखां—द्राक्षा:
दिगभरस—दिग्भ्रम
दिशाभरम—दिशाभ्रम
दीठ—दृष्टि
दुंद—द्वन्द्व
दुवार—द्वार
द्वेत—द्वैत
धणख—धनुष
धणियाप
धिन—धन्य
धूणधाणी
धूल—धूलि
नखतर—नक्षत्र
निचिंत—निश्चिंत
निदरा—निद्रा
निपंख—निष्पंख—निष्पक्ष
निरणायक—निर्णायक
निरदुंद—निर्द्वन्द्व
निरदोष—निर्दोष
निरबलता—निर्बलता
निस्चै—निश्चय
निस्ठावां—निष्ठा:
नूओ—नव
नेम—नियम
नेह—स्नेह
नैण—नयन
नैणां—नयनानि
पकफल—पक्वफल
पख—पक्ष
परकरती—प्रकृति
परकास—प्रकाश
परगट्या—प्रकटित, प्रकटे
परणाम—परिणाम
परतिछबि—प्रतिच्छवि
परतिमा—प्रतिमा
परतीत—प्रतीत
परमाद—प्रमाद
परमेसर—परमेश्वर
पराकरम—पराक्रम
पराथनां—प्रार्थना
परालब्ध—प्रारब्ध
पवितर—पवित्र
पाखी—पक्षी
पुन—पुण्य
पूरति—पूर्त्ति
पोख—पोष, पौष, पौष्य
पौरख, पौरुख—पौरुष
प्राश्चित—प्रायश्चित्त
फरस—स्पर्श
बिखै—विषय
बिजोगी—वियोगी
बिरथा—वृथा
बिरम—ब्रह्म
बिरमखीर—ब्रह्मक्षीर
बिरमांडरा—ब्राह्माण्ड का
बिस—विष
बिसवास—विश्वास
बिसेस—विशेष
बिसेसण—विशेषण
बेधसाला—वेधशाला
बेला—वेला
भगत—भक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरत—भूत
भै—भय
भोम—भूमि
मछ—मत्स्य
मध—मध्य
मिनख, मनख—मनुष्य
मिमता—ममता
मिरग—मृग
मिरत—मृत
मुगता—मुक्ता
मुगति—मुक्ति
मुदरा—मुद्रा
मूंडै—मुंडे
मोमाखी—मधुमक्षिका
रगत—रक्त
रगतसोस—रक्तशोषक
रतन—रत्न
रहस—रहस्य
रिण—ऋण
रुत—ऋतु
लालस्या—लालसा
लुबध—लुब्ध
वणराय—वनराजि
वरचस्—वर्चस्
विद—वदि
विभगति—विभक्ति
विरति—वृत्ति
विरत्यां—वृत्तीः, वृत्तियां
शासतां—शास्ता
संसकिरती—संस्कृति
संसै—संशय
संस्परस—संस्पर्श
सगला—सकल
सत—सत्य
सपनां—स्वप्नानि
सपनूं—स्वप्ने
सबदजाल़—शब्दजाल
सभाव—स्वभाव
समदीठ—समदृष्टि
सरधा—श्रद्धा
सराध—श्राद्ध
सरूपदरसण—स्वरूप-दर्शन
सस्तर—शस्त्र
सासतर—शास्त्र
सासवत—शाश्वत
सिझ्यां—संध्या
सिरीकिसन—श्रीकृष्ण
सिस्टी—सृष्टि
सीकार—स्वीकार
सील—शील
सीहोदर—सहोदर
सुतंतर—स्वतंत्र
सुमरण—स्मरण
सुवरण—स्वर्ण
सुवारथी—स्वार्थी
सूल़—शूल
सेसलोयण—सहस्रलोचन, इन्द्र
सोध—शोध
स्याप—शाप
हियो—हृदय
हिंस्या—हिंसा
होतब—भवितव्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थानी में रूपांतरित कुछ हिन्दी शब्द—

अणबण—अनबन
खांधो—कन्धा
खंडर—खंडहर
चेतो—चेत, चेतना
चुणोत्यां—चुनौतियाँ
चौरस्ते—चौराहे
जलम्यो—जन्मा
झ्यांझ्यां—झांयझांय
झुकणू—झुकना
दोपार—दोपहर
दोपारां—दोपहरी में
दोपारी—दोपहरी, दुपहरी
पगथल्यां—पगतलियाँ
पपैये—पपीहे
पोथा पिंडत—पोथी-पंडित
—पुस्तक पंडित
पिछतासी—पछतायगा
पिसतावै—पछताता है
पैर्यां—पहरे, पहने हुए
मैकता—महकते
म्हारोपण—मेरापन
रयण—रैन, रजनी
राच्यै—रांचे—रंजित
रैतां—रहतां—रहते
रैतो—रहता
सपनूं—सपना—स्वप्न
सीकार्या जावै—स्वीकार किया जाय
सीदाई—सिधाई
हू'र—होकर।

राजस्थानी में रूपांतरित कुछ उर्दू शब्द—

अकल—अक़्ल
अन्दरूणी—अन्दरूनी
अजमासी—आज़मायेगा
अरजी—अर्ज़ी
आखिर—आखीर
इमारतां—इमारतों
इसारै—इशारे
उमराव—उमरा
ऊमर—उम्र
ओकात—औक़ात
कमबेसी—कमोबेश
कमीणो—कमीना
करज—कर्ज़
कसूर—क़ुसूर
कुर्बाण—क़ुर्बान
कूंचै—कूंचे, गली
खजानो—ख़ज़ाना
खाख—ख़ाक
खातर—ख़ातिर
खातरी—ख़ातिरी, ख़ातिरदारी
खामोषणी—ख़ामोशी
खुवारां—ख़ूऱ्वारों
खुद'र अहम—ख़ुदी और अहम्
गरजी—ग़र्ज़ी
गरम—गर्म
गरमी—गर्मी
गरीबां—ग़रीबों
गुमास्ता—गुमाश्ता
गैरी—गहरी
चेहरै—चेहरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जग्या—जगहों
जबां खातरी—ज़बांख़ातिरी
स्वनिर्मित शब्द-समास
जमाखातरी—जमाख़ातिरी
जमारो—जन्म
जाब—जवाब
जोरसोर—ज़ोरशोर
ज्याज—जहाज़
ज्यादा—ज्याद:
ज्यान—जान
ज्यान—जहान
ताज़ी—ताज़ा
दफ्तरां दफ़्तरों
दरद—दर्द
दरदी—दर्दी, रोगी
दरवाजै—दरवाजे
दरियाव—दरियादिल, उदार
दहलावै—दहलाता है
दावो—दावा
दिदार—दीदार
दिदारी—दीदारदाँ
दिदारू—दीदार
दिलड़ो—दिल, ऊनवाचक
दुतरफ़ो—दुतरफ़ा
दुश्मण—दुश्मन
दोझख—दोज़ख़
नजरां—नज़रें
नजारो—नज़ारा
नजीक—नज़दीक़
नरम—नर्म
नरमाई—नर्मी
नरमी गरमी—नर्मी-गर्मी
निजर—नज़र
निजर्यां—नज़रें
निशाणी—निशानी
निसाण्यां—निशानियां।
पैचाण—पहचान।
फखत—फ़क़्त
फजीत—फ़ज़ीहत
फन्दै—फन्दे
फरज—फ़र्ज़
फरजन—फ़रज़द
फरमावै—फ़रमाए
फौजां—फ़ौजें।
बखत, बगत—वक़्त
बगसीस, बकसीस—बख़्शीश
बगीचो—बगीचा
बजारां—बाज़ारों
बदकार—बदीकार, अहितकारी
बदनीती—बदनियती
बबर्ची—बावर्ची
बहारां—बहारों
बा'दुरी—बहादुरी
बिमारी—बीमारी
बेकाम—बेकार
बेसुम्मार—बेशुमार
मजब—मज़हब
मजबून मज़मून
मजबूर्यां—मज़बूरियां
मजल—मंज़िल
मजला—मंज़लें
मनाही—मुनादी, मनादी
मरजी—मर्ज़ी
मरदमी—मर्दुमी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरदाणी—मर्दानी
महलायत—महलों
मुकाबलों—मुक़ाबला
मुजरो—मुजरा
मुरदो—मुर्दा
मे'नत—मेहनत
मैलां—महलों
मोको—मौक़ा
मोज—मौज़
मोजां—मौजें
मोजीज—मुअज़्ज़
रवाब—रौब
रसाकसी—रस्साकशी
रोसनी, रोषणी—रौशनी
वगत—वक्त
वासतै—वास्ते
वैम—वहम
शरम—शर्म
शरमावै—शर्माएं
शरमावो—शर्माओ
शरमीणो—शर्माला
शर्माशर्म—शर्माशर्मी
शानी—सानी, तुलना
श्याबास—शाबाश
सरद गरम—सर्द गर्म
सरमिंदी—शरमिंदगी
सरमिंदी—शरमिंदः
सलाही—सलाह
सलूक—सुलूक
सितारो—सितारा
सीरणी—शीरनी
—सं. क्षीरिणी
सोदै री—सौदे की
हकूमत—हुकूमत
हजारां—हज़ारों
हरकतां—हरकतें
हरजानो—हर्जाना
हलकाई—हलकापन
हाजर—हाजिर
हुसियारी—होशियारी।

इस प्रकार शब्दों को ग्रहण करने के अतिरिक्त मुहावरों और कहावतों का भी लोकभाषा से आदान करके तेरापंथी साहित्य ने राजस्थानी के शब्द-भण्डार की श्रीवृद्धि की है। यहां मुहावरों और कहावतों के कुछ नमूने दिये जाते हैं।

मुहावरे

अपणा फिरका अपणी झंडी।
अपणै ही हाथ काट बैठी वाही डाली।
आंतां ठंडी हूगी।
ऊंघ उडारो।
काग उड़ाबो।
काली करतूत।
खांडे री धार वहणो।
घेरो घालबो।
नित फाड़-फाड़ कपड़ो सींवै।
निश दिन खाई खोदबो।
पग-पग में गाडो अटकै।
पर्वत-राई रो अन्तर।
पैर पै कुल्हाड़ी बाही।
बड़ौड़ै चरखै चढ्यो।
बाग-बाग होना।
बुद्धि दौड़ाना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौ निजरचां हो जावै ।
जाली हुंडी चलाबो ।
जिंदगी रैण बसेरी बणगी ।
झाग बिलोता रैबो ।
तांतो तोड़बो ।
तांतो जोड़बो ।
तागो टूट गो ।
तुरग ताजणो खावै ।
दाल में कालो ।
देख्यो तेल तिलांरो ।
नय्या पार लंघावै ।
न शीष-खसोलण है न गवाड़ी ।
बोक्को फाड़बो ।
भै रै भूत सूं मरता ।
मन रो कोड पुरायो ।
मूंछालां मरदां रो ।
रुंवाली नहीं हाली ।
रोटी नहीं सिकना ।
विवेक रो दीपक बुझ ग्यो ।
सत्य सानड़ो पड़सी ।
सोलह आना सच ।
(····पर) स्याही फेरना ।
(म्हारी) हाम पूरबो ।
हिम्मत हारना ।

मुहावरों के समान ही कहावतें भी भाषा में रोचकता उत्पन्न करती हैं, और उसे स्मरणीय बनाती हैं । तेरापंथी साहित्य में प्रयुक्त कहावतों के कुछ प्रतिदर्श (नमूने) यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

कहावतें

आखिर तो फूट्यां सरै पाप रो फोड़ो ।
गगन बगीचो फूलै ।
घर रा पूत कंवारा डोलै, पाड़ोस्यां रा परणावै ।
चाहो जितो घिरत गुड़ सींचौ, नीम न कटुता त्यागै ।
जो करै सो भरै ।
पंगु पदचारी बणै ।
पांणी छकणै स्यूं छणसी ।
बांझ संतान जणै ।
बिना आंच ही दूध उफणसी ।
बेला बाह्या मोती निपजै के कहुं बारी-बारी ।
मावड़ भार मरी क्यूं ?

इन गृहीत शब्दों में यथोचित, यथापेक्ष अर्थ-परिवर्तन भी किया गया है, जिससे राजस्थानी कृत इन शब्दों को अर्थ-गौरव प्राप्त हुआ है, और भाषा की श्रीवृद्धि हुई है । ऐसे अगणित शब्दों में से दो-चार यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

'गण' को 'धर्मसंघ' अर्थ में, 'गणी' को 'आचार्य' अर्थ में, 'गुण ठाणो' को 'आत्म-विश्वास की भूमिका अर्थ में, 'गाथा' को 'धर्मसंघ की कल्पित मुद्रा' अर्थ में, 'चरमोच्छव' (चरमोत्सव) को 'तेरापंथ के प्रथम आचार्य श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिक्षु स्वामी के स्वर्गारोहण दिवस भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी को होने वाले महोत्सव' के अर्थ में, 'श्राव' 'धर्मशाला' अर्थ में, 'श्रावक' 'आस्थाशील व्रतचारी के अर्थ में, 'फूल घाणना' को 'अस्थि-विसर्जन' के अर्थ में लिया गया है।

यह प्रक्रिया अर्थागम (नये अर्थ का समावेशन), अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच के माध्यम से प्रायः होती है। इनके उदाहरण तेरापंथी काव्य में भरे पड़े हैं। यहां एक-एक, दो-दो उदाहरण दे रहा हूं।

अर्थागम—

भाषा-समिति—दोष-रहित भाषा का प्रयोग।

ओसर-मोसर—मृत्यु-भोज।

फूल—मृतक की अस्थियाँ।

अर्थ-विस्तार—

यह अर्थोत्कर्ष की प्रक्रिया है; यथा—

भात-पाण—आहार-पानी, भोजन और पेय।

अर्थ-संकोच—

अर्थापकर्ष की इस प्रक्रिया के द्वारा सामान्य शब्द भी पारिभाषिक बनाये गय हैं। इस प्रकार बने शब्द जैन-दर्शन और तेरापंथी साहित्य में कई सहस्र हैं। उदाहरणार्थ :—

झाझाझोली—शारीरिक अक्षमता में साधु-साध्वी को स्थानान्तरित करने का उपकरण।

जोग—मुनि-धर्म की दीक्षा।

गण—धर्मसंघ।

नव बाड़—ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए निर्धारित नौ सूत्र।

उपासरा—मूर्त्तिपूजक सम्प्रदाय का धर्मस्थान।

अट्ठाई—अष्टाह्निक पर्यूषण पर्व का प्रथम दिन।

अर्थापदेश (अर्थादेश)

अर्थापदेश अर्थ-विकार का एक भेद है। अर्थापदेश में अर्थ भिन्न हो जाता है। कभी-कभी अर्थ का अपकर्ष हो जाता है, और कभी-कभी किसी एक अर्थ में संकुचित भी हो जाता है। अर्थ के इस प्रकार के परिवर्तन से कविजन प्रायः काव्य की अभिव्यंजना-शक्ति में चार चाँद लगा देते हैं।

तेरापंथी काव्य में भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति प्रायः पर्याप्त उदात्त हो जाती है। उसका उत्कर्ष 'अर्थापदेश' के रूप में प्रकट होता है। यहां दो कवियों के काव्य में से कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि मोहनलाल 'आमेट' का काव्य 'तथ'र कथ' (सन् १९७१) अर्थापदेश की सुन्दर छटा प्रदर्शित करता है। उनके काव्य में अर्थापदेश लक्षणा और व्यंजना शक्तियों से समन्वित होकर अर्थ-गौरव-सम्पन्न होता है। द्रष्टव्य है :—

१. बां पगां पड़ी धूल मजल री बभूत है।—पृष्ठ २

यहां 'बभूत' शब्द में अर्थापदेश है। बभूत=विभूति=राख धूलि। आशय यह है कि सन्तों के चरणों में लगी हुई मार्ग की धूलि धूलि नहीं रहती, वह मंजिल (गन्तव्य) की उपलब्धि की निदर्शिका 'विभूति' हो जाती है। वह सन्तों, सिद्ध जनों के शरीर की शोभा बढ़ाने वाली भस्मांग-स्वरूप हो जाती है।

२. भूख की भभक सूं बीं रै तो दाणो ही दाख है।—पृष्ठ ६

भूखे व्यक्ति के लिए तो अनाज के दाने ही दाख अर्थात् स्वाद के निधान, तथा जीवनाधार हैं।

३ आपणूं आपणूं राम।—पृष्ठ ५२

राम का नायकत्व, उनका रामत्व प्रत्येक व्यक्ति की चेतना में पृथक्-पृथक् स्वरूप का है।

४. करम घूंटी रै अभाव में आदरस रै ज्यावै है बण कर कोरो सबद-जाल।—पृष्ठ ६४

प्रयोग द्रष्टव्य है : जन्मघूँटी के स्थान पर कर्मघूँटी। यह प्रच्छन्न अर्थ-सादृश्य कर्म के महत्त्व को अधिक प्रकाशित करता है। कर्मघूंटी का तात्पर्य है—जन्म से ही डाले गए निरन्तर कर्मशील रहने के संस्कार।

५ जठै आज भी है अमावस।—पृष्ठ ७१

यहां अमावस शब्द में प्रतीक, बिम्ब, लक्षणा और व्यंजना का समन्वित विभव प्रकट हुआ है। अमावस का अर्थ है—चित्त में जड़ता भर देने वाला निराशाजन्य अन्धकार।

६. ओसाण।— पृष्ठ ९७

ओसाण —अवसान। अवधान अर्थ में प्रयुक्त होता है; यथा औसान चूकना। सावधानी चूकना, असावधान रह जाना, प्रमाद कर देना।

'ओसाण को नी बींने क आसरो कठो है।'

उसे यह ध्यान (अवधान), चेत ही नहीं है कि आश्रय कहां है।

७. सपनां जणांई पूग्या है सत् रे नेड़ा, पलकां खुली'र पुतल्यां डूबगी। —पृष्ठ

सत्य के निकट पहुंचने पर पलकें खुल जाती हैं, चेतना प्राप्त होती है। किन्तु तब पुतलियां डूब गईं, मन ध्यानस्थ हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य तुलसी के काव्य में से अर्थापदेश के कुछ उदाहरण—

(क) 'कुम्हारी री करामात' में—

१. दारासुख की कारा—

कारा—जेल। अर्थापदेश से अर्थ हुआ—'केवल अपने में ही सीमित, संकीर्ण, संकुचित या बन्द रख लेने वाली।'

२. अति दूर नगर, निर्जन वन री, आ हालत।
तो पुर-प्रवेश में भारी पड़े वकालत॥

इसमें 'तवालत' शब्द नहीं लिखकर 'वकालत' का प्रयोग किया गया है। वकालत—वकील का कर्म। अर्थापदेश से अर्थ निकला—प्रयास, मार्ग प्रशस्त करने का कार्य।

३. सारी जोखिम ज़ब्त—

जोखिम—खतरा। अर्थापदेश से अर्थ निकलता है 'खतरा लाने वाली वस्तु', अर्थात् 'सम्पत्ति'। यह अर्थादेश अर्थ-विस्तार के द्वारा सम्पन्न हुआ है।

४. फिर-फिर सगरचो शहर जुहार्‌यो, हार्‌यो नहीं हज़ारी।

'हज़ारी' में अर्थ-विस्तार के द्वारा अर्थापदेश हुआ है। अर्थ है हजार जगह घूमने वाला, साहस नहीं हारने वाला व्यक्ति।

(ख) 'सपनै रे संसार' में—

दरदी—दर्द, कष्ट वाला। अर्थापदेश से, अर्थ-संकोच के द्वारा अर्थ हुआ 'रोगी', किसी भी रोग से ग्रस्त व्यक्ति।

अर्थ-गौरव उत्पन्न करने के लिए तेरापंथी काव्य में विशेषतः तीन विधियाँ या शैलियाँ ग्रहण की गयी हैं। ये हैं—

(१) नादात्मक शब्दों का प्रचुर प्रयोग; यथा—

झाझाझोली, ठाऊं-माऊं (अनभिज्ञ), ढींचाल (बड़े डीलडौल वाला), ढूकना (आरंभ करना), दड़बड़ (भाग-दौड़), दडूकना (सांड का शब्द करना), दबदबो (प्रभाव), दिग्दूं (पिंजारे के रुई पींजने का शब्द), धाड़फाड़ (साहसी, निडर), धूणना (हिलाना), धड़ींग (जबर्दस्त) आदि।

(२) समासों का विशेष निर्माण; यथा—

सघन-पुरुषार्थ, आत्मख्यापन, वज्र-संकल्प, आत्म-रमण, भाव-चिकित्सा, कर्म-विलय।

इस पद्धति द्वारा हिन्दी, उर्दू या अंग्रेजी के शब्दों को राजस्थानी शब्दावलि के भीतर अचापचा लिया गया है।

(३) भाषा-समक—

अमीर खुसरो आदि कवियों ने 'भाषा-समक' का प्रयोग किया गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था। भाषा-समक में दो भाषाओं के शब्द या साथ-साथ क्रमशः रख कर कविता बनती है। यह चमत्कारिता पाठकों को आकर्षित करती है, और विभिन्न भाषा-भाषियों को विचारणा में निकट लाती है। सन्त जन भी समाज में वैचारिक समता स्थापित करने में प्रयत्नशील रहते हैं। इसी दृष्टि से तेरापंथी काव्य में भी यत्किंचित् भाषा-समक का प्रयोग हुआ। ऐसा अधिकतर दो भाषाओं के शब्दों के समास बनाने में हुआ है। द्विभाषिक समासों के तथा शब्द-रचना के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

हिन्दी (राजस्थानी)-अंग्रेजी—

'आदत री लाचारी' में—मांस-मार्केट।

हिन्दी (राजस्थानी)-उर्दू—

अकड़ता (भावे 'ता')	तरास्योड़ी (ओड़ो, क्तान्त)
अन्तरदिल	दारूखोर
आदत-परिवर्त्तन	परदरद
ओछी-उमर	पुण्य निशानी
कामना-सैत	बदकर्मी
कृत-करज	बिरथा वैम
खातरी-भगती	राज-मैलां
गाफ़िलता (भावे 'ता')	लाज-शरम
चाडीखोर	शाल-इशारै
चुगलचिड़ी	सनूर
चो निजर्यां (चार नज़रें)	समदीठ
च्यारू तरफी	हरबूंद
छल-छेकी	हिम्मत-हारिणी
जबां जयणा (बोलने की सजगता)	हिम्मत-हारू।

(४) वाक्यांशों (फ्रेजेज़) का विशेष संघटन; यथा—

भावों का स्वयंवर। मान्यता का अभिनिवेश (गलत मान्यता), अभय की तरंगें। संकल्प की नौका। दृष्टि का विपर्यास। आदि।

कविजन सहजतः ही मार्मिक लघु वाक्यांशों की रचना करते हैं। ये प्रभावशाली, सुन्दर वाक्यांश जन-जन के मन में बस जाते हैं, उनकी जिह्वा पर चढ़ जाते हैं, और भाषा के स्थायी अंग बन जाते हैं। फिर ये भाषा के स्थायित्व तथा प्रचार-प्रसार का कारण बनते हैं। यहां हम दो तेरापंथी कवियों—मुनि मोहनलाल आमेट और आचार्य तुलसी के काव्य से कुछ वाक्यांश प्रस्तुत कर रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि आमेट जी की कृति 'तथ'र कथ' में—

अगम की ओलखाण ९९
अगाध सत री सोध ६१
अजाणी लालस्या ४८
अन्ध असता री अमावस ९१
अन्धारै री आदू आंख्यां ९६
अमर बिसवास ११
आकल बाकल आंसू २१
आंख्यां अछूती कलपना ७८
आछी भूण्डी ओखध ६५
आपणूं आपणूं राम ५२
आपरो आपो १०२
उजास रो दरपण १३१
काम लुबध दीठ २५
खुद'र अहम रा बिच्छू ८५
गीत री कालजो छूती गूंज ९३
चिंता मोमाखी रो तीखो डंक ७०
जीवण री रसायण ६७
जोबण रा सपणा ८८
धीरज रो बाँझ १०२
नरक भोगतो बुढ़ापो ४
पराथनां रा फूल ४७
परालबध रै कांटा ६९
प्राणा री नदी नै जोबण रो पाणी ८४
पिराणा री बागबाड़ी ४७
पेट री पूरति १०७
पोरख रै उगतै उजालै ने ६०
बिना विसेसण रो आदमी ३६
बिसवास रै सूरज ५३
बीजरी आसगति १०
बीजरी चेतणा १३०
बेबस मजबूर्यां ६२
मन रो अपरमाद १२
माटी री काया कोटड़ी ९६
मैकता अण भै रा फूल ६९
सरधा री चिणगारी ११३
सासवत रो सैनाण ६३

आचार्य तुलसी के काव्य में प्रयुक्त कुछ वाक्यांश—

'प्रभुता की पराजय' में—

आध्यात्मिक ओज। क्षण की कीमत आँको। क्षीण आवरणी। क्षीण कषाय। गुनह खमाऊं। छोड्यो थारो म्हारो। तरी अगर अभिमान तरी, तो दुख-दुविधावां दूर टरी। मान-मादकता। संयम-सरिता।

'कुम्हारी री करामात' में—

अतिशयधारी। उपरा उपरी उलट्या ग्राम। उग्रविहारी। कालजै री कोर। ग्रन्थिभेद कर। दारा सुख की कारा। धर्म-जागरणा। पौद्गलिक सुख-दुःख। मोह मिटा कर।

'सपनै रै संसार' में—लौ वाणियो।

'रूप रो गरब' में—शठे शाठ्यं पथ।

'मूलस्यूं ब्याज प्यारो' में—अन्तर ज्योत उज्यारी। स्वयं समाहित भाषा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'संकल्प रो बल' में—अनमन विनय। कूप-भेकता। तृणजीवी जीवन। पंचेन्द्रिय-प्राणी। मच्छ गलागल। विभुता और विभूति। शान्त सुधारस। सुपथ-समन्वय।

(५) राजस्थानी मुहावरों और लोकोक्तियों का तत्त्वदर्शन के स्पष्टीकरण में उपयोग; यथा—

मुहावरे—

१. **चासनी चाखना**—स्थिति का जायज़ा लेना।

इसमें प्रतीक-योजना का सौंदर्य स्पष्ट झलकता है।

२. **बांसां उछलना**—सीमातीत हर्ष होना। यह मुहावरा बिम्ब को कमनीय रूप में प्रस्तुत करता है, विशेषतः उस सन्दर्भ में जहां आचार्यश्री तुलसी ने इसका प्रयोग किया है।

कहावतें—

१. आंधो बांटै जेवड़ी, लारै पाडो खाय।

इस कहावत का प्रयोग जीवन की विसंगतियों को ध्वनित करता है।

२. बारै कोसां बोली पलटै, फल पलटै पाकां।
जरा आया केस पलटै, लक्खण नहीं पलटै लाखां॥

लाख प्रयत्न करने पर भी स्वभाव नहीं बदलता। यह कहावत अनेक संगतियों के प्रदर्शन के मध्य में एक असंगति पर विशेष प्रकाश डालकर कथ्य के प्रभाव का संवर्धन करती है।

तेरापंथी काव्य में, इस प्रकार, जो उत्कृष्टता आई है, उस अर्थ-गौरव के दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करता हूँ। प्रथम, पूज्य कालूगणी जी का कथन—

तीन बात हैं बैर की जर जोरू जमीन।
स्वरूपदास तिहुं ते अधिक मत की बात महीन॥

अर्थ-गौरव—मत या सम्प्रदाय के लिए जो झगड़े होते हैं, जो आक्षेप-परिवाद आदि होते हैं, उनसे जो उलझनें पैदा होती हैं, वे धन, स्त्री और भूमि के लिए होने वालों की अपेक्षा कहीं अधिक विनाशकारी बन जाते हैं। मत-भेद विचार-भेद तक ही रहे, तो बात सम्हल सकती है, किन्तु जब मत-भेद को मन-भेद तक बढ़ा दिया जाता है. मनों में दरार पैदा कर ली जाती है, तो वह अत्यन्त अनिष्टकारी हो जाती है। विचार-भेद को जानना-समझना तो ठीक है, उनमें उलझना, उनसे व्यामोहग्रस्त होना उचित नहीं है। अतः भेद में से भी अभेद के तत्त्वों की ही खोज करनी चाहिए। एक नीतिकार कवि ने राजा की नीति के विषय में कहा है :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शत्रुन को उर आण, शत्रु को शत्रु न मानै ।
मित्रन को उर आण, मित्र को मित्र न मानै ॥

यहां 'उर आण' और 'न मानै' की वैचारिक दृष्टि ग्रहणीय है । भेदों और अभेदों दोनों को भली प्रकार समझना तो है, किन्तु उनके कारण लक्ष्य-भ्रष्ट होना, एकत्व को भूल जाना ठीक नहीं । राग-द्वेष दोनों से परे होकर तादात्म्य की अनुभूति करना ही श्रेयस्कर है ।

द्वितीय, तत्त्व-निरूपण और पथ-प्रदर्शन के साथ सभंग श्लेष के अनेक सुन्दर उदाहरणों से युक्त कविवर किशनजी का एक पद यहां द्रष्टव्य है :—

ईहे प्रभुताकुं जो 'किसन' प्रभुताकुं त्यागी,
छरि ना बिभूति तो बिभूति का धारी है ?
जो लौं भगतजी नांह तो लौं भगत जीनांह,
काहे को गुसांईं जो गुसांईं सूं न यारी है ?
काहे को बिराहमन जा को न बिराह मन,
कहा पीर जो पै पर-पीर ना बिचारी है ?
काको वह जोगी जन, जाको नहीं जोगी मन,
आसन ही मार जान्यो, आस नहीं मारी है ?

इसमें आठ शब्दों में सभंग श्लेष के द्वारा अर्थ का गौरव और अभिव्यंजना का चमत्कार उत्पन्न किया गया है । कवि आत्म-संयम का परामर्श दे रहा है, जो इन आठ श्लिष्ट शब्दों को समझ लेने पर स्पष्ट हो जाता है । श्लिष्ट अर्थ देखिये—

१. प्रभुताकुं	(i) प्रभु ताकुं—प्रभु उसको,	(ii) प्रभुता कुं—प्रभुता को
२. बिभूति	(i) विभूति, धन सम्पत्ति,	(ii) विभूति, राख, शरीर पर भस्म लेपन
३. भगतजी	(i) भग तजी, विषय-वासना त्यागी,	(ii) भगतजी, भक्तजी ।
४. गुसाईं	(i) गु साईं, इन्द्रियों का स्वामी,	(ii) गुसा ईं, गुस्सा, क्रोध ही ।
५. बिराहमन	(i) बिराहमन, ब्राह्मण,	(ii) बिराह मन, विशेष राह, उत्तम पथ अर्थात् मोक्ष-मार्ग में जिसका मन है ।
६. परपीर	(i) पीर, संत,	(ii) पर-पीर, दूसरे की पीड़ा ।
७. जोगी	(i) जोगी, योगी, योग-निष्णात	(ii) जोगी, परमात्मा से संयुक्त होने वाला ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. आसन ही—(i) आसन ही, योगासन-मात्र (ii) आस नहीं, आशा, सांसारिक कामना नहीं।
मारना—(i) आसन लगाना (ii) मारी—त्यागी, दमित की।

जैसे भगवान् श्रीराम अभिराम हैं, उनका रम्यत्व हृदयाकर्षक है, क्योंकि वे युगपत् सौन्दर्य, शील और शक्ति के निधान हैं। शक्ति अर्थात् सत्य-संस्थापन सामर्थ्य। उसी प्रकार, भाषा की रम्यता, उसकी अभिरामता, उसकी उत्तमता, चारुता भी उसके सौन्दर्य, शील और शक्ति की निधि होने में है। 'कान्तासम्मिततयोपदेश युजे' में कविता के विषय में तथा उसके सन्निकर्ष से भाषा के विषय में यही कहा गया है कि सत्य-सौन्दर्य-शीलवती होने में ही उसकी इयत्ता है, गरिमा है। 'सम्मिततया युजे' उपदेश, शिवं का, और 'कान्ता' शब्द-सौन्दर्य की वाचकता को ध्वनित करता है। इनमें भाषा और कविता के लिए सौन्दर्य की प्राथमिकता है, किन्तु सत्यं उसका हार्द और शिवं उसका परिफलन है। सन्तों की भाषा में सत्यं और शिवं की प्रधानता रहती है, सौन्दर्य तत्त्व प्रायः निगूढ़ रूप से व्याप्त रहता है। किन्तु तेरापंथ के सन्तों और आचार्यों की—विशेषतः आचार्य भिक्षुजी, जयाचार्यजी और आचार्य तुलसीजी की—भाषा और कविता सौन्दर्य को सत्यं और शिवं से कम नहीं आंकती।

भाषा का सौन्दर्य भावों की हृदयग्राही अभिव्यक्ति और उसके मनोरम संप्रेषण में है, भाषा का शील उसकी एकत्वकारिणी, समन्वयकारिणी और तादात्म्यकारिणी क्रिया-परकता में है, और भाषा की शक्ति उसके सत्य-संस्थापन-सामर्थ्य में है। आगम मत के अनुसार कहें तो भाषा की क्रमशः इच्छा, क्रिया और ज्ञान शक्तियां हैं। तेरापंथी कवियों की भाषा में ये तीनों शक्तियां हैं, विशेषतः तीनों आचार्यों की भाषा में प्रभूत मात्रा में विद्यमान हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थानी चरित काव्य-परम्परा और आचार्य तुलसीकृत चरित काव्य

☐ डॉ. देव कोठारी

काव्य हृदय और बुद्धि की संश्लिष्टि है। इसके निर्माण में कवि के स्वभाव, संस्कार और देशकाल की परिस्थितियों का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। इसी कारण प्रत्येक कवि की काव्य-लेखन की भूमिका भिन्न रहती है। इससे काव्य का स्वरूप बदल जाता है। स्वरूप परिवर्तन की यही प्रक्रिया काव्य को मुक्तक और प्रबन्ध काव्य में विभक्त करती है। मुक्तक काव्य में पूर्वापर प्रसंग निरपेक्ष रस चर्वणा का सामर्थ्य होता है, इस कारण वह मुक्तक काव्य कहलाता है। इसके विपरीत प्रबन्ध काव्य में मानव जीवन का पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करने वाले एवं नाना भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगों का समावेश होता है। ये प्रबन्ध काव्य दो तरह के होते हैं—(१) महाकाव्य और (२) खण्डकाव्य। प्रबन्ध काव्य का एक और रूप होता है, उसे चरित काव्य कहते है।

चरित काव्य में प्रबन्ध काव्य, कथाकाव्य और इतिवृतात्मक कथा (पुराण कथा आदि) इन तीनों लक्षणों का समन्वय होता है। यही कारण है कि चरित काव्यों को कभी कथा, कभी पुराण और कभी चरित कहा जाता है, लेकिन यह भी ज्ञातव्य है कि चरित कथा और पुराण नामान्त वाले सभी चरितकाव्य की श्रेणी में नहीं आते हैं। वस्तुतः चरित काव्य प्रबन्ध की ही एक रूप योजना है, जहां पर पात्र पौराणिक या ऐतिहासिक तथा काल-क्रम—तिथिगत एवं तथ्यगत विवरण से पूर्णतया परिपुष्ट होते हैं। इनमें प्रसंगों की मार्मिक उद्भावना रहती है। कथावस्तु अलंकृत व मर्मस्पर्शी होती है। इनका जीवन व्यापी संदेश पुरुषार्थ जागृत करना होता है। ये क्रिया के नहीं कर्म के प्रबन्ध होते हैं और इनका नायक प्रायः मोक्ष पुरुषार्थगामी होता है।

ये चरित काव्य विषय-वस्तु और उद्देश्य की दृष्टि से छः प्रकार के होते हैं—१. धार्मिक २. प्रतीकात्मक ३. वीरगाथात्मक ४. प्रेमाख्यानक ५. प्रशस्तिमूलक और ६. लोकगाथात्मक। इसके विपरीत जैन चरित काव्यों का विभाजन प्रवृत्ति के आधार पर निम्न चार प्रकार से किया जा सकता है—(१) कर्म संस्कार प्रधान (२) जीव परक (३) जगत परक (४) मनः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रधान। इन समस्त चरित काव्यों के अपने कुछ लक्षण हैं जिनके कारण उनकी प्रबन्ध काव्यों के अन्य रूप से नितान्त भिन्न किन्तु निश्चित पहचान होती है, ऐसे लक्षण निम्न हैं—

चरित काव्यों के लक्षण—

१. चरित काव्यों की शैली जीवन चरित वर्णन की शैली होती है। इनके प्रारंभ में नायक के पूर्वज, वंश, माता-पिता, देश एवं नगर आदि का वर्णन होता है, कभी-कभी पूर्वभवों का इतिवृत्त भी दिया जाता है। इस तरह इनमें चरित नायक की जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अथवा कई भावान्तरों की कथा होती है।

२. ये चरित काव्य कथात्मक अधिक और वर्णनात्मक कम होते हैं। इनमें शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यों की तरह महत्त्वपूर्ण एवं कलात्मकता उत्पन्न करने वाली घटनाओं का चुनाव और वर्णनात्मक अंशों की अधिकता नहीं होती है।

३. चरित काव्यों में प्रेम, वीरता और धर्म या वैराग्य भावना का समन्वय होता है। नायक अन्त में आत्म कल्याण की ओर प्रवृत्त होता है।

४. चरित काव्यों में प्रारंभ में या बीच-बीच में प्रश्नोत्तर शैली या वक्ता-श्रोता योजना होती है। यह प्रायःगुरु व शिष्य अथवा श्रावक व श्रोता के बीच होती है।

५. इनमें अलौकिक, अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियों, कार्यों और वस्तुओं का समावेश अवश्य रहता है। इस कारण इनमें कथानक रूढ़ियां भी पाई जाती हैं।

६. चरित काव्यों की शैली कथाकाव्यों से अधिक उदात्त होती है। शैली में सरलता, सादगी और सामान्य जनता के लिये पर्याप्त आकर्षण रहता है।

७. चरित काव्य उद्देश्य प्रधान होते हैं, केवल मनोरंजन करना उनका लक्ष्य नहीं होता है।

८. इनकी कथावस्तु में व्यास का समावेश अधिक होता है।

९. इनमें घटनाओं, पात्रों और परिवेश की सन्दर्भ पुरस्सर व्याख्या होती है।

१०. नायक के चरित में इस प्रकार की परिस्थितियों का नियोजन होता है, जिससे उसका चरित स्वतः उद्घाटित होता रहता है।

११. चरित काव्यों में घटना और वर्णन दोनों का समन्वय होता है।

१२. चरित काव्यों में भूल कथा के साथ-साथ आवान्तर कथाओं, वस्तुओं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पात्रों एवं भाव-अनुभाव का निरूपण भी आवश्यक है, ताकि जीवन की समग्रता सहज ही उद्घाटित हो सके।

१३. चरित काव्य में जो विवरण प्रस्तुत किया जाय उसमें गौण विवरण की प्रचुरता न हो तथा सभी विवरण या ब्यौरा तर्क संगत हो। कथा में कृत्रिमता का आभास न हो।

१४. चरित काव्यों के पात्रों में स्वाभाविकता का होना आवश्यक है क्योंकि पात्रों का अस्वाभाविक दैवी-रूप चरित काव्य को पुराण बना देता है।

१५. चरित काव्यों में गंभीरता, उदारता और रूचिरता आवश्यक होती है।

चरित काव्यों की परम्परा—

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त चरित काव्यों की संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश में लम्बी परम्परा उपलब्ध होती है। यह परम्परा काफी समृद्ध और विस्तृत है। संस्कृत से भी प्राकृत में चरित काव्यों के निर्माण की परम्परा पहले मिलती है। प्राकृत का सर्वप्रथम चरित काव्य विमलसूरिकृत 'पउमचरियं है।" इसका रचना काल ग्रन्थ की प्रशक्ति में ईस्वी सन् की प्रथम शती बताया गया है, लेकिन अन्तः साक्ष्यों के आधार पर इसका रचनाकाल ई. सन् की तीसरी-चौथी शती है। यह राम कथा से सम्बन्धित है। इसी चरित काव्य के आधार पर महाकवि रविषेण ने संस्कृत में "पद्मचरितम्" की रचना की। पद्मचरितम् का रचनाकाल ईस्वी सन् की सातवीं शती है। प्राकृत का दूसरा चरित काव्य "सुरसुंदरी चरियं" है। यह प्रेमाख्यानक है। इसके रचयिता धनेश्वरसूरि है तथा रचनाकाल ई. सन् १०३८ भाद्रकृष्णा द्वितीया गुरुवार है। इसके बाद प्राकृत में चरित काव्यों की लम्बी परम्परा मिलती है, इन चरितकाव्यों में लक्ष्मण गणि कृत "सुपासनाह चरियं" (वि० सं० ११९९), अभयदेव सूरि के शिष्य-चन्द्रप्रभ महत्तर कृत "सिरि विजय चंद केवरिया चरियं (वि०सं० १२७०) तपागच्छीय अनन्त हंस कृत "सुदंसणचरियं" (ई०सन् १२७०) तपागच्छीय अन्नतहंस कृत "कुम्मापुत्त चरियं' (१६वीं शती) आदि प्रमुख हैं।

संस्कृत के चरित काव्यों में रविषेण के बाद जटासिंहनन्दि कृत 'वराङ्गचरित' है। इसका रचनाकाल ईस्वी सन् की आठवीं शती का पूर्वार्द्ध है। इसी क्रम में संस्कृत में वीरनन्दी कृत "चन्द्रप्रभचरितम् (ई०सन् की १०वीं शती)" महाकवि असग कृत "शान्तिनाथ चरित" और "वर्द्धमान चरित" (ई०सन् की १०वीं शती) वादिराज कृत "पार्श्वनाथ चरितम्" (१०वीं शती ई०) महासेन कृत "प्रद्युमन चरित" (११वीं शती ई०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेमचन्द्राचार्य कृत "कुमारपालचरितम्" (१२वीं शती ई०) आदि चरित काव्य उपलब्ध होते हैं। बारहवीं शती के बाद तो संस्कृत में चरित काव्यों की एक लम्बी शृंखला मिलती है।

अपभ्रंश में चरितकाव्यों की रचना का सर्वप्रथम उल्लेख ईस्वी सन् की आठवी शती के कवि स्वयंभू के "रिट्ठणेमिचरिउ" और "पउमचरिउ" आदि शीर्षक कृतियों के रूप में मिलता है। इसके बाद महाकवि पुष्पदन्त (१०वीं शती अनुमानित) की रचनाएं "णायकुमारचरिउ" और "जसहर-चरिउ" कवि घाहिल कृत "पउमसिरिचरिउ" (१०वीं शती ई०) मुनि कनकामर कृत "करकंडचरिउ" (१०वीं शती) आदि चरित काव्य उपलब्ध होते हैं। अपभ्रंश में भी चरितकाव्यों की प्राकृत व संस्कृत की तरह सुदीर्घ परम्परा मिलती है।

राजस्थानी चरित काव्य-परम्परा—

राजस्थानी साहित्य काफी समृद्ध है। यह गद्य व पद्य दोनों रूपों में प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होता है। पद्य साहित्य में मुक्तक और प्रबन्ध काव्य विषय-वस्तु की दृष्टि से विविध रूपात्मक है। मुक्तक काव्य बारह प्रकार के हैं यथा—संख्यामूलक, छन्दमूलक, वन्दनामूलक, बुद्धिपरीक्षामूलक, उपदेशमूलक, संवादमूलक, मंगलमूलक, तीर्थयात्रामूलक, मालामूलक, संगीत-मूलक, स्वाध्याय मूलक और अन्य।[1] इसी प्रकार प्रबन्ध काव्य भी पांच प्रकार के हैं—यथा, नृत्य-संगीतमूलक, चरितमूलक, मंगलमूलक, प्रेमव्यंजनामूलक और विज्ञानमूलक।[2]

इसमें चरितकाव्य परम्परा राजस्थानी में काफी उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण है। यह प्राचीन व समृद्ध भी है। रूप परम्परा की दृष्टि से भी काफी चर्चित है। इन चरितकाव्यों के नामकरण की भी अपनी एक विशिष्ट शैली है। यह आवश्यक नहीं है कि इन चरित काव्यों के नामकरण में "चरित" शब्द को जोड़ा ही जाय। "चरित" के अतिरिक्त अन्य शब्दों को भी चरित काव्य के नामकरण में जोड़ कर उनमें एक अनूठा आकर्षण पैदा किया गया है। ऐसे शब्दों में विलास, प्रकाश, रूपक, प्रबन्ध, प्रवाड़ा रास, चौपाई, बेलि, संधि कथा, आख्यान, झूलणा आदि मुख्य हैं।

इनमें भी विलास, प्रकाश, रूपक, चरित और प्रबन्ध संज्ञक रचनाओं में कोई तात्विक अन्तर नहीं है।[3] इनकी मुख्य विशेषता यह है कि जो प्रबन्धकाव्य जिस महापुरुष को आधार बनाकर लिखा गया है, उसके नाम के साथ विलास, प्रकाश, रूपक, चरित, प्रबन्ध आदि संज्ञाएं जोड़ दी गई हैं।[4] विलास व प्रकाश संज्ञक रचनाओं में कभी-कभी कथानक को सर्गों की तरह "विलास" "प्रकाश" में भी विभाजित कर दिया जाता है। रूपक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का अर्थ यहीं पर नाट्य रूप से नहीं है, काव्य रूप से ही है। इस तरह के नामान्त वाले चरित काव्यों से सम्बन्धित प्रसिद्ध कृतियां निम्न हैं—

१. विलास—राज विलास, भीम विलास, अभयविलास, रतन विलास, कालूयशो विलास

२. प्रकाश—राजप्रकाश, सूरज प्रकाश, भीम प्रकाश, कीरत प्रकाश

३. रूपक —राजरूपक, गोगादे रूपक, रावरिणमल रा रूपक, रतन-रूपक

४. चरित — सदयवहम चरित, पद्मनी चरित, अवतार चरित, डालिम चरित, मगन चरित

५. प्रबन्ध—त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध, हरिपिंगल प्रबन्ध, दशकुमार प्रबन्ध।

इन चरित काव्यों की परम्परा राजस्थानी में अपभ्रंश से उत्तराधिकार में मिली है, लेकिन अपभ्रंश से भी अधिक राजस्थानी में लोकप्रिय और समृद्ध हुई। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी से जब राजस्थानी अपभ्रंश से अलग भाषा के रूप में विकसित हो रही थी और अपने प्रारंभिक काल में ही थी, तब से ही राजस्थानी में चरित काव्यों की परम्परा उपलब्ध होती है। राजस्थानी में सबसे पहला चरितकाव्य अचलगच्छ के महेन्द्रसिंहसूरि के शिष्य धर्महिंससूरि द्वारा रचित "जंबूसामिचरिय" है। इसका रचनाकाल वि.सं. १२६६ है। इसके बाद नागेन्द्र गच्छ के पासड़सूरि के शिष्य अभयदेवसूरि कृत "समरसिंह रास" चरितकाव्य का श्रेष्ठ निदर्शन है। इसका रचनाकाल वि.सं. १३७१ है। इसी तरह वि.सं. १४८४ में हीरानंदसूरि ने "विद्या विलास पवाडों" तथा वि.सं. १५१२ में पद्मनाम ने "कान्हड़दे प्रबंध" की रचना की। ये दोनों भी चर्चित काव्य हैं। इसके बाद तो चौपई, बेलि, संधि, कथा, आख्यान, झूलणा आदि संज्ञाओं से युक्त चरित काव्यों की एक लम्बी व विस्तृत परम्परा मिलती है। इन चरित काव्यों की परम्परा में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है और वह यह कि राजस्थानी में चरितकाव्यों का प्रारंभ एक जैन संत धर्मसिंहसूरी द्वारा हुआ और बाद में जैन संतों द्वारा ही इसे आगे भी बढ़ाया गया। महापुरुषों के चरित्र के माध्यम से श्रावकों में चारित्रिक शुद्धि व दृढ़ता को प्रेरित व प्रोत्साहन करने के इस तरह के प्रयास जैन धर्म में प्राचीन परम्परा रही है।

तेरापंथ में राजस्थानी चरित काव्य-परम्परा—

तेरापंथ धर्मसंघ भी ऐसे चरित-काव्यों के निर्माण में पीछे नहीं रहा। आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ की स्थापना के साथ ही राजस्थानी चरित काव्यों के सृजन की नींव डाल दी थी, उनकी बीज-वपन की इस परम्परा को मुनि श्री हेमराजजी, वेणीदासजी जैसे संतों ने आगे बढ़ाया एवं जयाचार्य ने इसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्ट किया, आचार्य मघराजजी व माणकगणी ने इसे सींचा तथा तेरापंथ धर्मसंघ के वर्तमान आचार्य श्री तुलसीगणी ने राजस्थानी चरित काव्यों की इस वल्लरी को पुष्पित किया। इन सबने राजस्थानी चरित काव्यों को नये आयाम दिये तथा तेरापंथ के चरित काव्यों को चरित, बरवांण, चौपई, रसायण विलास, सुजश नवरसो, ढालियो आदि अन्य कई अभिधानों से भी अभिहित किया। ऐसे चरित काव्यों की एक लम्बी सूची है। यथा :—

१. आचार्य भिक्षु कृत चरितकाव्य—
भरत चरित, जंबूकुमार चरित, सुदर्शन चरित, सुबाहुकुमार रो बखाण, मल्लिनाथ रो बखाण, सकडाल पुतर रो बखाण, धना अणगार रो बखाण, द्रौपदी रो बखाण आदि

२. मुनिश्री हेमराजजी कृत चरित काव्य—
भीखू चरित, आचार्य भारी माल रो बखाण

३. मुनिश्री वेणीदासजी कृत चरित काव्य—
भीखू चरित

४. जयाचार्य कृत चरित काव्य—
भिक्खुजस रसायण, सतजुगी चरित, सरूप विलास, शांति विलास, भीम विलास, सरदार सुजश, हेम नवरसो, शिवजी रो चोढालियो, वेणीरामजी रो चौढालियो मोतीजी, उदय चंदजी, हरखजी, हस्तूजी-कस्तूजी आदि के चौढालिये।

५. आचार्य मघराजजी कृत चरितकाव्य—
आचार्य जीतमलजी रो बखांण

६. आचार्य माणक गणी कृत चरित काव्य—
आचार्य मघराजजी रो बखांण

आचार्य तुलसी कृत राजस्थानी चरित काव्य—

तेरापंथ धर्मसंघ में राजस्थानी चरित काव्यों की इस परम्परा को वर्तमान आचार्य भारत ज्योति आचार्य श्री तुलसी ने विस्तृत एवं सुदृढ़ आधार प्रदान किया। उन्होंने राजस्थानी चरित काव्यों में न केवल एक नवीन शैली प्रदान की अपितु भाषा, भाव एवं कला पक्ष की दृष्टि से भी उन्हें एक नई दिशा दी। उनके द्वारा अब तक राजस्थानी में चार चरित काव्यों की रचना की गई है। उन चारों का संक्षिप्त परिचय उनके रचनाकाल के क्रम से इस प्रकार है:—

(१) कालू यशोविलास

यह चरित काव्य तेरापंथ के अष्टमाचार्य कालूगणी के जीवन से सम्बन्धित है। इसका निर्माण कार्य वि.सं. १९९६ फाल्गुन शुक्ला तृतीया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोमासर जिला चूरू में आरंभ किया और वि.सं. २००० की भाद्रपद शुक्ला षष्ठी रविवार को संध्या समय गंगाशहर (बीकानेर) में पूर्ण किया। इस प्रकार इसका निर्माण लगभग चार वर्षों में जाकर पूर्ण हुआ। सम्पूर्ण काव्य छः उल्लासों में विभक्त हैं। प्रत्येक उल्लास में छः कलाएं तथा प्रत्येक कला में सोलह-सोलह गीत हैं। उल्लास की समाप्ति पर पाँच शिखा के रूप में स्वीकृत किया गया है। कुल मिला कर इसमें १०१ गीत हैं। इन गीतों के अतिरिक्त अन्य अनेक छन्दों में कथावस्तु प्रस्तुत की गई है। प्रत्येक उल्लास के अन्त में पुष्पिका रूप उपसंहृति संस्कृत भाषा में निबद्ध है।

कथानक का प्रारंभ कालूगणी की स्तुति से होता है। इसके पश्चात् भौगोलिक परिवेश, पारिवारिक परिचय, जन्म, माता-पिता, सत्संग, वैराग्य दीक्षा, पंचमाचार्य मघवागणी का शिष्यत्व, माणकगणी, डालमगणी का सान्निध्य, डालमगणी के काल में प्रच्छन्न युवाचार्य, कालुगणी का स्वर्गारोहण, कालूगणी के बहुआयामी नेतृत्व आदि के विवरण के साथ प्रथम उल्लास समाप्त होता है। द्वितीय उल्लास में जर्मन विद्वान हर्मन याकोबी का आगमन, नाबालिग दीक्षा प्रतिरोध, कांठा, मेवाड़, हरियाणा आदि प्रदेश की यात्रा, तृतीय उल्लास में बीकानेर चातुर्मास में विरोध, जयपुर चातुर्मास, आचार्य तुलसी की दीक्षा, थली प्रदेश में संघर्ष, चूरू चर्चा, ऋतु वर्णन चतुर्थ उल्लास में आचार्य तुलसी की पौशाल, मरूधर विहार, जोधपुर चातुर्मास, कालूगणी के साथ आचार्य तुलसी का संवाद, जंगल का वर्णन, उदयपुर चातुर्मास, पंचम उल्लास में दीक्षा प्रसंग में उत्पन्न भ्रांत धारणाएं, मेवाड़ से मालवा की ओर प्रस्थान, मालवा में विरोधी वातावरण, बड़नगर मर्यादा महोत्सव, हाथ की तर्जनी अंगुली में वेदना और षष्ठ उल्लास में गंगापुर चातुर्मास, अंगुली की वेदना और विभिन्न उपचार, साध्वी प्रमुखाश्री कानकुमारी का स्वर्गवास, तुलसीगणी को युवाचार्य पद, कालूगणी का स्वर्गारोहण, आदि घटना क्रमों के साथ कथानक समाप्त होता है। अंत की पांच शिखाओं में कालूगणी की जीवन-झांकी संघ के बहुमुखी विकास की चर्चा, संस्मरण और कवि का गुरु के प्रति समर्पण भाव आदि का काव्यमय उल्लेख है। कालूयशोविलास अपने आप में एक सम्पूर्ण प्रबन्ध काव्य है। इसमें प्रबन्ध काव्य, महाकाव्य और चरितकाव्य तीनों की विशेषताएं एक साथ उपलब्ध होती हैं।

(२) माणक महिमा—

यह चरितकाव्य तेरापंथ धर्म संघ के छठे आचार्य माणकगणी के जीवन चरित्र से सम्बन्धित है। इसका रचनाकाल वि.सं. २०१३ है। रचना स्थल सरदारशहर है। इसकी प्रथम प्रति मुनि मधुकर ने तैयार की तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि.सं. २०२३ में बीदासर में इसमें परिवर्धन-संशोधन किया गया और आदर्श साहित्य संघ द्वारा इसका प्रकाशन हुआ। कृति की विषय-वस्तु २१ गीतों में विभाजित है। माणकगणी तेरापंथ धर्मसंघ में सबसे कम समय केवल साढ़े चार वर्ष तक आचार्य पद पर आसीन रहे। इतने कम समय का आचार्यकाल होने के कारण माणकगणी का जीवन चरित घटना प्रधान नहीं बन पाया, फिर भी तेरापंथ की ख्यात, मंत्री मुनि मगनलालजी के संस्मरण, सोहनलाल सेठिया द्वारा लिखित "शासन सुषमा" तथा सरदारशहर निवासी गणेशदासजी गधैया की ऐतिहासिक सूचनाओं के आधार पर "माणक महिमा" का कथानक निर्धारित किया गया है।

कृति का प्रारंभ मंगल वचन से हुआ है। तत्पश्चात् जयपुर नगर का ऐतिहासिक संदर्भों में विश्लेषण, माणकगणी का पारिवारिक परिचय, वैराग्य, कष्टमय साधु जीवन की चर्चा, दीक्षा, जयाचार्य का स्वर्गवास, मघवागणी का आचार्य पदारोहण, माणकगणी को युवाचार्य पद, मघवागणी का निधन, माणकगणी को आचार्यत्व, हरियाणा यात्रा, साधु-साध्वियों का वर्णन माणकगणी की अस्वस्थता, स्वर्गारोहण तथा बाढ़ की परिस्थितियों को कथा वस्तु का माध्यम बनाया गया है।

कृतिकार ने इस चरितकाव्य के नायक माणकगणी के चरित्र का ऐसा हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, जिससे लगता है कि कवि कृति के नायक का समकालीन हो, लेकिन ऐसा नहीं है। अनदेखे परिवेश का ऐसा सजीव एवं जीवंत चित्रण आचार्य श्री तुलसी की संवेदनशीलता का परिचायक है।

(३) डालिम चरित्र —

इस चरितकाव्य के नायक तेरापंथ संघ के सातवें आचार्य डालमगणी हैं। इसका रचनाकाल वि.सं. २०१३ से २०१८ है। वि.सं. २०१३ में सरदारशहर में इसकी रचना आरंभ की गई किन्तु उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल की लम्बी यात्रा द्वि-शताब्दी महोत्सव, आगम गवेषणा आदि व्यस्त कार्यों के कारण इसे बीदासर चातुर्मास काल में श्रावणी पूर्णिमा वि.सं. २०१८ में पूर्ण किया। इसके पश्चात वि सं. २०३२ में जयपुर में इसका पुनरावलोकन कर आदर्श साहित्य संघ द्वारा प्रथम प्रकाशन किया गया।

इस कृति के चरित नायक का जीवन अनेक उतार-चढ़ावों से युक्त रहा है। उसकी झलक इस कृति में प्रत्यक्ष होकर उभरी है। मूल कथानक दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में बीस गीत और द्वितीय में २१ गीत हैं। इस प्रकार इसकी कथावस्तु कुल ४१ गीतों में आबद्ध है।

प्रथम खण्ड की कथावस्तु मंगल वचन से आरंभ होती है। इसके बाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उज्जैन नगर का ऐतिहासिक वर्णन, नायक डालचन्दजी के परिवार, शिक्षा-दीक्षा, जयाचार्य से मिलन, कच्छ यात्रा तथा सातवें आचार्य पद पर निर्वाचन तक और सम्बन्धित प्रासंगिक घटनाओं ये युक्त कथानक का विस्तार प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय खण्ड में आचार्य पद के निर्वाचन की अप्रत्याशित सूचना, संघ मिलन, पदारोहण, चातुर्मास, साधु-साध्वियों की दीक्षा, रोचक प्रसंग, संस्मरण, उत्तराधिकारी का चयन एवं स्वर्गारोहण तक का कथानक इसमें गुम्फित है।

(४) **मगन चरित्र**—

यह चरित काव्य तेरापंथ के मंत्री मुनि मगनलालजी से सम्बन्धित है। ये तेरापंथ धर्मसंघ के मनीषी मुनियों में से एक थे। यद्यपि ये आचार्य नहीं थे, लेकिन इन्होंने तेरापंथ के लगातार पांच आचार्यों के युग को प्रत्यक्षतः अपनी आंखों से देखा था, इस कारण ये संघ के एक स्तंभ थे। इन्हीं के जीवन चरित को इस कृति की कथावस्तु का आधार बनाया गया है। वि.सं. २०१६ में मंत्री मगनलालजी का स्वर्गवास हुआ, उसके बाद मगन चरित्र का सृजन करने का अनुक्रम बना, लेकिन दक्षिण में प्रवास और मध्यप्रदेश में उत्पन्न विप्लव के कारण इसमें व्यवधान उत्पन्न होता रहा, अन्ततः वि.सं. २०२८ आषाढ़ मास की पूर्णिमा गुरुवार तदनुसार आठ जुलाई सन् १९७१ को इसकी रचना पूर्ण हुई। इसकी प्रथम प्रति मुनि श्रमण सागर ने तैयार की। मुनि मधुकरजी ने इसको अन्तिम रूप दिया और साध्वी प्रमुखाजी ने इसका सम्पादन किया। कृति में कुल ९४९ पद्य हैं तथा देशी राग-रागनियों की लगभग बीस लयों में यह रचना आबद्ध है।

इसका सम्पूर्ण कथानक पांच युगों में विभक्त है, यथा मघवा युग, माणक युग, डालिम युग, कालू युग और तुलसी युग। छठा विभाग जीवन झांकी एवं प्रशस्ति का है। कृति का आरंभ मघवा युग से होता है। प्रारंभ में परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है, तत्पश्चात मोटा ग्राम (गोगुन्दा) की प्राकृतिक छटा का मनोहारी वर्णन है। इसके बाद मेवाड़ की ऐतिहासिकता मंत्री मुनि का पारिवारिक परिचय वैराग्य, दीक्षा, मघवा, माणक, डालिम, कालूगणी आदि आचार्यों का सान्निध्य, इन आचार्यों के काल की विविध घटनाओं में मंत्री मुनि के योगदान का वर्णन है। तुलसी युग का विवरण अधिक विस्तार से है। छठे विभाग में मंत्री मुनि के मधुर संस्मरणों को प्रस्तुत किया गया है। प्रशिस्त में रचना क्रम में उत्पन्न बाधाओं का वर्णन है।

चरित काव्यों का मूल्यांकन—

आचार्य श्री तुलसी कृत उपर्युक्त चारों चरित काव्य अपने आप में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्ण एवं उल्लेखनीय चरित काव्य हैं। ये चरित काव्यों के समस्त लक्षणों से युक्त हैं। भावपक्ष एवं कलापक्ष की दृष्टि से भी ये कृतियां प्रौढ़ तथा उत्कृष्ट हैं।

भावपक्ष [१] कथानक—

कथानक का संक्षिप्त सारांश कृतियों के परिचय के अन्तर्गत ऊपर दिया जा चुका है। इन चारों कृतियों का यह कथानक तेरापंथ धर्मसंघ के तीन आचार्यों क्रमशः माणकगणी, डालमगणी एवं कालूगणी तथा मंत्री मुनि के रूप में ख्यात मगनमुनि से सम्बन्धित है। चारों ही कथानक ऐतिहासिक हैं तथा तेरापंथ धर्म संघ के समकालीन इतिवृत्त की प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत करते हैं। कथानक में कल्पना का समावेश नाम मात्र है। मूल कथानक के साथ-साथ प्रासंगिक घटनाओं एवं आख्यानों का सजीव एवं जीवंत चित्रण कवि की अपनी विशेषता है। इससे कथानक की मौलिकता में प्रामाणिकता का समावेश हुआ है। कथानक की प्रस्तुति सहज व स्वाभाविक है। अतिशयोक्ति एवं आडम्बर से कवि ने सर्वत्र परहेज किया है। कृतियों के शीर्षक चरितनायकों के नाम पर ही रखे गये हैं तथा उनके जीवन का समग्र चित्रण चरित काव्यों के मूल लक्षणों (जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है) के अनुरूप है।

[२] **रस योजना**—काव्य में रस का प्रयोग काव्यास्वाद अथवा काव्यानन्द के लिये होता है। इन चरित काव्यों में विभिन्न रसों का चमत्कारपूर्ण परिपाक हुआ है। काव्य में नौ रस माने गये हैं यथा—शृंगार, करूण, शांत, हास्य, वीर, भयानक, रौद्र, विभत्स एवं अद्‌भुत, किन्तु अब आधुनिक साहित्य शास्त्रियों ने वात्सल्य को भी एक रस के रूप में स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार अब दस रस हो गये हैं। आचार्य श्री तुलसी कृत इन चारों ही काव्यों में कम ज्यादा सभी रसों का परिपाक हुआ है। कालूयशोविलास में स्वयं कवि ने कहा है—

शान्त करुण रस, तरुण हास्य रस, वीराद्‌भुत अनवद्य।
प्रादूर्भूत अभूतपूर्व रस, श्रोता हृदये सद्य॥

शान्त, करुण, हास्य, वीर और अद्‌भूत रस के अतिरिक्त शृंगार, रौद्र, वात्सल्य, भयानक आदि रसों का भी अन्य कृतियों में प्रयोग हुआ है, लेकिन चारों कृतियों में प्रधान रस शान्त रस ही है। यही अंगी रस भी है। शान्त रस के सहायक रस के रूप में करुण, वात्सल्य, वीर आदि रस भी कृतियों में उपस्थित है। कहीं-कहीं रौद्र अद्‌भुत व भयानक रस भी उपलब्ध होते हैं। विभत्स व शृंगार रस का प्रयोग साहित्यिक मान्यता के अनुरूप नहीं हुआ है। क्योंकि चारों ही काव्य शान्त रसात्मक भक्ति से परिपूर्ण है, इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार इन रसों के परिपाक का इन कृतियों में अवसर नहीं मिला है यह स्वाभाविक भी है। उपलब्ध रसों के उदाहरण दृष्टव्य हैं—

शान्त रस

परम कृपाकर मुझ ने गुरु षड्दर्शन पाठ पढ़ावे रे।
अरु प्रमाण नय तत्व ग्रंथ रो, गौरव हृदय बिठावे रे॥
श्री कालू कल्याण मन्दिर, पाद-पूर्ति स्तुति गावै रे।
संवत्सरि-दिन भर परिषद में सुण मुझ मन सहलावै रे॥

(कालू यशोविलास, पृ० २१३)

करुण

ओ बिना वगत सूरज छिपग्यो, लागै है अंबरियो ऊणो।
बुझग्यो दीपक जो जगमगतो, करग्यो सगले घर ने सूनो॥
तारा-नक्षत्र घणां नभा में, पिण चांद बिना फिका लागे।
शासण सारो सब साध्व-सत्यां, शोभै शासणपति रे सागै।

(डालिम चरित्र, पृ० ६८)

वात्सल्य

महंगो माणकयों, हीरा पन्नां विच राखियो
पुण्योदय-पाप परखियो,
अखियां रो तारो, हार हिया रो जी॥
कोमल है काया, निश्छल है तन री छाया
मन को निर्मल, नहिं माया
आयास नहीं मुनि जीवन वारो जी॥

(माणक महिमा, पृ ३७)

हास्य

वृन्दावन, मथूरा, काशी, जासी तो पाप पलासी
सुण-सुण मन में आवै हांसी, बात दुनिया री॥
गंगा, गोमती, त्रिवेणी, न्हा जीवन नैया खेणी।
सब रवयै पाप की श्रेणी, सहज सुविधा री॥

(कालूयशोविलास, पृ० १११)

वीर

सुणी मरुस्थल थल री यात्रा, करणी मन में ठाणी।
अति आतप, अन्धड़, असभ्यजन, निर्जलमुल्क निसाणी रे॥
सरद-मौसम लक्कड़दाहो घाम तपै ज्यूं भट्टो।
बरसालै बिरखा रा सासा, उड़ै मौसमी मटटी रे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलै न खाद्य-पदार्थ-सार्थ जिण देशे साहिब स्वादू ।
बाजर-रोट सोट सम नहिं कोई फल रस रो अस्वादू रे ।।

(कालू यशोविलास, पृ० ६७)

रौद्र

सन्त सत्यां प्रतिदिन सही, गाल्यां री बौछार ।
रूपां जतणी राखती, सतियां री संभार ।।
पथ में आवत-जावतां, नाना रंग बिरंग ।
सह्या उपद्रवशान्त मन, नित-नित नया प्रसंग ।।
धैर्य ध्वंसिनी धृष्टता अमानुषिक आचार ।
क्षमाशील क्षमा करै, तर्कण सौ तकरार ।
आज रांगड़ी चौक में, भीषण हुसी भिडंत ।
सहनशीलता री अरी, सीमा होवै अंत ।।

(कालू यशोविलास, पृ० १३५)

भयानक

हाय वेदनी क्रूर-कर्म, सन्ता नै क्यूं संतावै ।
अपणां बांध्या आप भुगतणां कुण विभाग बंटावै ।।

× × ×

केसूला रा फूल टांटिया रो छातो ले बांध्यो,
चूहै री मिगणियां किण ही टूट्यो तार न सांध्यो ।।

× × ×

पड़ै न पल भर चैन शहर भर बेचैनी फैली है,
बेरण बणी कचौटे भीतर स्यूं पिशाब थैली है ।

(मगन चरित्र, पृ० १०४-१०५)

अद्‌भुत

सुर, दानव, गन्धर्व, सर्व आय मुझ नै कहै ।
मानूं नहीं सगर्व, तेरापंथी साध है ।।

(डालिम चरित्र, पृ० १५६)

३. प्रकृति वर्णन—आचार्य श्री तुलसी कृत ये चारों ही चरितकाव्य प्रकृति वर्णन की रमणीयता की दृष्टि से मनोहर एवं मुग्धकर हैं । प्रकृति की सुरम्य छटा का वर्णन इन चरित्र काव्यों, विशेषकर कालूयशोविलास व मगन चरित्र में है, वह कवि की मौलिकता, सूक्ष्म निरीक्षण कुशलता, प्रकृति प्रेम का परिचायक है । शान्त रसात्मक कथानक में भी कवि ने बड़ी कुशलता-पूर्वक ऐसे स्थल खोज निकाले हैं, जहां प्रकृति का चित्रण कर सके । यह चित्रण भी बड़ा सहज और स्वाभाविक है । कवि ने प्रकृति की रमणीयता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमनीयता व मौलिकता का पूरा ध्यान रखा है। यह प्रकृति वर्णन कथानक को आगे बढ़ाने में सहायक हुआ है, बोझ बन कर नहीं आया है। प्रकृति चित्रण के साथ-साथ ऋतु वर्णन भी बड़ा ही सरस बन पड़ा है। कवि ने तेरापंथ के मर्यादा महोत्सव जैसे यथार्थ को ऋतुओं के रूप में परिकल्पित कर अपने सृजन शिल्प को नई ऊंचाई प्रदान की है। प्रकृति वर्णन के कुछ उदाहरण दृष्टव्य है—

गंगा जमना और सुरसती, उछल-उछल कर गलै मिले।
विरह, पताप, संताप भूला कर रूं-रूं हर्षांकुर खिलै॥
गहरो रंग हृदय में राचै, नाचै मधुकर जिधर निहारो।
तेरापंथ पंथ रो प्रहरी, म्हामोछब लागे प्यारो॥

(कालू यशोविलास, पृ० २९७)

नीर बहै झर-झर झरणां रो, करणां रो बहलाव।
अम्ब-डार कोयलियां कुजै, गूंजै मधुरा राव॥
जाई-जूही री खुशबू ही, अलि निकुरम्ब विहारे।
सारे..... ....

(भगन चरित्र, पृ० ७)

कला पक्ष—आचार्यश्री के चारों चरित काव्य सृजन की ऊर्जा के सूक्ष्म संवाहक हैं। यही कारण है कि इन कृतियों का कलापक्ष कथ्य के नूतन उन्मेष और नव शिल्पन की मीनाकारी से ओत-प्रोत हैं। इस जीवंत अभिव्यक्ति का साक्षात्कार दृष्टव्य है—

१. **छन्द**—कवि ने अपने भावों को छंदों में पिरोकर कथावस्तु को सहज सौन्दर्य प्रदान किया है। छन्दों में आपका राजस्थानी का "गीत' छन्द सर्वाधिक प्रिय रहा है। गीत के बाद दोहा, सोरण, एवं लावणी छन्द प्रिय रहे हैं। इन चारों छन्दों का चारों कृतियों में सर्वाधिक बार प्रयोग हुआ है। गीत छन्द लय युक्त है और उसे विभिन्न राग-रागनियों में निबद्ध किया गया है। इसलिये गेयता इनका प्रमुख लक्षण है। चारों कृतियों में प्रयुक्त अन्य छंद इस प्रकार हैं—

कलश, छप्पय, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, दुमिला, इन्दव, गीतक, चौपई, मुक्त, शार्दूलविक्रीडित, भुजंगप्रयात, मोतीदाम, वसन्ततिलका, उपजाति द्रुतविलम्बित, रामायण, हरिगीतक नवीन छन्द आदि।

२. **अलंकार**—आचार्यश्री ने अपने काव्य में अलंकारों को सप्रयास और ठूंस-ठूंस कर नहीं भरा हैं, इस कारण ये चारों कृतियां बोझिल नहीं अपितु सरस हैं। जहां कहीं पर भी अलंकार आये हैं वे सहज एवं स्वाभाविक रूप से आये हैं। इससे काव्य का कलागत सौन्दर्य बढ़ा है और कवि की कलावादी दृष्टि की प्राकृतिकता एवं स्वप्रेरित गरिमा भी स्पष्ट हुई है। यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री तुलसी के कवि हृदय की प्रौढ़ता को परिलक्षित करता है। इन चारों कृतियों में कोई भी ऐसा पद नहीं है जो अलंकृत नहीं हो। यदि किसी पद में अर्थालंकार का प्रयोग नहीं हो सका तो वहां पर शब्दालंकार की रमणीयता अवश्य उपलब्ध हो जायेगी। शब्दालंकार में अनुप्रास तथा यमक का प्रयोग विशेष रूप से मिलता है। अनुपास में लाटानुप्रास, छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास कवि को विशेष प्रिय रहे हैं। अर्थालंकारों में कवि ने रूपक, उपमा उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि का विशेष प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

अनुप्रास

जांगल जीव भेड़िया भालू, सांभर, शशक सियार

(मगन चरित्र, पृ० ७)

रूपक

क्षमा खड्ग कर धर सुभग, धर्म-ढाल दृढ़ ढाल।
शास्त्र शस्त्र, जिन व च कवच, प्रत्याक्रमण कराल॥

(कालूयशोविलास, पृ० १३२)

उपमा

बांध्योड़ी मर्यादा भारी भिक्षुराजजी,
गूंथ फूलमाला-सी बणाई हाजरी। (डालिम चरित्र, पृ० ३४)

मालोपमा

बिलकुल खाली पात्र स्यूं रे, क्यूंकर खलक्यो नीर।
झोली पात्र जुदा-जुदा रे, दिखलाया धर धीर॥
पकड़्यो वन्ध्या-पुत्र नै रे, चोरी में चौगान।
घस्यो सींग खरगोश रो रे, औषधि हित अनुपान॥

(डालिम चरित्र, पृ० ४२)

यमक

अतनु अष्ट अघ नष्ट करि, तदनु अतनुता प्राप्त।
अतनु नमत स्पष्टा गुण, प्रतनु कर्म हो जात॥

(माणक महिमा, पृ० २६)

उत्प्रेक्षा

पीयूषवर्षिणी दृष्टि हुई, मानो मन चाही वृष्टि हुई।
संतोष पोष की सृष्टि हुई, विश्वास वृद्धि उत्कृष्टि हुई॥

(मगन चरित्र, पृ० ३३)

श्लेष

सोलह वरसां री वय पाई, की सौ वरसां री भर पाई।
तिण में तो भोलावत गोतो,, के करतो स्याणावत होतो॥

(मगन चरित्र, पृ० ५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याजोक्ति

एक-एक गुण ऊपरे कोटि-कोटि कविराज।
वरणन कर करता थकै, निज कविता रै व्याज॥
(कालू यशोविलास, पृ० ४०४)

अतिशयोक्ति

ओ निर्णय न्यायधीशां रो, सुण-सुण धूजे धरती रै।
(डालिम चरित्र, पृ० ६६)

दृष्टान्त

जयाचार्य अनिवार्य आज, जयपुर में झण्ड जमावै।
बड़े भाग सौभाग शहर में, पावस-झड़ बरसावै॥
(माणक महिमा, पृ० २७)

अतिरेक

माखण स्यूं बढ़कर कोमल मधव हृदय है।
(मगन चरित्र, पृ० १७)

स्मरण

अरे रे! बै रातां, विगत दिन बांता सुमरतां,
भरीजै है छाती, विरह दुःख बाती उभरता।
कठै वे श्रीकालू वरद कर म्हारै शिर धर्‌यो।
मनै पाल्यो पोस्यो, मधु मधुर शिक्षामृत झर्‌यो॥
(मगन चरित्र, पृ० १६)

विरोधाभास

स्वास्थ्य-विघातक मीठो इमरत, विष सो काम बढ़ावै।
स्वास्थ्य सुधारक विष भी इमरत की तुलना में आवै॥
(मगन चरित्र, पृ० ६९)

इन उद्धरणों के अलावा और भी अलंकार यथा निदर्शना, स्वाभावोक्ति, उदाहरण, प्रतिवस्तुपमा आदि का प्रयोग भो देखने को मिलता है।

वयण सगाई—यह राजस्थानी साहित्य में प्रयुक्त सर्वाधिक लोकप्रिय शब्दालंकार है। राजस्थानी के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में यह अलंकार दृष्टिगोचर नहीं होता है। आचार्यश्री तुलसी की इन चारों कृतियों में भी यह वयण सगाई अलंकार उपलब्ध होता है, यद्यपि कवि ने अन्य डिंगल या राजस्थानी कवियों की तरह इस वयण सगाई अलंकार का प्रयोग अनिवार्य रूप में नहीं किया है और न इस अलंकार को सप्रयास काव्य में लाने का ही प्रयास किया है। जहाँ कहीं भी यह आया है स्वाभाविक रूप से आया है। यह वयण सगाई अलंकार तीन प्रकार का होता है, आदिमेल, मध्यमेल एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तमेल। इन तीनों का प्रयोग इन चरित काव्यों में देखने को मिलता है, यथा—

(क) आदिमेल वयण सगाई

ओ शरीर नही आपरो (मगन चरित्र, पृ० १००)
-- --
विविध हुई वगसीस (कालूयशोविलास, पृ० २०)
-- —

(ख) मध्यमेल वयण मगाई

मगवा बोल अमोल (मगन चरित्र, पृ० १२७)
— --
कियो घणो तकरार (कालूयशोविलास, पृ० १४१)
-- —

(ग) अन्तमेल वयण सगाई

तब स्यूं ही निर्णीत (डालिम चरित्र, पृ० १११)
— —
मिल्यो नहीं आराम (माणक महिमा, पृ० ४७)
-- —

३. भाषा शैली—

आचार्यश्री की ये चारों कृतियां शान्त रसात्मक भक्ति से सम्बन्धित है। इस कारण इनकी भाषा भी विषयवस्तु के अनुरूप आधुनिक राजस्थानी है। भाषा सीधी, सरल, बोधगम्य एवं सहज है। क्लिष्टता व दुरूहता का अभाव है। आम आदमी इस भाषा को समझने एवं भावों को ग्रहण करने में सक्षम हैं। इस तरह यह भाषा मध्यकालीन संतों के साहित्य की सधुक्कड़ी भाषा के गुणों से आवृत्त है। इस राजस्थानी पर हिन्दी भाषा का स्पष्टतः प्रभाव है। प्रसंगानुसार प्राकृत एवं संस्कृत भाषा का प्रयोग भी कवि ने साथ-साथ ही किया है। "कालूयशोविलास" में प्रत्येक विलास के आरम्भ व अन्त में संस्कृत भाषा का प्रयोग कवि ने अनिवार्यतः किया है। किन्तु इससे राजस्थानी के प्रवाह एवं कथानक के विस्तार में कहीं बाधा नहीं आई है।

चारों ही काव्यों की शैली कथात्मक एवं वर्णनात्मक है, गेयता इसका प्रमुख गुण है। विविध छन्दों के साथ गीतों को लयबद्ध किया है और प्रत्येक गीत की लय का संकेत भी किया है। इस तरह विविध प्राचीन मध्य-कालीन एवं आधुनिक राग-रागनियों के समावेश के कारण ये चरित काव्य पढ़ने से भी ज्यादा सुनने में बड़े कर्णप्रिय लगते हैं। व्याख्यानों में इनको गेय रूप में प्रस्तुत करने से इनकी लोकप्रियता निरन्तर बढ़ रही है। इसी तरह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्य घटनाओं के साथ-साथ प्रासंगिक घटनाएं एवं आख्यानों के संदर्भ के कारण इनकी कथ्य शैली अधिक प्रौढ़ व परिपक्व हुई है। प्रसंगानुसार पद्यमय संवाद भी इसमें बड़े आकर्षक बन पड़े हैं। प्रकृति वर्णन ने भी इन काव्यों को शैली को आकर्षक बनाया है।

भाषा एवं शैली में शब्द-चयन एवं कहावतों व मुहावरों का महत्त्व पूर्ण स्थान होता है। इस दृष्टि से भी ये कृतियां मूल्यवान् बन पड़ी हैं।

(१) शब्द चयन

काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिये कवि ने शब्द-चयन और उनके प्रयोग को बड़ी कुशलता के साथ किया। ऐसा प्रतीत होता है कि एक-एक शब्द चुन-चुन कर रखा है। शब्द के माध्यम से अर्थ और भाव का सफल द्योतन करा देना सफल कवि की पहचान है। कवि ने यथा स्थान कोमल कान्त शांत रसान्तक और ओजमयी पदावली से काव्य का शृंगार किया है, इससे काव्य में चित्रात्मकता पैदा हुई है और बिम्ब व प्रतीकों की सृष्टि हुई है। भाषा का नाद-सौन्दर्य शब्दों की ध्वनि से ही स्पष्ट हो जाता है। वस्तुतः अपने शब्द-चयन द्वारा अर्थ का मन चाहा प्रयोग करा लेना आचार्यश्री तुलसी की अपनी विशेषता है। शब्द-चयन की दृष्टि से इसमें तत्सम, तद्भव, देशज और आगत (उर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रेजी) इन चारों प्रकार के शब्दों का कवि ने बड़ी कुशलता के साथ प्रयोग किया है, यथा—

तत्सम शब्द

क—माणक महिमा—संयम, वात्सल्य, अवनि, कुसुम, विनय
ख—डालिम चरित्र— स्मृति, पावन, प्रज्ञा, पथ, अतुल, अनुराग
ग—कालूयशोविलास—सरस, निशि, प्रभा, परिमल, नूतन, नभ
घ—मगन चरित— लोचन, अंग, नीरख मधुर, विकास

तद्भव

क—माणक महिमा—पिछाण, जतन, पाछल, भेख, माथो
ख—डालिम चरित्र—काम, वैराग, बरस, छिन्न, जुगगी, पूनम
ग—कालूयशोविलास—माता, मिनख, पीढ़ी, मेवाड़, कान
घ—मगन चरित्र—जश, नखत, थिर, मोच्छव, चौमासा

देशज

क—माणक महिमा—टालोकर, कोस, आंगूच, कूक, टीस, मोटी
ख—डालिम चरित्र—राबड़ी, रलियावणी, पछेवड़ी, ओलंभो परपूठ
ग कालू यशोविलास—नानूड़ो, रमत, टाबर, भाखर, डंडो
घ—मगन चरित्र—चोखला, बाफला, ढोकला मगरा, गडार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगत शब्द-उर्दू अरबी-फारसी

क—माणक महिमा—जिन्दादिली, कब्जा, बगसीस, तखत, अबद, फर्ज, अर्ज, कुदरत, अफवाह, फौज

ख—डालिम चरित—तमासा फजीत, इकरार, गफलत, भानेदार

ग—कालू यशोविलास—अंदाज तजवीज, सफा, लवाजमा, खुलासा, हकीकत, हाकम, हजूर

घ—मगन चरित्र—खबर, मंजिल, मंजूर, दरमियान, रश्म

अंग्रेजी

क—माणक महिमा—गेट माइल, टाइम, डाक्टर

ख—डालिम चरित्र—टेलीग्राम, मिनट, पोइंट, कैंसर

ग—कालूयशोविलास—गजट, कौंसिल, कमेटी, मेम्बर, सेफ, पुलिस कालेज, मिनिस्टर, पोस्टर, पेम्पलेट

घ—मगन चरित्र—इनरजी, लीवर, रोड़, ट्रेन, इंजेक्शन

(२) कहावतें एवं मुहावरें—

काव्य में कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग कथावस्तु को गति देने तथा भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में वृद्धि करने के लिये होता है। आचार्य श्री तुलसी ने अपने चरित काव्यों में इनका सटीक प्रयोग किया है। ये कहावतें एवं मुहावरे अधिकतर लोक प्रचलित हैं। कहीं-कहीं स्थानीय मुहावरों व कहावतों को भी काव्य में लिया गया है। इससे भाषा शैली सशक्त हुई है और कम शब्दों में अधिक बात कहकर भावों को कवि ने नया उन्मेष प्रदान किया है। नमूने के रूप में कुछ कहावतें व मुहावरें इस प्रकार हैं—

माणक महिमा

लोह चणां चबाणां (पृ० ४२)

—आख्यां आगलै रै छायो घोर तमिस् (पृ० ४८)

डालिम चरित्र

जल्यो दूध रो डरै छाछ सूं—(पृ० १९४)

सात हाथ की सोड़ नींबूलियो निचोड़ (पृ०१९२)

कालू यशोविलास

—जलै गौहिरे रै पातक सूं पीपल रै लोय—(पृ० ७५)

—ऊंधे माथे क्यूं पड़ै रे (पृ० २८१) अंबर टूट पड्यो रे (पृ०२८९)

—आंख-कांन में आंतरो (पृ० २८१) पलक बिछायां बाट तकै (पृ० २९६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—मन रो जाण्यो कद हुवै (पृ० ३४९) टुकड़ा-टुकड़ा हुवै कलेजो (पृ० ३३९)

मगन चरित्र

—जोश में हो संता राखो होश (पृ० ४८)
—जग हांसी घर हांण (पृ० ४८)
—देख तिलां में तेल, जल्यो दूध रो फूंक-फूंक कर तक्र पीवै (पृ० ३५१)

(४) कवि की बहुज्ञता—

आचार्यश्री तुलसी के इन चारों चरित काव्यों से कवि की बहुज्ञता भी पग-पग पर परिलक्षित होती है। कवि काव्य शास्त्र का मर्मज्ञ तो है ही लेकिन इन काव्यों में कवि के आयुर्वेद एवं ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। कवि षट्दर्शन का भी ज्ञाता है। कवि में जैन धर्म दर्शन, व नीति शास्त्र की भी गूढ़ पकड़ है। तेरापंथ धर्मसंघ के इतिहास की जानकारी भी प्रामाणिक रूप से है। इसके साथ ही तत्कालीन राजवंशों के इतिहास की भी पकड़ है। कथानक को गति देने के लिये कवि ने पौराणिक व ऐतिहासिक घटनाओं का भी सहारा लिया है। कवि का भौगोलिक ज्ञान भी पग-पग पर दृष्टव्य है। सामाजिक रीति-रिवाज, खान-पान, सांस्कृतिक मूल्य आदि पर भी अच्छी दखल है। प्रकृति चित्रण व ऋतुओं के वर्णन से कवि की नैसर्गिक जानकारी भी परिलक्षित होती है। कवि बहुभाषा विद भी है। वह न केवल राजस्थानी का अपितु संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी, हरियाणवी, पंजाबी आदि भाषाओं का भी ज्ञाता है। कवि संगीतज्ञ भी है। विभिन्न राग-रागनियों में निबद्ध गीत उसके प्रमाण हैं। छंद शास्त्र, अलंकार शास्त्र, ध्वनि शास्त्र, और व्याकरण शास्त्र में भी कवि का ज्ञान बढ़ा-चढ़ा है। ऐसी और भी बहुत सी बातें हैं, जिससे कवि की बहुज्ञता प्रकट होती है, तथा बहुज्ञता सम्बन्धी सामग्री को उदाहरण सहित व्याख्यायित किया जा सकता है। प्राचीन साहित्य शास्त्र के ग्रन्थों में इस बात के निर्देश दिये गये हैं कि कवि को अनेक बातों का ज्ञान रखना चाहिये, उसकी बहुज्ञता काव्य को समृद्ध करती है। राजशेखर के "काव्यमीमांसा" और संस्कृत के एक अन्य ग्रन्थ "कविकर्पटिका" में ऐसे उल्लेख हैं। इन संदर्भों के आधार पर देखें तो आचार्यश्री तुलसी की एक कवि के रूप में बहुज्ञता उल्लेखनीय, प्रशंसनीय एवं महनीय है।

५ उपसंहार

उपर्युक्त संक्षिप्त मूल्यांकन से यह स्पष्ट है कि आचार्य श्री तुलसी के माणक महिमा, डालिम चरित्र, कालूयशोविलास और मगन चरित्र शीर्षक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारों चरित काव्यों का राजस्थानी चरित काव्य-परम्परा में विशिष्ट स्थान है। इनसे न केवल राजस्थान की तत्कालीन समाज व्यवस्था, सांस्कृतिक व साहित्यिक परिवेश पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है, बल्कि तेरापंथ धर्मसंघ की राजस्थानी साहित्य की देन को समझने व स्वीकारने में भी मदद मिलती है। इस चरित काव्य-परम्परा का अगर अलग शोध प्रबन्ध के माध्यम से तुलनात्मक, विश्लेषणात्क एवं विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाए तभी इनके साथ न्याय हो सकेगा।

संदर्भ

१. डॉ. देव कोठारी—राजस्थानी साहित्य (अ. शो. प्र.) पृ० ७७
२. वही, पृ० ६८
३. प्रो. मंजुलाल, र. मजूमदार—गुजराती साहित्य नां स्वरूपो, पृ. ८०-८१
४. अगरचन्द नाहटा—प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा पृ. १६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य भिक्षुकृत सुदर्शन चरित का काव्य सौंदर्य

☐ डा० हरिशंकर पाण्डेय

अनुभूति की सहज एवं रसमय अभिव्यक्ति काव्य है। इसकी स्फुरणा में शक्ति, निपुणता और अभ्यास का समन्वित योग होता है[1] या अभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रयत्न अपेक्षित हैं—'समाधिरान्तरप्रयत्न बाह्यस्त्वभ्यासः तौ उभौ अपि शक्तिमुद्भासयतः'।[2] कवि लोकशास्त्र से संग्रहित अनुभवों को अपेक्षित चर्वणीयता एवं अभिव्यंजना शैली से आवेष्टित कर काव्य का सृजन करता है, जो क्षण-क्षण नवीनता से युक्त[3], विधाता की सृष्टि से विलक्षण एवं केवलाह्लादवृत्ति सम्पन्न होता है।[4] जो समाज में अधिक प्रभावक होता है। मम्मट ने इसे कान्ता-सम्मित-उपदेश कहा है[5] जो शेष दो उपदेश पद्धतियों—(प्रभुसम्मित और मित्रसम्मित) से श्रेष्ठ एवं समर्थ होता है। इसी कारण आचार्य, समाज-सुधारक, सम्प्रदाय-प्रवर्तक; उत्कृष्ट जीवन-दर्शन, आचारसंहिता और आत्म-मीमांसा जैसे गूढ़ विषयों को आस्तिक जनता तक पहुंचाने अथवा विश्वमंगल की भावना से अभिभूत होकर इस पद्धति का आश्रयण करते हैं।

आचार्य प्रवर भिक्षु एक सशक्त, श्रेष्ठ और रत्नत्रयनिष्ठ श्रमण तो थे ही साथ ही शेमुषी-प्रतिभा-सम्पन्न एवं चिदम्बरीय-कल्पना-निष्णात एक कवि भी थे। 'कविर्मनीषीपरिभूः स्वयंभूः' का सार्थक संविधान उनके व्यक्तित्व में पूर्णतया संगठित होता दिखाई पड़ता है। मरुधर की पवित्र माटी में जनमे, मीरा, रसखान आदि अनेक श्रेष्ठ एवं वरेण्य कवियों की परंपरा में अग्रगण्य आचार्य भिक्षु ने 'गाम-गहेलरी' के समान निसर्ग-रमणीया राजस्थानी भाषा के रूच्य-रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर इसी के माध्यम से वाणी का विस्तार दिया। आस्तिक जनता के समक्ष सदा उपचित होने वाली अमृत-रस तरंगिनी प्रस्तुत की। इस महाकवि ने अनेक काव्यविधाओं का सृजन किया है। सुदर्शन चरित[6] एक उत्कृष्ट काव्य गुणों से समन्वित, शील-निरूपण-प्रधान एक श्रेष्ठ महाकाव्य है, जिसमें सेठ कुलभूषण—सुदर्शन के चरित्र का वर्णन किया गया है। रसमयता, नैसर्गिकता, चरित्र-शील की प्रतिष्ठा अलंकारों का उचित सन्निवेश आदि के कारण इसे चरित्रकाव्य भी कहा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तु-संयोजन—

लोकप्रचलित या इतिहास प्रसिद्ध कथा को कवि अपनी अनुभूति की व्यापकता और अभिव्यक्ति की कला में आवेष्टित कर निरूपित करता है तो वह वस्तु कहलाती है। सुदर्शन-चरित की कथा इतिहास प्रसिद्ध किवा जैन-साहित्य में ख्यातिलब्ध है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के अनेक कवियों ने इस कथा का आश्रयण कर अपनी काव्य-कला का विस्तार दिया है। चम्पानगरी में सेठ ऋषभदास का पुत्र सुदर्शन रूपवान्, गुणवान् और शील-सम्पन्न नवयुवक था। जिन धर्म में प्ररूपित श्रावक व्रतों का अनुपालक था। सार्थक-अभिधान-अभिहिता सुन्दरी 'मनोरमा' उसकी भार्या थी। बार-बार उपसर्ग आने पर भी सुदर्शन शीलभ्रष्ट नहीं होता है। शील-सम्पन्न होकर धर्मघोष स्थविर के पास दीक्षित होता है। अन्त में निर्वाण को प्राप्त करता है।

प्रस्तुत कथा शीलस्थापत्य में निरूपित है। शील-सौन्दर्य का प्ररूपण ही इसका मुख्य लक्ष्य है। कपिला, अभया और दवदन्ती वेश्या के द्वारा भूयोंभूय कामुक उपसर्ग दिए जाने पर भी सेठ शील की रक्षा करता है। इस काव्य का प्रारम्भ भी शील-निरूपण से होता है :—

शीलव्रत जिण शुद्ध मनें पाल्यो निरतिचार।
घोर परिषह ऊपणा पिण डोल्यो नहीं लिगार॥
शीलवन्त सबही बड़ा जे पाले निर्मल शील।[७]

× × ×

शील थकी जे गिर पड्या तेह सुणे चित्त ल्याय।

सम्पूर्ण काव्य शील-स्थापना में ही समर्पित है। १६वें ढाल में शील का काव्यात्मक रूप दर्शनीय है—

शील व्रत हो व्रतां में प्रधान॥[८]

जैसे रत्नों में वैडूर्य मणि और पुष्पों में अरविन्द श्रेष्ठ है उसी प्रकार व्रतों में शील—

रत्नां में वैडूर्य मोटको फूलां में हो मोटो फूल अरविंद।
ज्यूं व्रतां में शीलव्रत बडो॥[९]

इस कथा में पूर्वदीप्ति प्रणाली (फ्लेश बैक सिष्टम) के तत्त्व भी पाए जाते हैं। धर्मघोष मुनि के द्वारा कथित सेठ सुदर्शन के पूर्व जन्मों की कथा[१०] पूर्वदीप्ति प्रणाली का निदर्शन है। चरित्रकाव्यों का यह प्रमुख वैशिष्टय है। इस चरितकाव्य में भूत एवं वर्त्तमान का मिश्रण होने के कारण 'कालमिश्रण-स्थापत्य' भी पाया जाता है। सेठ की पूर्व जन्म की कथा भूतकाल और वर्तमान जन्म की कथा वर्तमान काल के उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त कथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तु में राजप्रासाद स्थापत्य, मंडनशिल्प, उदात्तीकरण एवं परामनोवैज्ञानिक शिल्प आदि के प्रयोग से इस महाकाव्य में नाटक की तरह रोमांचकता एवं उपन्यास की तरह कौतुहल-वृत्ति आद्यंत बनी रहती है।

चरित्रचित्रण—

महाकवि भिक्षु ने अनेक सशक्त एवं प्रभावक पात्रों का चित्रण किया है। पुरुष पात्रों में मुख्यतः राजा धात्रीवाहन, ब्राह्मण-कपिल, सेठ सुदर्शन और मुनि धर्मघोषादि मुख्य हैं। नारी पात्रों में सेठ-भार्या-मनोरमा, कपिला, रानी-अभया, धात्री और दवदन्ती वेश्यादि हैं। इनमें सेठ सुदर्शन, मनोरमा और धर्मघोष मुनि को छोड़कर शेष विपक्षी चरित्र (खलनायक) में परिगणित हैं।

सेठ सुदर्शन

रत्नत्रय में प्रतिष्ठित एवं सार्थक गुणों से विभूषित चरित्र का नाम है **सेठ सुदर्शन**। उसके बाह्य-रूप संहनन तो उत्कृष्ट थे ही अभ्यन्तर शील-चारूता भी अवर्णनीय थी। धर्म निरत श्रावक, निजकुटुम्ब-मेढीभूत-सेठ वृषभदास और 'रूप गुणे श्रीकार' भार्या जिनमती से रूप-लक्षण-गुण-सम्पन्न सुकुमाल-पुत्र का जन्म हुआ। वह व्यञ्जनादि से युक्त था।[११]

वह धीरे-धीरे जवानी के रमणीय एवं लुभावने रूप से परिपूर्ण होता है, साथ ही शील-सुषमा में पूर्ण प्रतिष्ठा को भी प्राप्त करता है। जिसके गुण को सुनकर कायर भी शूर-वीर हो जाते हैं :—

कायर सुण हुवै सूरमा, सूरा पिण होय अति ही अडोल।
सुदर्शन गुण सांभली, पाले शील अमोल॥
सुदर्शन शील पालने, गयो पंचमी गति प्रधान॥[१२]

बाल्यकाल के बाद वह श्रावक के रूप में सामने आता है। परीषहों के उपस्थिन होने के बावजूद वह वैसे ही स्थिर रहता है जैसे **"फोंजा में पील सलील"**।[१३]

सेठ दृढ़धर्मी और दृढ़व्रती था। मेरु, पृथ्वी आदि चंचल हो सकते हैं लेकिन सेठ स्थिर और अडोल था—

दृढ़धर्मी दृढ़आत्मा लीधा ने न मूंके रे॥
पीण सेठ चले नहीं धर्म थी, प्रिय धर्मी छे पुछोरे॥[१४]

इसके अतिरिक्त सेठ सुदर्शन ध्यान-निरत[१५], अजेय, सत्यव्रती[१६], ब्रह्मचारी[१७], नारी के प्रति मातृभाव, उत्तमप्राणी, बडवीर सेठ, उदारचरित्र, साधुभक्त आदि रूपों में दृग्गोचर होता है।

मनोरमा

सेठ की भार्या मनोरमा युवती, शीलवंती एवं गुण-प्रतिष्ठिता नारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी। वह सती एवं श्रावक-व्रत में प्रतिष्ठित थी—

'सती मनोरमा नार।
पाले श्रावकनां व्रतवार' ॥[१८]

धर्म-कर्म का निर्वाह पति के साथ मिलकर करती थी।

वह संतोषी थी—

'इम सेठ संतोषी मनोरमा नारी रे ॥'[१९]

पति सुदर्शन को झूठे अभियोग में फंसाकर राजा द्वारा प्राणदण्ड दिए जाने पर तनिक भी विचलित नहीं होती बल्कि पति मार्ग का अनुसरण करती है—

काउसग्ग कियो महलां में जाइ रे।
धर्म ध्यान रहे चित्त ध्याइ रे ॥[२०]

पति के पुनरागमन पर प्रसन्न होकर संसार सुख का उपभोग करती है।

मनोरमा का चरित्र तब अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त होता है, जब अपने ही मुख से अपने प्राण-प्रिय पति को श्रमण-धर्म में प्रतिष्ठित होने की कामना करती है। नारी के लिए उसका पति ही सर्वस्व होता है। कौन ऐसी नारी होगी जो हंसते-हंसते अपना सर्वस्व का परित्याग कर देगी। भारत की यही महनीय परम्परा रही है। बुद्ध की यशोधरा कहती है—

हमी भेज देती हैं रण में क्षात्र धर्म के नाते।

मनोरमा के शब्द हृदयावर्जक है—

मनोरमा कहे सीसनाम ने आप म्हांने छोडचा छे आज।
जत्न घणां कर पालज्यो सारजों आत्मकाज ॥
पांच प्रमाद नें छांडने आलस अंग म आण।
आर धज्यो गुरु आगन्या पोहचो बेगा निर्वाण ॥[२१]

वाह! सती मनोरमा ने अपना धर्म पूर्ण कर दिया। आज के समाज के लिए पार्वती, अनसुइया, सीता, चन्दनबाला, राजीमती और शिवनन्दा की तरह ही मनोरमा उपजीव्या एवं सम्मान्या है।

मनोरमा के अतिरिक्त नारी पात्रों में विषय-विगूती-कपिला, अभया और देवदत्ता-वेश्या आदि उपसर्ग दात्री के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। रानी अभया रूप गर्विता एवं यौवनोन्मत्ता थी। उसे अपने रूप पर इतना गर्व था कि 'मैं संसार को वश में कर सकती हूं, लेकिन उस कुटिला कामलम्पटा को क्या पता कि सेठ सुदर्शन भी इसी धरती का मनोरम प्रसून है।

रानी अभया की धाई प्रपञ्च-निपुणा है। उसके द्वारा अभया को दिए गए उपदेश उसकी प्रवीणता के परिचायक है। द्वारपाल को धोखा देकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेठ सुदर्शन को रानी के महल में लाती है।

स्थविर धर्मघोष दर्शन-ज्ञान-चारित्र सम्पन्न साधु के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इस प्रकार आचार्यप्रवर भिक्षु चरित्र-चित्रण में सफल हुए है।

कथोपकथन—

कथोपकथन या संवाद किसी भी काव्य के रमणीयत्व संवर्द्धन में सहायक होता है। इससे नाटक की तरह रोमांचकता एवं नवीनता का संवर्द्धन होता है। सुदर्शनचरित्र में अनेक सुन्दर संवादों का संगुम्फन हुआ है, जो मुख्य कथा को फल लाभ तक ले जाने में सफल हुए हैं। सेठ सुदर्शन-कपिला, कपिला-अभया, अभया-धात्री, सुदर्शन-मनोरमा, सुदर्शन-स्थविर-धर्मघोष आदि संवाद प्रमुख हैं। सुदर्शन-कपिला संवाद में कपिला की कामुकी-वृत्ति एवं सेठ की शील-दृढ़ता का परिचय मिलता है। कपिला-अभया संवाद में अभया का झूठा रूप-गर्व एवं कपिला को फंसाने वाली दुष्टवृत्ति का प्रतिपादन हुआ है। अभया-धात्री संवाद में अभया की काम-विह्वलता एवं धात्री की निपुणता एवं सुदर्शन-मनोरमा में नारी-जाति का त्याग स्पष्ट रूपेण प्रतिबिम्बित हुआ है।

रस—

रस को काव्य की आत्मा कहा गया है। रसहीन काव्य काव्य नहीं हो सकता। सुदर्शन चरित्र वीररस प्रधान है तथा शान्त, करुण, शृंगार, भयानक आदि रस वीररस के उपकरण रूप में प्रस्तुत हुए हैं।

वीररस :

वीररस का स्थाईभाव उत्साह है। सेठ सुदर्शन का चरित्र वीररस का श्रेष्ठ निदर्शन है। बाह्य दुश्मनों पर विजय प्राप्त कर तो सभी योद्धा बन जाते हैं लेकिन वास्तविक योद्धा तो वही होता है जो आन्तरिक रिपुओं को जीत कर रत्नत्रय में स्थित रहता है।

सेठ जीवन भर अत्यन्त उत्साह के साथ संघर्ष शील रहता है, सर्वत्र विजयी होता है। शीलव्रत में वह दृढ़ रहता है। कवि ने अनेक स्थलों पर सेठ के लिए दृढ़धर्मा, दृढ़व्रती आदि विशेषणों का प्रयोग किया है। रूपवती यौवनोन्मत्ता अभया के द्वारा अंग में लिपट जाने पर भी सेठ अडोल रहता है—

सेठ ने अंग सू भीडियो पिण डिग्यो नहीं तिल मात।[२२]

वह आत्मा को दृढ़ कर लेता है—

जी हो सेठ सुदर्शन नाम, तिम दृढ कर लीधी निज आतमा जी।[२३]

प्राण पर संकट आया देखकर वह सेठ तनिक भी नहीं डिगता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन बार उपसर्गों में फंसने पर भी वह अडोल रहता है। जिस काम-युद्ध में बड़े-बड़े महारथी लोग भी पराजित हो जाते हैं उसे सुदर्शन अनायास ही जीत कर अजेय योद्धा बन जाता है।

रौद्र :

'क्रोध' रौद्र रस का स्थाई-भाव है। रानी-अभया के विश्वास में आकर राजा सुदर्शन को प्राणदण्ड देता है। यहां राजा का कोप रौद्ररस का उदाहरण है—

ए बात सुणी राय कोपियो तीन लीहटी चाढ निलाड।
इण सेढ सुदर्शन नें मारवा किण विध देऊं प्रहार।।[२४]

शृंगार :

शृंगार रस का स्थाई भाव है 'रति'। कपिला, अभया एवं दवदन्ती वेश्या की कामुकी चेष्टाएं शृंगार रस के उदाहरण हैं। सुदर्शन-मनोरमा को छोड़कर शेष अपुष्ट शृंगार के निदर्शन हैं।

अधिकांश स्थलों पर विप्रलम्भ शृंगार के उदाहरण मिलते हैं---

रूपे रंभा सारखी अपच्छर रे उणियार।

शीलादि गुण रहित निर्लज नार कपिला सेठ के काम विरह में व्यथित है—

कपिला काम आतुर थइ रे लाल।[२५]

'कूड कपटनीं कोथली' कपिला नार विरह में थक गयी, उसका एक भी 'डाव' नहीं लगा, सेठ मिलन की चाव अधूरी रह गई।[२६] यह विप्रलम्भ शृंगार का उदाहरण है। कपिला की तरह अपार रूपवती 'अंग उपंग श्रीकार' और 'विजलनी-चमत्कार' से युक्त रानी अभया भी सेठ से भोग भोगने के लिए बेचैन है। अन्त में पराजित होती है। उसकी इच्छा अधूरी रह जाती है।

करुण :

करुण रस का स्थाई भाव दुःख है। सेठ सुदर्शन को शूली पर लटकाए जाने की घोषणा सुनकर सारी प्रजा हाहाकार कर उठी। उसे अब सेठ जीवन की आशा समाप्त हो गई थी। जीवन की आशा न रहे वहां करुण रस का साम्राज्य होता है। जैसे भवभूति के राम को सीता-मिलन विषयक आशा समाप्त हो गई है।

सेठ सुदर्शन की कारुणिक स्थिति—

अंग उपंग मरोडने गाढो बांध्यों सेठ ने तास।
ए बात सुणो छे सेठ नी सारा नगर मझार।।

इस प्रकार रस विनियोजन में कवि सफल हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलंकार—

रस काव्य-शरीर की आत्मा है तो अलंकार काव्य-शरीर शोभा-संवर्द्धक बाह्यविभूषण। अलंकार-रहिता सरस्वती विधवा-नारी की तरह सुशोभित नहीं होती है। सुदर्शन चरित्र में अनेक सुन्दर अलंकारों का चारु-सन्निवेश हुआ है। उपमा और उत्प्रेक्षा की प्रधानता है, अन्य अलंकार भी विनियुक्त हुए हैं—

भरतक्षेत्र अंगदेश में रे लाल इंद्रपूरी सम जाण रे।[२७]

यहां पर भरतक्षेत्र की उपमा इंद्रपुरी से दी गई है।

'रूपे रम्भा सारखी'[२८]—अभया रानी की उपमा रम्भा अप्सरा से दी गई है। जिस प्रकार रम्भा अप्सरा के शारीरिक संगठन एवं रूप-सौन्दर्य उत्कृष्ट थे उसी प्रकार अभया रानी थी।

१६वें ढाल में शीलव्रत के लिए अनेक उपमाओं का प्रयोग किया गया है—

ग्रह नक्षत्र तारा नां वृंद में घणो सोभे मोटो जिमचन्द।
रत्नां मैं वैडूर्य मोटको फूलां में हो मोटो फूल अरविंद॥
ज्यं व्रतां में शीलव्रत बडो॥

अर्थात् जैसे ग्रह, नक्षत्र एवं ताराओं के समूह में चन्द्रमा, रत्नों में वैडूर्य तथा फूलों में अरविन्द श्रेष्ठ है उसी प्रकार व्रतों में शीलव्रत बड़ा है।

दृष्टान्त—

वजन काजे हो धायजी हरिश्चंद्र बडवीर।
भरियो डुम घर नीर, नीच तणी सेवा करो जी॥

व्यतिरेक १४.४-५१ काव्यलिंग २ दुहा ७, रूपक १.८, ६.३-४ आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

भाषा-शैली—

निसर्ग-रमणीयता एवं स्वच्छन्द-प्रवहणीयता से युक्त राजस्थानी भाषा में विवेच्य काव्य की विरचना हुई है। संस्कृत का लालित्य, प्राकृत की सहजता एवं हिन्दी की श्रुतिमधुरता के संगम पर राजस्थानी-भाषा का प्रासाद अवस्थित है। राजस्थानी भाषा में विरचित होने के कारण उसके सम्पूर्ण गुण—सरलता, चारुता, सहज-सम्प्रेषणीयता एवं नैसर्गिकता आदि विवेच्य काव्य में अनुस्यूत हैं। शब्दों की श्रवण-सुखद-संघटना, वैदर्भी का सहज लास्य, अलंकारों का चारुसन्निवेश, सुन्दर-पदों का उचित विन्यास और भावों की सहज अभिव्यक्ति की विद्यमानता के कारण सुदर्शन चरित्र की भाषा उत्कृष्ट बन गई। साधु-सूक्तियों एवं लौकिक-न्याय-मूलक मुहावरों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनियोजन से भाषा अधिक रोचक हो गई है। कथोत्प्ररोह, मंडनशिल्प, पूर्वदीप्ति प्रणाली आदि शिल्पगत विशेषताओं से सम्मिलित होकर प्रस्तुत काव्य की भाषा रमणीय एवं आह्लादक हो गई है।

सूक्ति-सौन्दर्य—

काव्य में सूक्तियों के विन्यास से सशक्तता एवं प्रभावोत्पादकता का संवर्द्धन होता है। सुदर्शन चरित्र में अनेक सुन्दर-सूक्ति का शोभन सन्निवेश किया गया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१. विद्या अरुवरनार संपद देह शरीर सुख।
मांग्या मिले नहीं च्यार पूर्व सकृत कीधां विना ॥२।१
विद्या, श्रेष्ठ नारी, संपत्ति एवं शरीर सुख पूर्व सुकृत के बिना मांगने से नहीं मिलती हैं।

२. पुन्नजोगे जोडी मिली २।१८
पुण्य के योग से सुन्दर जोड़ी की प्राप्ति होती है। संस्कृत की उक्ति प्रसिद्ध है—दुर्लभा सदृशी भार्या।

३. सर्व कागद स्याही खपे कलम सर्व खप जाए।
त्रियाचरित्र तो छेधणा न लिख्या कोई न लिखाय ॥३९.६
सभी कागद स्याही, कलम समाप्त हो जाए फिर भी त्रिया (कुशीला) का चरित्र नहीं लिखा जा सकता।

४. कुसती में अवगुण घणा सतीशील गुणखान ॥३९.८
कुलटा अवगुण का घर है सतीशील गुण की खान है।

५. अरिहंत सिद्ध साधु धर्म रो, लेवे शरणां च्यार।
तिण भोग जाण्यां विष सरिखा तिणरी वंछा न करे लिगार ॥
इन्द्रादिक सुर नर बड़ा नारी तणा हुवे दास।
ज्यांमे पुरुषांकार पराक्रम हुवे ते उलटा करे अरदास ॥५।१४
बड़े-बड़े इन्द्रादि देव मनुष्य भी नारी के दास हो गए हैं। जिनमें तनिक भी पुरुष भाव होता है वे स्त्री के गुलाम बन जाते हैं।

६. हिवे नारी जात छे तेहनों कदे न करुं विश्वास ॥ढाल ५ दुहा ६
नारी जाति पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

७. पर पुरुष हो बाइ जाणो भाई समान ॥१०।१३
पर पुरुष को भाई समान मानना चाहिए।

८. शील विनां हो बाइ घणा नर नार ते गया जमारो हार।
शीलथकी हो बाइ घणा नर नार ते गया जन्म सुधार ॥१०.२०,२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शील रहित मनुष्य जन्म हार जाते हैं।
शीलवन्तों का जन्म सुधर जाता है।
यहां ऐसे अनेक सूक्तियों का विनियोजन हुआ है।
इस प्रकार यह सुदर्शनचरित एक उत्तम काव्य है।

सन्दर्भ :

१ काव्यप्रकाश १.३
२. काव्यमीमांसा : चतुर्थ अध्याय पृ० २७
३. शिशुपालवध महाकाव्य ४.१७
४. काव्यप्रकाश १.१
५. तत्रैव १.२
६. भिक्षु ग्रन्थरत्नाकार, द्वितीय खण्ड, रत्न १९
७. सुदर्शन चरित-प्रारंभिक भाग पृ० ६३३ गाथा २-४
८. तत्रैव १.१६
९. तत्रैव १६.२
१०. ,, ढाल ३४
११. ,, १.१०
१२. ,, प्रथम ढाल दुहा ५-६
१३. सुदर्शन चरित
१४. ,, १४.४-५
१५. ,, ढा० १६, दुहा ६-७
१६. ,, २०
१७. ,, २०
१८. ,, २.१८
१९. ,, २१.१८
२०. ,, २१.२३
२१. ,, ढा० ३७ दुहा १-२
२२. ,, १६ दुहा ७
२३. ,, १७.१
२४. ,, १९ दुहा १
२५. ,, ३.१
२६. ,, ३ दुहा १.२
२७. ,, १.१
२८. ,, १.३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापंथ के राजस्थानी साहित्य का कलापक्ष

☐ डा० मनमोहन स्वरूप माथुर

प्रायः सभी भाषाओं का प्रारम्भिक साहित्य धर्म और शक्ति प्रधान रहा है। हिन्दी-साहित्य की आदिकालीन उपलब्ध बौद्धों, सिद्धों और नाथों की रचनायें भी इसी ओर संकेत करती हैं। यद्यपि शुक्ल जी ने इस प्रकार के साहित्य को "नोटिस मात्र" कहकर उसे अधिक महत्त्व नहीं दिया, जबकि मध्यकाल के इसी साहित्य को उन्होंने भक्ति की दृष्टि से सर्वोच्चता प्रदान की।[1] तात्पर्य यह कि धार्मिक सम्प्रदायों से सम्बन्धित साहित्य का उस भाषा-साहित्य के विकास में बड़ा योगदान रहता है। वही साहित्य के भविष्य का निर्माण करता है।

भारत सदैव से ही एक धर्मनिरपेक्ष देश रहा है। यहां जब-तब विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों का अस्तित्व रहा और उनसे सम्बन्धित साहित्य का सृजन भी विपुल मात्रा में हुआ। सूफी सम्प्रदाय इसी परम्परा का एक गैर भारतीय धार्मिक सम्प्रदाय है, जिसने भारतीय साहित्य के निर्माण में अपूर्व सहयोग किया।

भारतीय साहित्य को पल्लवित करने वाली एक महत्त्वपूर्ण भारतीय विचारधारा जैनियों की रही है। जैन मुनियों, यतियों ने प्राकृत, अपभ्रंश और राजस्थानी में अनेक महत्त्वपूर्ण रचनायें लिखकर साहित्य की स्रोतस्विनी को सदैव प्रवाहित रखा है। अपने विशिष्ट साहित्य बंधों के कारण बौद्धों की चर्यापद शैली, नाथों-सिद्धों की वाणी शैली, सूफियों की मसनवियों की भांति ही जैन चरित काव्य-शैली का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जैन धर्म में प्रमुखतः दो सम्प्रदाय हैं—श्वेताम्बर और दिगम्बर। दिगम्बर सम्प्रदाय की तुलना में श्वेताम्बरियों की शाखा-प्रशाखाएं अधिक हैं। इसका मूल आधार उनकी साधना (उपासना) पद्धति है। जैन धर्म के श्वेताम्बर सम्प्रदाय से ही पृथक हुआ एक उल्लेखनीय सम्प्रदाय है—"तेरापंथ"। इस पंथ का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के ही स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य रघुनाथजी के पास विक्रम संवत् १८०८ में दीक्षित मारवाड़ के कंटालिया ग्रामवासी भीखणजी (आचार्य भिक्षु) ने "तेरापंथ" का प्रवर्तन किया। अपने गुरु रघुनाथजी के साथ कुछ मतभेद हो जाने से उन्होंने इस पंथ की स्थापना वि० सं० १८१७ में की।[2] इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार "तेरापंथ" का इतिहास कुल २३१ वर्षों का है। दो शताब्दियों में इसमें कुल नौ आचार्य हुए। इस पंथ के वर्तमान आचार्य तुलसी हैं।

वैचारिक दृष्टि से तेरापंथ एक आचार, एक विचार और एक आचार्य की विचारधारा का पोषक है। इसी मर्यादा में वह एक प्राणवान संघ है। इसका दर्शन तर्कविज्ञान पर आधारित है। अतः वह युगानुरूप एवं परिस्थितिनुकूल परिवर्तन का भी समर्थक है। आचार्य तुलसी द्वारा प्रतिपादित अणुव्रत दर्शन इसी दिशा में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

जैन धर्म से सम्बन्धित यह पंथ (तेरापंथ) शुद्ध रूप से राजस्थानी है। इसका जन्म राजस्थान में हुआ। पोषण भी राजस्थान में ही हुआ। अतः इस संघ में प्रव्रजित साधु-साध्वी और अनुयायी भी राजस्थान के रहे। इस प्रकार इस संघ के प्रवचन, श्रावकाचार आदि में यहीं की भाषा राजस्थानी का प्रयोग हुआ है। अपने संघ की धार्मिक मान्यताओं और भक्ति सम्बन्धी साहित्य के सृजन का माध्यम भी राजस्थानी भाषा रही। "तेरापंथ" की विचारधारा दर्शन एवं भक्ति सम्बन्धी साहित्य का प्रणयन इस पंथ के प्रायः सभी आचार्यों, मुनियों, साधु-साध्वियों ने किया। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में रचित है। इनमें सर्वाधिक रचनाएं आचार्य भिक्षु, जयाचार्य, आचार्य तुलसी, युवाचार्य महाप्रज्ञ, मुनि सोहनलाल जी, मुनि बुद्धमल जी, मुनि चौथमल जी, मुनि मोहनलाजी "आमेट", मुनि महेन्द्र जी मुनि सुखलाल जी, साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी, साध्वी कल्पलताजी एवं साध्वी जिनरेखा जी की मिलती हैं।[3] इन तेरापथी रचयिताओं द्वारा रचित उल्लेखनीय राजस्थानी रचनाएं हैं—झीणी चर्चा, कीर्तिगाथा, अमरगाथा (जयाचार्यजी) कालू यशोविलास, माणक महिमा, डालिम चरित्र, नंदन निकुंज (आचार्य तुलसी), फूल लारै कांटो (युवाचार्य महाप्रज्ञजी), उणियारो, जागण रो हेलो (मुनि बुद्धमल जी); तथ'र कथ (मुनि मोहनलाल जी "आमेट"); गीतों का गुलदस्ता, निर्माण के बीज (राजस्थानी गीत—मुनि सुखलालजी) इत्यादि।

यद्यपि ये सभी रचनाएं साहित्यिक विषयों की तुलना में दर्शन से अधिक सम्बद्ध हैं, फिर भी इनमें एक साधारण पाठक के लिए भी यथा-प्रसंग सहज आकर्षण अनुभव होता है। यही दार्शनिक रचनाओं की सफलता का आधार है। दर्शन को प्रायः शुष्क विषय माना जाता है, किन्तु यह लेखक (कवि) का कौशल है कि वह अपनी रचना को कुछ इस प्रकार प्रस्तुति करे कि वह सहज ग्राह्य एवं सर्वग्राह्य बन जाय। दर्शन जैसी शुष्क गोली को भी पाठक अथवा श्रोता आसानी से आत्मसात् कर ले। तात्पर्य यह कि किसी भी रचना के लिए उसका अभिव्यक्ति पक्ष अथवा कलापक्ष का सबल होना अनिवार्य है। सबल कलापक्ष के अभाव में श्रेष्ठ मार्मिक भाव-सम्पन्न रचना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी नीरस कहला सकती है। साथ ही, सबल कलापक्ष के होने पर धार्मिक और दार्शनिक विषयों की रचनाएं भी सरस बन सकती हैं।

"तेरापंथ" से सम्बन्धित इन रचनाओं की शैली वर्णनात्मक है। प्रायः कविगण विशेषतः पंथ, धर्म एवं सम्प्रदाय विशेष के रचयिता इतिवृत्त ही प्रस्तुत करते हैं। परिणामस्वरूप वह काव्य मात्र उस सम्प्रदाय के मतावलम्बियों तक ही सीमित हो जाता है। पर इन रचनाओं के सन्त कवियों ने सम्बन्धित वर्णनों को प्रतीकों, अलंकारों आदि के माध्यम से सहज ग्राह्यता प्रदान की है। उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—कालूयशोविलास की निम्नांकित पंक्तियां जहां कुशल कवि आचार्य तुलसी ने अपनी कारयित्री प्रतिभा से यात्रा-समय साधु-संन्यासियों का मनोरम विश्लेषण किया है—

कई भस्म-विलेपित गात्रा, शिर जटा जूट वे मात्रा।
मृग छाल विशाल बिछावै, मुख सींग डींग संभलावै॥
बाबा बाघंबर ओढै, गंगा जमना तट पोढ़ै।
कइ न्हा धो रहै सुचंगा, कइ नंगा अजब अडंगा॥
कइ पंचाग्नि तप तापै, जंगम थावर संतापै।
ऊंचे स्वर धुन अलापै, कइ जाप अहो निश जापै॥
कइ ऊंहारि बोलै, उदरंभि मौन न खोलै।
कइ डगमग मस्तक डोलै, भव वारिधि ज्यांन झकोलै॥[४]

इन वर्णनों को रससिक्त एवं सहज ग्राह्य बनाने के लिए प्रायः कवि प्रकृति को भी अपनी कला का साधन बनाते हैं। ऋतु वर्णनों और विविध बिम्बों, प्रतीकों द्वारा वह गूढ़ बात को भी हृदयग्राही बना देते हैं, आचार्य तुलसी ने "कालूयशोविलास" में मर्यादा महोत्सव जैसे यथार्थ को छहों ऋतुओं के रूप में मौलिकता प्रदान कर कलापक्ष को मौलिकता एवं सुघड़ता प्रदान की है। वर्षा ऋतु से रूपायित मर्यादा महोत्सव का स्वरूप प्रस्तुत है—

गंगा यमुना और सुरसती उछल-उछल कर गलै मिलै।
विरह ताप संतान भुलाकर, रूं रूं हर्षांकुर खिलै॥
गहरो रंग हृदय में राचै नाचै मधुकर कर गुंजारो।
तेरापंथ पंथ रो प्रहरी, म्हा मोछण लागै प्यारो॥[५]

शारदीय प्रवासी हंस मानसरोवर लौट आते हैं। हंसोपम साधु-साध्वियां शरदोपम मर्यादा महोत्सव के अवसर पर गुरुकुल वास में पहुंचकर कैसे अनिर्वचनीय प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं—

बण्या प्रवासी श्रमण सितरूछद, गुरुकुल मानस मौज करै,
परम कारुणिक कालू बदन-सूक्त, मुक्ताफल भोज करै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहिं सरदी-गरमी रो अनुभव साक्षात् शरद बरत बरतारो ।।[९]

वर्णनशैली की ऐसी ही द्रावकता मे हमारा परिचय होता है "माणक-महिमा" की १८वीं ढाल में, जहां माणक गणि के बाद साधु-साध्वियां अपने को बिना ग्वाले की गायों के समान मान रहे हैं (दूहा ६, पृ० ८९)। ऐसा ही प्रतीकों से परिपूर्ण एक बिम्ब प्रस्तुत है, जहां सघ में आचार्य के स्थान को चन्द्रमा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है —

ग्रह नक्षत्र चमकता सारा, तारां री रमझोल,
पिण अम्बरियो सूनो लागै, नहीं चांद चमकोल ।
संता ! बिना चांद की रजनी स्यूं आपां तुल ज्यांवाला ।।[१०]

मुनि मोहनलाल "आमेट" भी अंधकार और प्रकाश के प्रतीकों के माध्यम से समकालीन घटनाओं का वर्णन इन पंक्तियों में करते हैं—

अंधेरो पो'र
दिवलो कर्‌यो
आंगणै ने सैंचनण
पण सुवारथी मिनख
जोत नै बुझा'र
अंधेरे नै नूंतो दियो
क्यूं'क
परकास'र पाप में
अणबण है ।

वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त तेरापंथ के राजस्थानी साहित्य में हम प्रश्नोत्तर शैली से भी परिचित होते हैं। जयाचार्यजी की "झीणी चरचा" नामक कृति पूर्णतः दार्शनिक विशेषतः "तेरापंथ-दर्शन" पर आधृत रचना है। इसमें कवि ने जैन तत्त्व-चिन्तन की व्याख्या "कौन" के माध्यम से की है। पहले प्रश्न रूप में "कौन" कहकर आचार्य ने उसका समाधान किया है। कथन की यही व्याख्यात्मक पहुंच श्रावक को पंथ का तात्विक परिचय दे सकती है। इस गूढ़ विषय को सहज रूप में समझा सकती है—

तीन जोगा में किसो जोग है ? सुणियै तेह नो न्याय ।
मन वचन काया रा जोग तिहुं, सलेसी कह्या जिनराय ।।[११]

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि कवि आचार्य (जयाचार्य) ने अपनी बात को आगमवाणी के प्रमाण के साथ कही है।

जैन धर्म श्रमण संस्कृति का प्रमुख अंग है। यहां साहित्य का सृजन धार्मिक भावना के प्रचार-प्रसार हेतु किया जाता रहा है। किन्तु उसे सर्वग्राह्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं अपने इष्ट के प्रति समर्पण भाव निमित्त उसकी प्रस्तुति लोकरूप में की जाती रही है। यही शैली साहित्य में जैन शैली संज्ञा से अभिहित है। तेरापंथ के राजस्थानी साहित्य में भी आचार्यों, मुनियों, साधु-साध्वियों के चरित्रों को इसी रूप में प्रस्तुत किया गया है। लोक में प्रचलित विविध ढालों और रागिनियों में उनकी लयों को बांधा गया है। यही गेयता इस साहित्य का प्राण है। कीर्तिगाथा से इस गेय लोकशैली का उदाहरण प्रस्तुत है—

होजी म्हांरे, भिक्षु ऋषि सूं लागी पूरण प्रीत जी।
जीवड़ो रे ललवाणो स्वामी जी सूं ओलगे रे लो॥
होजी म्हांरे स्वामी सरीखो कुण छै दुनिया मांहि जो।
देखण रो मुज मनड़ो अधिक ऊमंगे॥[९]

इसी शैली का एक अन्य उदाहरण आचार्य तुलसी की रचना "कालू यशोविलास" से उद्धृत है, जहां शैलीगत सौन्दर्य से कवि ने तेरापंथ की व्याख्या को सरस बना दिया है—

तेरा श्रमण उपासक तेरा लख सेवक तुक गायो रे।
सुणतां ही गुरु देव अनोखो अर्थ लगायो रे॥
इक आचार, एक आचारज, एक विचार सुलभो रे।
प्रबल एकता सबल संग उन रोब जमायो रे॥[१०]

इन ढालों में माधुर्य गुण कूट-कूट कर भरा हुआ है। कई बार ये ढाल मीरां के पदों का सा आनन्द देती हैं।

भावानुकूल भाषा और अलंकार किसी भी काव्य रचना के कलापक्ष का शृंगार है। दर्शन जैसी गरिष्ठ रचनाओं में भी यदि अलंकारों का सहज प्रयोग परिलक्षित हो तो वह देवयोग अथवा सोने में सुहागा की कहावत को चरितार्थ करेगी। राजस्थानी के तेरापंथी कवियों की रचनाओं में अनेक ऐसे प्रसंग मिलेंगे जहां अनायास ही अलंकारों ने अपना रमणीय सहयोग किया है। राजस्थानी काव्य का सौन्दर्य वयण सगाई अलंकार के सटीक प्रयोगों में निहित है। सुविधा के लिए हम वयण सगाई अलंकार को अनुप्रास के निकट मान सकते हैं, किन्तु उसके भेद रूप में स्वीकार करना भूल होगी। आलोच्य काव्य रचनाओं में शास्त्रीय दृष्टि से वयण सगाई अलंकार के भेदों को तलासना तो व्यर्थ होगा किन्तु जहां-तहां सहज रूप से वयण सगाई के सफल प्रयोग हमें तेरापंथी काव्य रचनाओं में मिल सकते हैं, यथा—

(क) श्रमण शिरोमणि शोभता, भिक्षु ने भारी माल॥११॥
महिमागर मोटा मुनि, जय जश करण सुजाण।
प्रत्यक्ष आरे पांच में, भिक्षु सांनृत भाण॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरचा वादी चातुर घणा, संत सत्यां सुख दान ।
सुमता रस नो सागरू, महिमावंत मुनि राय ।।१३।।[११]

(ख) मिल्या श्रमण सब समय में, विध विध करै विचार ।
अजब अनोखो ओ मिल्यो, मोको अपणै द्वार ।।[१२]

वयण सगाई अलंकार के इन प्रयोगों के साथ ही अनुप्रास अलंकारों का भी बड़ा सुन्दर प्रयोग तेरापंथी काव्य रचनाओं में बहुलता के साथ देखा जा सकता है । चूंकि यह साहित्य आचार्यों की साहित्यिक प्रतिभा की अपेक्षा सम्प्रदाय विशेष की भक्तिभावना के प्रति प्रतिबद्ध है, अतः लोक रुचि एवं सहज-ग्राह्यता के लिए इन कवि आचार्यों ने तुक को अधिक प्रधानता दी है । इसी प्रवृत्ति के कारण प्रायः सभी रचनाओं में स्थान-स्थान पर अनुप्रास की छटा-दर्शनीय बन गई है । यह छटा श्रोताओं और पाठकों का तादात्म्य स्थापित करने में पूर्ण सक्षम है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

(क) सरवर सुधारस सारसी, वाणी सरस विशाली हो ।
शीतल चंद सुहावणो, निर्मल विमल गुण हाली हो ।
अमीचंद अघ टाली हो ।।[१३]

(ख) मुनिवर रे वास वेला बहुला किया रे,
तेला चोला तंत सार हो लाल ।
पांच आठ तप आदर्यो रे, आणी हरष अपार हो लाल ।।[१४]
तब घरकां "खींवारा" थी सारो,
हेम विहार कियो तिण वारो ।।१४।।[१५]
संत पैंतीस सूं सखर, विहार करी तिण बार ।
सुजानगढ़ आया सही, शांति संग जय सार ।।४१।।
प्रात वखांण समय पवर, च्यार तीर्थ रा घाट ।
सहु सुणतां ऋष शांति नै, जीत कहै सुध वाट ।।५४।।[१६]

(ग) हाकम स्यूं हताश हो हाल्या, संजम सहज गमावै रे ।।
कल्पवृक्ष संकल्प पूरणो, क्यूं रति-हीण रखावै रे ।।
काम दुधा सुरभी करभी, घर क्यूं कर कहो टिकावै रे ।
मणि चिंतामणि मूढ़ शिरोमणि कर गहि काग बड़ावै रे ।।[१७]

शब्दालंकारों के साथ ही तेरापंथी काव्य के कलापक्ष को अर्थालंकारों खास करके सादृश्यमूलक अलंकारों के सहज प्रयोग ने भी सौष्ठव प्रदान किया है । "कालू यशोविलास"—में कवि तुलसी ने "स्याद्वाद" जैसी गंभीर सैद्धान्तिक धारणा को उपमा अलंकार के माध्यम से इन पंक्तियों में स्पष्ट किया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वंगी सतभंगी सुखद सतगत संगी हेत ।
व्यंगी एकांगी कृते झंगी सो दुःख देत ।।
इतर दर्शणी कर्षणी नय वणिज्य अनभिज्ञ ।
विज्ञ वणिर् जिन-दर्शणी नय दुर्णय विपणिज्ञ ।।

तेरापंथ के प्रवर्तक आचार्य भिक्षु के गुणों का वर्णन कवि जयाचार्य उपमा के माध्यम से इन पंक्तियों में कर रहे हैं, द्रष्टव्य है—

अप्रतिबंध वायु जिसा, क्षमावान गुणखांन ।
शीतल अमृत सारिरणी, वारू वरसत वांन ।।८।।[१८]

जीवन की प्रत्येक वस्तु अमूल्य है । उसी को जानना जीवन का लक्ष्य है । इसी दर्शन को मुनि मोहनलाल 'आमेट' इन पंक्तियों में स्पष्ट कर रहे हैं उपमा अलंकार के माध्यम से—

सुखी-दुखी
भण्या-अणभण्या
जड़-चेतण नैं
जकी दी है
गत'र गत री परतीत
बा पगां पड़ी धूल
मंजल़ री बभूत है ।[१९]

उपमा अलंकार का एक उदाहरण श्रीमज्जयाचार्य जी की रचना "कीर्तिगाथा" से उद्धृत है, जिसमें वे भारीमल जी के हृदय की पवित्रता को चन्द्रमा के समान बता रहे हैं—

निर अहंकारी मुनि हिये निर्मला, शील सिणगार सुगंध ।
सत्यवादी मुनि वचने शूरमा, चित्र जिम शीतल चंद ।।[२०]

संन्यस्त में भी आत्मीयता संचरित होती है—इस अनुभव की अभिव्यक्ति आचार्य तुलसी ने इन पंक्तियों में की है। मघवागणि की मृत्यु के अवसर पर कालूगणि की मनःस्थिति को कवि ने रूपक अलंकार के माध्यम से इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

नेहड़लां री क्यारी रो म्हांरी रो के आधार ?
सूक्यो सोतो जो इकलोतो सूनो सो संसार ।।४।।
आ इकतारी थांरी म्हांरी सारी ही विसार ।
कठै क्यूं पधार्या म्हारी हृत्तंत्री रा तार ?।।३।।[२१]

ऐसा ही रूपक का विधान कवि ने माणक गणि की दीक्षा के उपरान्त "नियम-निलय" पद द्वारा किया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालक वय में, संयमलय में, नियम निलय में लीन ।
जय पय में जिम साकर पय में, आत्म विजय में पीन ।।[२२]

जयाचार्य के काव्य में तो जगह-जगह पर रूपक अलंकार के स्वाभाविक प्रयोग देखने को मिलते हैं । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) समकित तरु भणी, संवेग जल सींचंत ।
खम दम सम गुण खेतसी, दिढधर्मी दीपंत ।।२।।
(ख) सिव रस कूपिक ग्रहण कूं, संवेग रूपी तेल ।
समकित चराक सींचता, खेतसी जी घर खेल ।।४।।
(ग) चरण करण गुण धरण चित, "वरण अमर वधु सार ।
मद अध हरण सुसरण मुनि, तरण भवोदधि पार ।।४।।[२३]

सादृश्यमूलक अलंकारों में उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से कवि लोग प्रायः प्रकृति एवं हृदय की मार्मिक स्थिति का कथन करते हैं । तेरापंथ के आचार्यों ने भी इस उद्देश्य से उत्प्रेक्षा का प्रयोग अपनी काव्य रचनाओं में किया है । जोधपुर में चातुर्मास के समय कालूगणी का संवाद आचार्य तुलसी को कितना प्रिय लग रहा है, उसी की अभिव्यक्ति आचार्य तुलसी ने उत्प्रेक्षा के माध्यम से इन पंक्तियों में की है—

"वर पूज्य वचोऽमृत पान स्यूं,
मानो गत-चेतन-तन चेतनताई आई रे ।
सहज्या कर टालो टालो करां,
शासण-रंग-सुरंगे रग रग खूब रचाई रे ।।"[२४]

ऐसी ही उत्प्रेक्षा कवि ने जयाचार्य जी के व्यक्तित्व स्थापन हेतु "माणक-महिमा" में की है—

"आकृति में आकर्षण, मानो अमृत-वर्षण वाणी ।
षट् दर्शन-दिग्दर्शन में, मेधा मेधावी जांणी ।
आगम मंथन में अगम्य प्रतिभा-परिचय परखावै ।।"[२५]

सतजुगी चरित्र खेतसी की बहनों के ससुराल पक्ष के प्रति श्रद्धावनत हो जयाचार्यजी की उत्प्रेक्षा द्रष्टव्य है—

रावलियां ब्याही बिहुं रंग सूं, सैणी महा सुख दाय ।
साल रूंख परिवार सुसाल नो, अधिक मिल्यो जोग आय ।।[२६]

अलंकारों के इन सुंदर एवं भावोत्कर्षक प्रयोगों के अतिरिक्त तेरापंथी विभिन्न काव्य रचनाओं में निम्नलिखित अलंकारों के भी यथाप्रसंग सफल प्रयोग मिलते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यमक

"बिलियो" मिलियो धुर मजल "पुर" पुर में विश्राम ।
मुजरो है "मुजरास" स्यूं, गुड़ल्यो "गुडला" ग्राम ।।[२७]

अतिशयोक्ति

आनंदकारी ओपता, समण सत्यां सिरमोड़ ।
आचार्य इण काल में, अवर न एहनी जोड़ ।।[२८]

लोकोक्ति

जोड़ी तो जुगती मिली, गुरू चेला "महीमंड" ।
जग मांहै पिण इम कहै, खीर मांहै जिम खंड ।।[२९]

अनन्वय

श्री माणक माणिक्य है, जौहरी "जय" गुरुदेव ।
उभय योग समुचित मिल्यो, फल्यो कार्य स्वमेव ।।[३०]

उदाहरण

सेन्यापति सेन्या मांहे सोभतो, तीन खंड में वासुदेव जांण ।
चक्रवत छ खंड मांहे सोभतो, ज्यूं साधां मांहे वखांण ।।
जिम इंद्र सौभै देवतां मझे, जिम साधां मांहे सोभै स्वाम ।
एहवा उत्तम पुरुष भरत क्षेत्र में, त्यांरो लीजै नित्य प्रति नाम ।।[३१]

संदेह

कोढ़ गली काया'र
राज-मैलां रै अदीठ रूप
सम-दीठ है जकै री
बो का तो बाल-भाव है ।
का जोग-माया ?[३२]

भाषा

राजस्थानी भाषा की अपनी अनुरणात्मकता एवं ध्यन्यात्मकता है । वह जैन शैली के अनुकूल कही जा सकती है । इसी गुण के कारण यह धार्मिक साहित्य मध्यकाल से आज तक उसी लय और ताल के साथ न केवल जैन धर्मावलम्बियों के गले का हार है अपितु जैनेतर साहित्य प्रेमियों को भी अपनी ओर आकर्षित किए हुए है । इसके अतिरिक्त पात्रानुकूल और भावानुकूल भाषा ने भी जैन साहित्य को जनप्रिय बनाया है । लंबी अस्वस्थता के बाद कालूगणि स्वर्ग सिधार गये । उनकी माता छोगाजी ने जब यह खबर सुनी तो मातृत्व उभर आया । बड़े धैर्यपूर्वक अपने मन को उन्होंने समझाया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे अवसर पर कोई मां अपने में कितना ढाढस बटोर सकती है, उसी को कवि ने भावानुकूल शब्दावली में यहां प्रस्तुत किया है—

लाल पाल कर पालियो, जिण नै हाथोहाथ ।
तिण रो आज निभा लियो स्वर्ग गमन साक्षात् ॥३॥
पल-पल में मैं झांकती, जिण री निशदिन बाट ।
सो सोभागी लाडलो, विलसे सुरगा ठाट ॥५॥
मो मन में नेहचो निविड़, सुत कर में सुर वास ।
मुझ कर में सुत संचर्यो, ओ विचित्र विधि भास ॥७॥
अति लम्बो आयुष्य ओ, म्हारो बण्यो निकाम ।
निठुर हृदय निरखै नयन, नन्दन विरहो वाम ॥८॥
जो सपनै जांणी नहीं, सो दरसांणी आज ।
कोई पण मत बांधज्यो, भावी रो अंदाज ॥९॥
गुरु जणनी अति विरहणी, सर्व सहणी रूप ।
समझावै चेतन भणी, अपणो आतम सरूप ॥१०॥[३३]

इन कवियों ने विभिन्न ऋषि-मुनियों, आचार्यों के व्यक्तित्व की रेखाओं को रूपायित करने हेतु ऐसे शब्द और ध्वनियों का प्रयोग किया है कि उन्हें पढ़ कर न मन भरता है और न ही आंखें थकती हैं। ऐसा ही मनोरम वर्णन जयाचार्य जी की रचना "सतजुगी चरित" से प्रस्तुत है जहां आचार्य भिक्षु के व्यक्तित्व के बिंब को उन्होंने इस शब्दावली में चित्रित किया है—

अप्रतिबंध वायु जिसा, क्षम्यावान गुणखांन ।
शीतल अमृत सरिखो वारू वरसतो वांन ॥८॥
पाखंड धूजै धाक सूं, आतपकारी आप ।
औजागर गुन आगला, मेटै घणां रा संताप ॥९॥
आनंदकारी ओपता, समण सत्यां सिरमोड़ ।
आचार्य इण काल में, अवर न एहड़ी जोड़ ॥१०॥[३४]

भावानुकूल भाषा का प्रयोग तेरापंथी कवियों की विशिष्टता है। बढ़ते औद्योगीकरण के कारण मानव व्यवहार में निरन्तर परिवर्तन आता जा रहा है। व्यक्ति अपने स्वरानुकूल संबंधों की स्थापना का पक्षपाती बन गया है। उच्च वर्ग के लिये सामान्य व्यक्ति का कोई महत्व नहीं रह गया है। इसी युगबोध को मुनि मोहनलाल जी सहज भावानुकूल भाषा में स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपरी पीड़ री ठा
कीड़ी
कोनी पाड़ी-कदेई मिनख नैं
क्यूं'क
बा जाणै ही कै
कोनी देखैली
अती हेठै
कोई मोटी दीठ ।[१५]

जैन कवि आरंभ से ही भ्रमणशील रहे हैं। देश के विभिन्न भू-भागों के उपासरों में रह कर वे अपने प्रवचन करते हैं। अतः उन्होंने सदैव उस भूखण्ड की भाषा और उसकी शब्दावली का प्रयोग अपने काव्य में किया। वैसे तो तेरापंथ के राजस्थानी कवियों की भाषा राजस्थानी ही है किन्तु उनमें राजस्थान की, विशेषतः ढूंढाड़ी, मेवाड़ी, बीकानेरी, बोलियों की शब्दावली का आधिक्य देखा जा सकता है। इसका प्रमुख कारण इन कवियों का इन भूभागों का निवासी होना भी हो सकता है।

तेरापंथ के ऐतिहासिक क्रम से स्पष्ट है कि इसका आरंभ १९वीं शताब्दी के आरंभ में हुआ। साथ ही इसका पल्लवन भी राजस्थान और गुजरात में ही अधिक हुआ। अतः भाषिक विकास के कारण इनकी रचनाओं में जहां गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी, हरियाणवी शब्दावली का स्वतन्त्रता के साथ प्रयोग किया गया है, वहीं आचार्य तुलसी एवं उनके शिष्यों की रचनाओं में अंग्रेजी शब्दों का भी खुल कर प्रयोग हुआ है, यथा—

डाक्टर, गवर्नमेंट, स्टेट, पोस्टर, शूगर, माइल, स्टेशन, ऑप्रेशन, पोईजन, नोट, इंजेक्शन इत्यादि ?

इस आधुनिक शब्दावली की भांति ही उसी साहित्यिक गरिमा के लिये मध्यकालीन डिंगल शैली का भी आधुनिक तेरापंथी कवियों ने सुंदर प्रयोग किया है—

खिलक्कत कित्त कुरंग सियाल,
मिलक्कत मांजर मोर मुयार।
सिलक्कत सांभर शूर शयार,
ढिलक्कत ढक्कत ढोर ढिचार ॥[३६]

डिंगल शैली की भांति ही अपभ्रंश काव्यबंध भी कवि की भाषा को चारुता प्रदान कर रहा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं सुजयं ।
चिट्ठियव्वं निसियव्वं, भुजियव्वमभयं ।।३।।
आउत्तं कज्जं सया, कीरमाणस्सं गुणे ।
पावं कम्म न बंधइ, पोराणं बिधुणे ।।४।।
पंच समिइ-समियस्स वा, गुत्तिदिय गुतस्स ।
सिद्धि सया हत्था गना, गुत्तबंभनारिस्स ।।५।।[३७]

इस प्रकार नादसौंदर्य, अनुरणात्मकता, समास-प्रधानता एवं लौकिक प्रयोगों से भरपूर भाषा ने राजस्थानी तेरापंथी कवियों के कलापक्ष को द्विगुणित किया है । पाठक के लिये यह कविता सम्प्रेषणीय है ।

तेरापंथ के इन राजस्थानी कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति को ढाल, दूहा, सोरठा, आर्या, लावणी, कलश, यतनी, गीतक, भुजंगप्रयात, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, मोतीदाम आदि छंदबंधों में बांधा है । ये छंद जैनशैली के अनुरूप हैं तथा तत्सम्बन्धी साहित्य के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं । आचार्य तुलसी ने रचना के प्रसंगरूप को स्पष्ट करने के लिए आरंभ में संस्कृत पदों का भी प्रयोग किया है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि तेरापंथ के राजस्थानी साहित्य का कलापक्ष काव्यत्व सम्पन्न है । जनरुचि के अनुकूल भाषा, शब्दावली, छन्द और अलंकारों ने इस काव्य को पंथ विशेष के साथ ही राजस्थानी साहित्य की स्थायी धरोहर बना दिया है ।

संदर्भ :

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
२. 'परम्परा'—राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल विशेषांक श्री अगरचन्द नाहटा का लेख—"मध्यकालीन राजस्थानी जैन साहित्य" पृ० १२५
३. विस्तृत विवरण हेतु द्रष्टव्य है—"तुलसीप्रज्ञा" में प्रकाशित मुनि सुखलाल की लेख शृंखला "तेरापंथ के आधुनिक राजस्थानी संत साहित्यकार" ।
४. कालूयशोविलास—उल्लास २, ढाल १०, छन्द २३-२६, पृ० १०४
५. वही, ५।९ पृ० २९७
६. वही, ५।९।१५ पृ० २९७
७. माणक महिमा--ढाल १८, छन्द ८, पृ० ९०
८. वही, १।७ पृ० ७
९. कीर्तिगाथा—भिक्षुगणि, गुणवर्णन, ढाल १७, पृ० १४
१०. कालूयशोविलास—५।७।१०, पृ० २९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. कीर्तिगाथा—पृ० १७ एवं १९४
१२. माणकमहिमा—पृ० ८८ ।
१३. कीर्तिगाथा— ढाल ८, छन्द ३, पृ० ९८
१४. अमरगाथा—ढाल ३, छन्द ५, पृ० ११३
१५. वही, ढाल २, छन्द १४ पृ० १२७
१६. वही, ढाल १२, छन्द ४-५ पृ० १७७
१७. कालूयशोविलास—४।१।३५-३६
१८. अमरगाथा—सतजुगीचरित, ढाल २, पृ० ५
१९. "तथ र कथ"—पृ० २
२०. कीर्तिगाथा—भारीमल गणि-गुण वर्णन—५।२, पृ० ४२
२१. कालूयशोविलास—पृ० १८, १९
२२. माणक महिमा—छन्द १३ पृ० ४१
२३. अमरगाथा—पृ० ४,५,८
२४. कालूयशोविलास—४।४।३२. पृ० २२८
२५. माणकमहिमा—छन्द २२, पृ० २९
२६. अमरगाथा—१४ पृ० ४
२७. कालूयशोविलास—३०५।१६।३४ पृ० ३२०
२८. अमरगाथा २।१० पृ० ५
२९. वही, ३।१२ पृ० ५
३०. माणक महिमा—छन्द ४, पृ० २९
३१. कीर्तिगाथा—संतगुणमाल, ढाल १, छन्द ४-५ पृ० ८५
३२. 'तथ र कथ'—पृ० ५
३३. कालूयशोविलास—उल्लास ३, पृ० ३७९
३४. अमरगाथा—ढाल २, पृ० ५
३५. 'तथ र कथ'—पृ० ३
३६. कालूयशोविलास—४।१०।४१ पृ० २५३
३७. माणकमहिमा—पृ० ४३-४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक राजस्थानी कविता को तेरापंथी संतों का योगदान

☐ डॉ० मूलचन्द सेठिया

राजस्थानी भाषा और तेरापंथ का प्रवर्तन काल से ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। आद्याचार्य भिक्षु और चतुर्थाचार्य जीतमलजी दोनों ही राजस्थानी कविता के प्रोज्वल नक्षत्रों में रहे हैं। अर्वाचीन काल में भी, जिसका आरम्भ आचार्य तुलसी के पट्टारोहण से होता है, मुनि सोहनलालजी, मुनि चम्पालालजी, मुनि बुद्धमल्लजी आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा है। मुनि सोहनलालजी ने तो कालूगणी के युग में ही अपने वाग्वैभव का परिचय देना आरम्भ कर दिया था, परन्तु उनकी प्रतिभा का प्रखर विकास तुलसी युग में ही हुआ। स्वयं आचार्य तुलसी ने मगन चरित्र में आपका परिचय देते हुए लिखा है :

लेखन, वक्ता, कवि गायक, विद्या सेवी,
चरचा में चतुर कलाप्रिय, प्रिय वाग्देवी।

आपने प्रायः साठ वर्षों तक संयम की आराधना के साथ शब्द की साधना की थी। वे वाणी के वरद पुत्र थे। उन्हें ओजस्वी मुद्रा में काव्य-पाठ करते सुनकर कवि और काव्य की एकात्मता का अनुभव होता था। वे केवल मुख से ही कविता नहीं सुनाते थे, उनके अंग-अंग के इंगित से काव्य के स्वर मुखरित होते थे। उनका रोम-रोम काव्यमय था। राजस्थान और राजस्थानी भाषा के प्रति आपका अनन्य अनुराग था। राजस्थान का गौरव-गान कवि ने इन शब्दों में किया था—

बड़ा-बड़ा मरदां रो माथो राजस्थान रंगीलो है,
कर्मवीर और धर्मवीर दोनां नै अै निपजाया है।
सांगा और हम्मीर धीर चित्तौड़ भूमि रा जाया है।

उन्होंने राजस्थान की जिस पुण्य भूमि पर सूर्य की प्रथम किरण का स्पर्श पाया, उसी पर अपनी जीवन-संध्या का पटाक्षेप होते देखा था। वैसे तो सन्त चिर यायावर होते हैं, परन्तु नियति ने राजस्थान के साथ मुनि सोहन का जो अटूट सम्बन्ध जोड़ दिया था, उसे वे सदैव गर्व और गौरव के साथ स्वीकार करते रहे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देश मारवाड़ और चूरू में जनम म्हारो,
तेरा वर्ष रह्यो मारवाड़ी रमझोली में।
बोली मारवाड़ी ही में राखूं दिलचस्पी नित्य,
रह्यो मारवाड़ का ही साधुवां की टोली में।

काव्य की दृष्टि से मुनि सोहन की कविताएं मूलतः भक्ति और विरति की कविताएं है। उनमें एक ओर जीवन के उच्चतर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा है तो दूसरी ओर अपने आराध्य के प्रति अनन्य आस्था और सर्वात्म-समर्पणभाव की अभिव्यक्ति हुई है। गुरु गुण वर्णन में उनकी विशेष अभिरुचि रही है और इसकी महिमा का वर्णन उन्होंने इन भाव-विभोर शब्दों में किया है—

नमन करत सब विघन टरत भव,
उदधि तरत दुख परत अलग है।
भरम मिटत जिन धरम पटत,
अवगुण सब दुरत करत अघनग है।

आपने प्रमुख रूप से तेरापंथ के प्रवर्तक आचार्य भिक्षु, अपने दीक्षा गुरु आचार्य कालू और वर्तमान आचार्य तुलसी के प्रति अनन्य भक्तिभाव की अभिव्यक्ति की है। इनका प्रायः समस्त काव्य प्रकीर्णक है और इन्होंने किसी प्रबन्ध-काव्य की रचना नहीं की। 'जसमा ओडण' नामक एक आख्यानक काव्य की रचना अवश्य की थी, परन्तु यह अधावधि प्रकाशित नहीं हुआ है। फिर भी, आपने स्फुट रूप से आचार्य भिक्षु के इतने अधिक जीवन-प्रसङ्गों को शब्दबद्ध किया है कि अगर उन्हें काल-क्रमानुसार व्यवस्थित रूप से संयोजित किया जाए तो एक जीवनी परक काव्य का प्रबन्ध स्वतः सम्पन्न हो जाएगा। यह सही है कि मुनि सोहन एक सम्प्रदाय विशेष के सन्त थे और अपनी गुरु-परम्परा के प्रति उनका पूर्ण समर्पण भाव रहा था, परन्तु इसके बावजूद उनका अधिकांश काव्य लोक सामान्य भाव भूमि पर आधारित है। आपने अपने युग-यथार्थ का चित्रण करते हुए उसकी विसंगतियों और विषमताओं को पूरे तौर पर उजागर करने का प्रयास किया है—

आज भलां को उठ्यो बिस्वास, लफंगां के घी में चमाचम टोटो।
हाथ के हाथ भरे बटका, आयो आज जमानो हलाहल खोटो।
चोर, छली, बदखोर ठगोरा नै, सोरो मिलै हर काम को कोटो।
जो मरग्या तरग्या दुख सिन्धु हा !, आयो जमानो हलाहल खोटो।

नव आचार्य तुलसी ने अणुव्रत आंदोलन का प्रवर्तन किया तो मुनि सोहन के काव्य को एक नया सामाजिक प्ररिप्रेक्ष्य प्राप्त हो गया। कवि ने 'अणुव्रत-वाटिका' के अनेक छन्दों में इस नैतिक आंदोलन की पुनरुत्थानकारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका को स्पष्ट करते हुए युगीन समस्याओं के समाधान की ओर संकेत किया है—

आज की स्वतंत्रता तो दादी परतंत्रता की,
थोड़ा-सा दिनां में रूप आपनो दिखायो है।
खान-पान वस्त्र की भी रही नां व्यवस्था कछु,
स्वारथ की भावना में भारत फंसायो है।
देख दुनिया को हाल हाल्यो तुलसी को हृदै,
अणुव्रत-संघ बीज रोप्यो मन भायो है।
सोहन भनन्त फल लूटण हुवै तो लूटो,
तुलसी स्वतंत्रता को खरो खेत बाह्यो है।

अपने छह दशक के सृजन-काल में मुनि सोहन ने प्रभूत काव्य-रचना की है; मात्रा और गुणवत्ता की उभय दृष्टियों से उनकी रचनाओं में विपुल वैविध्य और विस्तार है। वे शब्द के सिद्ध-साधक थे और भणिति की विभिन्न भंगिमाओं पर उनका असाधारण अधिकार था। उनके अन्तेवासी मुनि छत्रमलजी के शब्दों में "उनका काव्य यथार्थवाद से बहुत संलग्न है, पर यथार्थवाद भी न वहां नग्न हुआ है, न भग्न। उस काव्य में मर्मोक्तियों, व्याजोक्तियों और व्यंग्योक्तियों की भरमार है तो प्रक्रिया की पैनी काट-छांट से अनूठा साज-शृंगार और भी निखरा है। इस हिंसा-प्रतिहिंसा से संतप्त और द्वेष-दग्ध संसार को वे यह अन्तिम सन्देश दे गए थे—

विश्व की समस्या आज हो रही विचारणीय
आपस के सोये विस्वास को जगाओ रे!
वातावरण हिंसा को मिटाकर अहिंसा द्वारा
'सोहन' इ दुनिया दिवानी नै बचाओ रे!

आचार्य तुलसी के 'बड़भाई' सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी 'भाईजी महाराज' के नाम से सब के हृदय में समाए हुए थे। परन्तु, जब तक उनके कविता संग्रह आसीस का प्रकाशन नहीं हुआ बहुत कम लोगों को यह पता था कि वे प्रेरणा के क्षणों में शब्द भी जोड़ते हैं। सच तो यह है कि भाईजी महाराज एड़ी से चोटी तक हृदय ही हृदय थे। और ऐसा संवेदनशील व्यक्ति कवि हुए बिना कैसे रह सकता था? उन्होंने अपने जीवन में पुल ही पुल बनाए, कभी खाई नहीं खोदी। वे जीवन भर सुई का कार्य करते रहे, कभी कतरनी नहीं बने। इन पंक्तियों में उन्होंने जैसे अपने जीवन का मूल मन्त्र प्रस्तुत कर दिया है—

गिरतोड़ै नै थाम रे चम्पा! चेप टूटतोड़े नै।
फूंक दूखतै फोड़ै रे दे, सींच सूखतोड़ै नै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी आखिरी सांस तक वे रोतों को हंसाते रहे, टूटतों को जोड़ते रहे और लड़खड़ाने वालों को अपनी बांह का सहारा देकर खड़ा करते रहे ।

मुनि चम्पक हृदय से कोमल होते हुए भी संयम-साधना में जागरूक और कठोर थे । उनके अनेक दोहों में व्यक्ति की अन्तश्चेतना को जगाकर उसे 'तप तीखी तरवार, करम कटक सूं जुध करण' के लिए प्रेरित किया गया है । आर्त को देखकर उनका हृदय मोम की तरह पिघलता था, परन्तु साधना के क्षेत्र में वे वीरभाव से संघर्ष करने के पक्षपाती थे । दुःख में दुर्बलता दिखाने से क्या होगा, रोने से राज थोड़े ही मिलता है !

कर्म भोग समभाव सूं, आली मत कर आंख !
'चम्पा' बांध्या चीकणा, रोवै क्यूं बण रांक ?

अध्यात्म की साधना मन की साधना है, अपनी समस्त चित्तवृत्तियों को बाहर से खींच कर अन्ततः अपने मन में ही केन्द्रित करना होता है । गोरख, कबीर, तुलसी आदि समस्त भक्त कवियों ने साधक को अपने मन के मानसरोवर में ही अवगाहन करने का उपदेश दिया है । 'चम्पक' का यह दोहा भी मनः साधना की प्राथमिकता को रेखाङ्कित करता है—

मन गंगा मन गन्दगी, मन रावण मन राम ।
सरग-नरक पुन-पाप मन, मन उजाड़ मन ग्राम ।

आत्म-साधना की जानी-पहचानी सच्चाइयों को भी आपने अपने मन के माधुर्य में लपेट कर बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है—

औरों का ऐश्वर्य-सुख, झांक टांक मत टींक ।
करणी करता क्यूं तनै, आवै चम्पा झींक ।
कै ठा कुण सै जलम हा, शेष भोगणा भोग ?
'चम्पा' चुकै उधार क्यूं, बिलखो देख वियोग ?

दोहा छन्द पर आपका असाधारण अधिकार था और अपने अन्तेवासियों को सम्बोधित कर उन्होंने राजिया और चकरिया की तर्ज में अनेक सम्बोधनात्मक दोहे भी कहे थे ।

मुनि चम्पक ने केवल कविता ही नहीं लिखी, कविता के स्वरूप और उसकी रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में अपने नपे-तुले विचार भी प्रस्तुत किए हैं । जब कभी उसके 'मन का मोरिया' नाचता तो वे कविता बनाते नहीं, वह अपने आप बन जाती थी ।

कविता कोई भाटो थोड़ोई है जको घड़ र बिठा द्यो ।
कविता बणाई कोनी जावै, बा तो आप ही बणै है ।

वे कवियशः प्रार्थी नहीं थे, कवियों की अगली पांत में बैठने के अभिलाषी भी नहीं थे, परन्तु यह मानते थे कि आत्माभिव्यक्ति का अधिकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी को है। वे इस सम्बन्ध में बड़ी दृढ़ता के साथ अपना दावा पेश करते हैं—

घुड़दौड़ में तो सगलाइ घोड़ा दोड़े
दौड़ै जकां मैं कै सगलाह ओड़ै-जोड़ै ?

वस्तुतः आसीस में संकलित रचनाएं सेवाभावी सरल मना भाईजी महाराज के दिल का दर्पण हैं, उनके हृदय की सरलता, निश्छलता और वत्सलता इनमें प्रतिबिम्बित हुई है।

युवाचार्य महाप्रज्ञ हिन्दी और संस्कृत के महान् कवि हैं, उनकी कविता में सतही भावुकता उतनी नहीं होती, जितनी मानवीय अस्तित्व के मूल प्रश्नों को लेकर ज्ञानात्मक संवेदना की अभिव्यक्ति होती है। उनकी राजस्थानी रचनाओं से मैं सर्वथा अपरिचित था, परन्तु एक निबन्ध में "फूल और कांटे" कविता के इस उद्धरण को पढ़कर आश्चर्ययुक्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ—

बड़ो सीधो है, पण कनै सत्ता कोनी
सत्ता कोनी जद ही सीधो है,
नहीं तो आज तांई रैतो ही कोनी
पैली ही सिधाई पूरी हो जाती।

इस कविता में उनके व्यक्तित्व का एक नया ही आयाम उद्घाटित हुआ है, जिसमें चिन्तन को व्यंग्य के बाण पर चढ़ाकर तीर-सा तीखा बना दिया गया है। काश ! उन्होंने ऐसे तीक्ष्ण संवेदन वाली और भी कविताएं लिखी होतीं। शायद लिखी हों और मेरे ध्यान में ही नहीं आई हो। महाप्रज्ञ भूलें नहीं कि उनकी प्रतिभा पर मायड़ भाषा का भी कुछ दावा है।

मुनि बुद्धमल्लजी कवियों के कवि हैं। हिन्दी, संस्कृत और राजस्थानी भाषा में उनकी लेखनी समान रूप से गतिशील रही है। कविवर दिनकर ने 'मन्थन' की भूमिका में लिखा था "बुद्धमल्लजी सस्ती भावुकता के प्रवाह में बहकर काव्य-क्षेत्र में नहीं आ रहे हैं। उनके भीतर विचारों का तेज है। बुद्धमल्लजी चिन्तक कवि हैं और उनकी कविता में विचारों की रीढ़ स्पष्ट दिखाई देती है।" कवि ने स्वयं लिखा हैं—मेरी कविता का प्रारम्भ राजस्थानी कविताओं से हुआ था, परन्तु राजस्थानी में उनका एक मात्र कविता-संग्रह 'उणियारो' हिन्दी कविता संग्रहों के बाद में प्रकाशित हुआ था। किसी भी दृष्टि से ये कविताएं प्रारम्भिक रचनाएं नहीं हैं, अपने कथ्य और अभिव्यंजन दोनों ही दृष्टियों से ये राजस्थानी की श्रेष्ठतम रचनाओं के समकक्ष ठहराई जा सकतीं हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक मनोविज्ञान की मान्यता है कि आज का मानव इतने बाहरी और भीतरी तनावों एवं दबावों के बीच जी रहा है कि वह अपने व्यक्तित्व को खण्डित होने से नहीं बचा पा रहा है। एक ही व्यक्ति में न जाने कितने व्यक्तित्व अन्तर्निहित रहते हैं और एक ही चेहरा न जाने कितने मुखौटे लगाकर सामने आता है—

उणियारे में और घणा उणियारा है,
ऊपर एक अभितर न्यारा-न्यारा है !

आज की सभ्यता का यह संकट है कि व्यक्ति अपनी सम्पूर्णता और समग्रता को खण्डित होने से नहीं बचा सका है। उणियारो की कविताओं में व्यक्तित्व-विघटन और उसके अन्तर्बाह्य जीवन की अनेक रूपता और परस्पर विरोधिता का स्वर ही सबसे ऊपर उभर कर सामने आया है। यह आज का युग-सत्य है कि जो बाहर से जुड़े हुए हैं वे ही भीतर से टूटे हुए लगते हैं। और जो बाहर से भरे-भरे लगते हैं वे ही भीतर से खाली दिखलाई पड़ते हैं। व्यक्ति जैसा है वैसा दिखलाई नहीं पड़ता है, और जैसा दिखलाई पड़ता है, वैसा है नहीं। जीवन का यह दुविधाजनक द्वन्द्व उनकी अनेक कविताओं में मुखरित हुआ है—

बारै हंसणो, भीतर रोणो, ये दोन्यूं चालै।
झूठ अणूता घोचा नितरा घरै घालै।
बारै स्यूं सांचो, भीतर स्यूं झूठो बण जावै।
कीं नैं मानां, कीं नैं छोड़ा, ओ संसो आवै।

कवि ने व्यक्ति के इस बहुरुपिएयन-अन्तर्बाह्य जीवन की असमानता पर प्रबल प्रहार करते हुए समग्रता, एकरूपता और अविभाज्यता के महत्त्व को रेखाङ्कित करने का प्रयास किया है। जीवन में विरोध ही विरोध है, परन्तु विरोध का भी अपना एक आकर्षण होता है—

रोणै-हंसणै में दूरी सौ कोस री
पण दोन्यां नै बिना मिल्यां कद आवड़ै !

आपने भी हँसते हुए आँसू और रोती हुई मुस्कान देखी होगी !

कभी बच्चन ने गाया था 'जो बीत गई सो बात गई।' व्यक्ति अगर स्मृतियों के भार को लादे फिरेगा तो उसके पैर कभी सीधे नहीं पड़ेंगे। आँसुओं के सागर में डुबकी लगाने वाले को कभी किनारा नहीं मिलता। अतीत केवल स्मृति है तो भविष्य निरी कल्पना, व्यक्ति को जीना तो वर्तमान में ही पड़ता है—

बीती बातां भूल, आज नै काम लै,
जीवतड़े पल री डोरी तूं थाम लै,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओ खिण, बीजक झपकै ज्यूं आयो घरै,
ई बहुमोले री बस पकड़ लगाम लै।

वर्तमान में जीने वाला न यादों की जुगाली करता है, न सपनों की सौदागरी। वह तो बस आगे से आगे चलता रहता है। कवि 'चरैवेति-चरैवेति' का यही सन्देश देते हुए कहता है—

चाल आगे, के उडी कै और ने
देख, सूरज की निकलती कोर ने।

'मिणकला और पगोथिया' के नाम से मुनि बुद्धमल्ल जी के दूहे प्रकाशित हो रहे हैं, जिनमें आत्मानुभव और लोकानुभव का सहज सम्मिश्रण हो गया है। आपकी हिन्दी कविता की एक पंक्ति है "भाषा क्या है ? भावों का लंगड़ाता-सा अनुवाद।" लेकिन सत्य तो यह है कि चाहे गीत हो, कविता हो या दूहे हों, मुनि बुद्धमल्ल की भाषा कहीं लंगड़ाती हुई प्रतीत नहीं होती। दूहों की बानगी भी देख लीजिए—

बढ़ती बात पगोथिया, साधन बणै जरूर।
पण बां नै छोड़यां बिना, मैड़ी रैज्या दूर।
के कर लेसी ताकड़ी, के कर लेसी बाट।
तोलणिये री नीत जद, घड़सी ओघट घाट।

वस्तुतः मुनि बुद्धमल्लजी राजस्थानी कविता के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं और उणियारो राजस्थानी के काव्योत्कर्ष का एक ऊँचा कीर्तिमान स्थापित करने वाली रचना है।

मुनि मोहनलालजी आमेट ने अपनी राजस्थानी कविताओं में मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। जगत् के 'अपार अंधकार और अन्तहीन उजाले' को आमने-सामने रख कर 'तथ र कथ' में कुछ निरपेक्ष निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है। उनकी दृष्टि जगत् में व्याप्त द्वन्द्व और द्वैत पर केन्द्रित रही है, परन्तु उसे उन्होंने अन्तिम सत्य नहीं माना है। उनकी काव्य-सर्जना के मूल में वह अद्वैतमूलक दृष्टि है, जो सारे दृश्यमान भेदों को भेद कर अभेद का दर्शन करना चाहती है। इसीलिए, उनकी दृष्टि दर्शन और बाद के परे धर्म पर केन्द्रित है—

दुंद स्यूं/जलम्यो है/दरसण/घुटन स्यूं/निकल्यो है/वाद।
धरम/दरसण है न वाद/वो तो है/मन रो अपरमाद।

अगर पक्ष रहेगा तो प्रतिपक्ष कहां जाएगा ? इसी सत्य को बिम्बात्मक अभिव्यक्ति देते हुए कवि ने कहा है—

जींवती रैसी/झूंपड़ी/जठै तांई कल्पना में है मैल

मुनि 'दिनकर' और मुनि 'मधुकर' की कविताएं कथ्य के साथ ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने स्वर सम्मोहन के कारण भी विशेष लोकप्रिय हुई हैं। दिनकरजी की 'आत्म-बावनी' के गीतों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि जैसे कवि आत्मा के कान में बड़ी आत्मीयता के अन्दाज में कोई मन की बात कह रहा है—

हे छानै-छानै मैं पूछूं हूं म्हारी आतमा
थे साची-साची बात बताओ जी !

यह स्वर जहां जितना आत्मीय हो गया है, वहां उनकी गीतिकाएं उतनी ही मर्मस्पर्शिनी हो गई हैं।

मुनि 'मधुकरजी' 'हवड़ै रो हेलो' में भी आत्म-प्रबोधन के स्वर हैं परन्तु इनका लहजा कुछ अलग है—

देखो, देखो, देखो अपणी आतमा नै देखो रे
पड़सी पड़भब रो बणणो पांवणों।
लेखो, लेखो, लेखो अपणै घर रो लेल्यो लेखो रे
कांई-कांई है देणो पावणो।

सच तो यह है कि 'दिनकरजी' और 'मधुकरजी' की मधुर गीतिकाओं का पूरा रसानुभव उन्हे छापे के निर्जीव शब्दों में पढ़ कर नहीं, उनके कल-कण्ठों की मधुर लय में सुनकर ही किया जा सकता है।

मुनि सुखलालजी ने अनेक विधाओं में अपने सृजनात्मक प्रयोग किए हैं। राजस्थानी कविता को भी उन्होंने उपेक्षित नहीं रहने दिया है। उनकी कविताओं में ओज, उत्साह और उद्‌बोधन के स्वर प्रधान हैं—

तू अपनो पुरुषार्थ जगा लै, दुनिया अपणै आप फुरै ली।
बादल घर-घर पाणी बाँटे, पण नदियां को काम करारो।
एक झपाटै में ले जावै, ए पाणी दुनियां रो सारो।
बणा बांध मजबूत इसो तू, नदियां आपणै आप रुकैली।

मुनि वत्सराजजी हिन्दी के प्रातिभ कवि हैं। परन्तु उनकी एक राजस्थानी रचना की ये पंक्तियां आज के कंटीले युग-यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से मुझे बहुत प्रभावकारी प्रतीत हुई। इनमें जो सटीक व्यंग्य है, वह कवि की अंतर्वेदना से उपजा है, इसलिए गहरी मार करता है—

सड़कां तो सीधी आज बणी, पण बण्या आदमी टेढ़ा है।
कंकर तो जमग्या सड़कां पर, (पण) मिनखां में पड्या बखेड़ा है।
जो भूल्यो भटक्यो आवे तो सड़कां तो पार पुगावै है।
पण करै भरोसो मिनखां रो तो काली धार डुबोवै है।

आज युग-प्रधान आचार्य तुलसी के दिशा निर्देश में सन्तों और साध्वियों की कई पीढ़ियां एक साथ राजस्थानी के माध्यम से काव्य-सृजन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संलग्न है। मेरा निबन्ध केवल सन्तों तक सीमित है परन्तु उनके समस्त रचना-कर्म का सर्वेक्षण भी मैं नहीं कर सका हूं। मुझे जो रचनाएं सुलभ हो सकीं, उन्हीं के आधार पर मैंने यह अधूरा-सा अध्ययन प्रस्तुत किया है। मैं इस तत्त्व के प्रति अचेत नहीं हूं कि अनेक महत्वपूर्ण कवियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख मैं नहीं कर सका हूँ। लेकिन यह अवज्ञा के कारण नहीं मेरे अज्ञान के कारण हुआ है। उन सबके प्रति कर बद्ध क्षमा प्रार्थी हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिक्खु दृष्टांत—एक अनुशीलन

(दृष्टांतों की छटा)

☐ साध्वी कानकुमारी

साहित्य के क्षितिज पर उभरने वाली अनेक विधाओं में एक सरस और सुबोध विधा है—**संस्मरण**। संस्मरण सांस्कृतिक परम्परा के संवाहक हैं। संस्मरणों में सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक वातावरण का प्रवाह होता है।

जिस समय जो संस्मरण घटित होते हैं, उन्हें कालजयी मनीषा, गहरी संवेदनशीलता और तथ्यों के साथ नई प्रस्तुति प्रदान करती हैं। कलम द्वारा लिखे गए ये संस्मरण इतने सजीव और जीवंतता लिये होते हैं, कि उन्हें पढ़ने वालों की फिसलती निगाहें एक बार में ही सहजता से पकड़ लेती हैं।

संस्मरणों की जो विधा है, वह आत्म-चरित्र के अन्तर्गत आती है। संस्मरणों को प्रस्तुत करने वाला लेखक अपने समय का सम्पूर्ण इतिहास अंकित करना चाहता है।

संस्मरणों में लेखक की संवेदनाएं और अनुभूतियाँ मुखर होती है। इसलिए लेखक शैली की दृष्टि से निबंधकार के बहुत निकट होता है। पश्चिम के साहित्य में साहित्यकारों के साथ-साथ बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों, प्रबुद्ध व्यक्तियों और उच्च पदाधिकारियों ने अपने जीवन में घटित होने वाले संस्मरणों को अक्षर-शिल्पी बनकर जीवन के कागज पर चित्रित करने का सफल प्रयास किया हैं। उन संस्मरणों के महत्व को साहित्यिक-जगत् ने स्वीकार किया है।

संस्मरण लेखक यदि अपने सम्बन्ध में लिखते हैं, तो उससे उनकी रचना आत्मकला की निकटता साधती है। यदि अन्य व्यक्तियों से संबंधित संस्मरण लिखे जाते हैं, तो वे संस्मरण जीवनी के निकट होते हैं। इन दोनों प्रकार के संस्मरणों को अंग्रेजी में क्रमशः "**रेमिनिसेंसेज और मेम्बायर्स**" कहते हैं। इस दृष्टि से स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखित लेख या ग्रन्थ को संस्मरणात्मक संज्ञा प्राप्त होती है। संस्मरणों के स्वस्तिक विविध भाषाओं में उकेरित हुए हैं।

हिन्दी साहित्य में इस विधा का प्रचलन आधुनिक काल में पश्चिमी प्रभाव और वातावरण में हुआ है। संस्मरण-लेखन-क्षेत्र में प्रौढ़ एवं सृजनात्मक रचनाएं अच्छी संख्या में उपलब्ध हैं। हिन्दी के प्रारम्भिक लेखकों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदम सिंह शर्मा प्रमुख हैं। **बनारसी दास चतुर्वेदी** की दो महत्वपूर्ण कृतियां **"संस्मरण"** और **"हमारे अपराध"** इनमें आकर्षक शैली में संस्मरण प्रस्तुत किए गए। इसके बाद के अनेक हिन्दी संस्मरण लेखकों ने अपने संस्मरण साहित्य में विभिन्न पात्रों का सजीव एवं कोमल चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया है। वस्तुतः संस्मरण-साहित्य व्यक्ति के मन में इन प्रसंगों, घटनाओं और संस्मरणों को आत्मसात् करने की ललक पैदा कर देता है।

भिक्खु दृष्टांत:—यह ग्रन्थ राजस्थानी भाषा का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। अतीत में संस्मरणों की परम्परा बहुत क्षीण रही है। उस समय का लिखा हुआ यह संस्मरण ग्रन्थ भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व साहित्य की अनुपम मिसाल है। संस्मरणात्मक शैली की अद्भुत और आकर्षक राजस्थानी भाषा की प्रथम कृति है।

इस कृति में 'पुण्यश्लोक' तेरापन्थ प्रणेता आचार्य भिक्षु के जीवन-प्रसंगों का आंकलन किया गया है। इन महत्वपूर्ण जीवन-प्रसंगों का तेरापन्थ धर्मसंघ में अद्वितीय स्थान है। इसकी हस्तलिखित प्रति तेरापंथ भंडार में सुरक्षित है।

इस कृति के द्वारा आचार्य भिक्षु के कर्तृत्व, व्यक्तित्व और नेतृत्व का तलस्पर्शी अध्ययन किया जा सकता है। आचार्य भिक्षु की वास्तविक जीवन झांकी और उनके उदात्त विचारों का मूल आधार क्या रहा? यह दिशा बोध इस कृति के द्वारा प्राप्त हो सकता है। अतः इन संस्मरणों में मन की गहराईयों को छूने वाली अर्थवत्ता निहित है।

कृति के संकलन कर्त्ता—

'भिक्खु दृष्टांत' के सृजनकर्ता हैं—प्रज्ञा पुरुष जयाचार्य। जिन्होंने अपनी अप्रतिम प्रज्ञा से आचार्य भिक्षु के ३१२ छोटे-छोटे अत्यन्त मार्मिक और रोचक राजस्थानी भाषा के संस्मरणों को इस ग्रन्थ में संजोया है। जिन्हें पढ़कर सुधी पाठकों को ऐसा अनुभव होता है, कि आचार्य भिक्षु और महा-मनीषी जयाचार्य भाषा विशेषज्ञ रहे हैं। इनके ग्रन्थों से **"राजस्थानी सबद कोस"** के निर्माता **सीताराम जी लालस** ने सैकड़ों राजस्थानी भाषा के शब्दों का संग्रह किया है।

'भिक्खु दृष्टांत' भावों की प्रवणता, भाषा की मधुरता और शब्द-शिल्पन-सौन्दर्य से महत्वपूर्ण ग्रन्थ बन गया है। इन विशेषताओं के कारण यह ग्रन्थ जयाचार्य की बेजोड़ सृजन क्षमता का परिचायक है।

रचनाकाल—

तेरापन्थ में संस्मरण साहित्य का अभ्युदय प्रज्ञापुरुष जयाचार्य से प्रारम्भ होता है। स्थित प्रज्ञ मुनिश्री हेमराजजी स्वामी ने वि० सं० १९०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में नाथद्वारा में पावस प्रवास किया। उस समय युवाचार्य "जय" भी साथ थे। जयाचार्य का चिरपोषित स्वप्न था कि आचार्य भिक्षु के मधुर, रोचक एवं शिक्षाप्रद संस्मरण लिपिबद्ध किये जाये। इस पावस में जयाचार्य का यह स्वप्न फलित हुआ। बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी हेमराजजी स्वामी की सन्निधि में, जिनके ज्ञान प्रकोष्टकों में लम्बी अवधि के बाद भी आचार्य भिक्षु से सम्बन्धित वे संस्मरण सुरक्षित थे। इस पावस में हेम मुनि ने जयाचार्य को ये संस्मरण लिपिबद्ध कराए।

ये संस्मरण भावी पीढ़ी के लिए अमूल्य निधि बन गए। इन संस्मरणों के संकलन का नाम रखा गया—**भिक्खु दृष्टांत**। इन दृष्टांतों को दो दृष्टियों से विश्लेषित किया जा सकता है।

१. अनुभूत।

२. श्रुत।

कुछ संस्मरणों के हेमराजजी स्वामी स्वयं साक्षी रहे हैं। और कुछ उन्होंने स्वामीजी से तथा दूसरों से सुने उन संस्मरणों को जयाचार्य को लिपिबद्ध कराया।

भिक्खु दृष्टांत—

संस्मरण साहित्य में यह उच्च कोटि का ग्रंथ है। यह हमारे धर्मसंघ में ही नहीं, विश्व में राजस्थानी भाषा का दुर्लभ ग्रन्थ हैं। यह कृति हमारे धर्मसंघ की सांस्कृतिक धरोहर है। इसके बाद तेरापन्थ में संस्मरण लेखन की स्वस्थ पद्धति का शुभारम्भ हुआ जो आज तक अपने लक्ष्य की ओर निरंतर गतिमान् है।

आचार्य भिक्षु तात्त्विक ज्ञान के अक्षय कोष, आगमज्ञ, प्रत्युत्पन्न प्रतिभा, सम्पन्न विराट् व्यक्तित्व के धनी, कुशल प्रशासक, अनुशासननिष्ठ, आचारनिष्ठ एवं श्रमनिष्ठ इन विशेषताओं के पुरोधा थे। यह स्वामीजी के जीवन प्रसंगों के संकलन का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। आचार्य भिक्षु के संस्मरणों में तत्त्व-चिन्तन की सूक्ष्मता, तार्किक शक्ति की प्रखरता और जिज्ञासाओं को समाहित करने की अद्भुत क्षमता का दिग्दर्शन होता है। उनके जीवन दर्शन को उजागर करने वाली ये घटनाएं और संस्मरण हमारे धर्मसंघ के सर्वाधिक महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं।

इस ग्रन्थ को पढ़ने, मनन करने और अनुशीलन करने से सुधी पाठक अपनी प्रज्ञा की ऊंचाई को छू सकता है। अतः इन संस्मरणों को निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है:—

(क) तत्त्व दर्शन

(ख) आचार दर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ग) व्यवहार दर्शन
(घ) विचार दर्शन

(क) तत्त्व दर्शन—

विकास यात्रा के विविध पहलू हैं। उनमें एक पहलू है 'तत्त्व-दर्शन'। तत्व-दर्शन के अभाव में व्यक्ति विकास की समग्र यात्रा नहीं कर सकता। यात्रा में पूर्णता तभी आती है जब उसे तत्त्व को समझने योग्य आंखें उपलब्ध होती हैं। तत्त्व का अर्थ है—होना।

तत्त्ववेत्ताओं ने तत्त्वों का वर्गीकरण किया है। जैन अभिमत में मूल तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव। जीव के उपजीवी तत्त्व हैं आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष। अजीव के उपजीवी तत्त्व है—पुण्य, पाप और बंध! भगवान् महावीर ने कहा—**"जीवाजीव अणायंतो कहं सो नाहिइ संजमं।"** जो साधक जीव और अजीव को नहीं जानता है वह संयम का आचरण कैसे करेगा।

स्वामीजी के सैद्धांतिक धारणाओं के कुछ सुमधुर संस्मरण प्रस्तुत हैं—

१. तुम संज्ञी हो या असंज्ञी :

उदयपुर में स्वामीजी के पास एक वेशधारी साधु आया। उसने कहा—मुझसे प्रश्न पूछो? स्वामीजी ने कहा—तुम हमारे पास आए हो फिर क्या प्रश्न पूछें। तब वह बोला कुछ तो पूछो। स्वामीजी बोले—तुम संज्ञी (समनस्क) हो या असंज्ञी (असमनस्क)। तब वह बोला—मैं संज्ञी हूँ।

तब स्वामीजी बोले—इसका न्यात बताओ। तब वह बोला—नहीं, नहीं मैं असंज्ञी हूँ। तुम असंज्ञीहो इसका भी न्याय बताओ। तब वह बोला—मैं न संज्ञी हूँ और न असंज्ञी हूँ। स्वामीजी बोले—तुम संज्ञी-असंज्ञी दोनों नहीं हो, यह किस न्याय से। तब वह क्रोधित होकर बोला—तुमने न्याय-न्याय कर हमारे सम्प्रदाय को बिखेर दिया। वह जाते-जाते छाती में मुक्के का प्रहार कर चलता बना।

२. राग-द्वेष की पहचान :

राग-द्वेष की भिन्न पहचान के लिए स्वामीजी ने दृष्टांत दिया। कोई बच्चे के सिर पर चोट मारता है। तब लोग उलाहना देते हुए कहते हैं, बच्चे के सिर पर क्यों मारते हो? किसी ने बच्चे को लड्डू दिया या मूली दी उसे कोई नहीं रोकता। क्योंकि राग को पहिचानना कठिन है, द्वेष को पहिचानना सरल है।

(ख) आचार दर्शन—

जैसे दूध का सार नवनीत होता है। फलों का सार रस होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयुर्वेदिक औषधियों का सार अर्क होता है। ऐलोपैथिक औषधियों का सार ए० बी० सी० डी० टेबलेट होती हैं। वैसे ही ज्ञान का सार आचार होता है। "नाणस्स सारो आयारो" स्वामीजी के संस्मरणों में उनके ज्ञान की गहराई के साथ आचरण की ऊंचाई का प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है। प्रस्तुत हैं, आचार दर्शन के कुछ संस्मरण:—

१. तीन नौकाएं :

किसी व्यक्ति ने आचार्य भिक्षु से पूछा—शुद्ध साधु कौन होता है? स्वामीजी ने नौका का उदाहरण दिया।

तीन नौकाएं हैं।

एक पूर्ण नौका

दूसरी छिद्र युक्त नौका।

तीसरी पत्थर की नौका।

पहली नौका के समान शुद्ध आचार निष्ठ साधु जो स्वयं तरता है और अन्य भव्य प्राणियों को तारता है।

दूसरा केवल साधु परिवेश में रहता है। वह स्वयं डूबता है। दूसरों को संसार-सागर में डुबोता है। वह छिद्र युक्त नौका के समान है।

तीसरा प्रत्यक्ष ही पाखण्डी जो स्वयं डूबता है तथा दूसरों को भी डुबोता है। वह पत्थर की नौका के समान है। स्वामीजी ने इस प्रकार प्रश्नकर्ता को आचारनिष्ठ साधक की पहचान का पथ प्रशस्त किया।

२. रोटी के लिए आचार कैसे छोड़ दूँ :

एक बहिन ने आचार्य भिक्षु से आहार के लिए विनम्र निवेदन किया। स्वामीजी उसके घर पधारे। वह आहार बहराने लगी। स्वामीजी ने कहा—लगता है तुम्हें आहार देने के बाद हाथ धोने पड़ेंगे। उस बहिन ने कहा—हाथ तो धोने ही पड़ेंगे। स्वामीजी ने कहा—सचित जल से धोओगी या गर्म पानी से? उस बहिन ने कहा—हाथ गर्म पानी से धोऊंगी। स्वामीजी ने पूछा—पानी कहां गिराओगी? बहिन ने कहा—नाली में गिराऊंगी। तब स्वामीजी ने कहा—पानी नीचे गिरेगा, उससे वायुकायिक जीवों की विराधना होगी। बहिन ने कहा—आप इस बात की चिन्ता छोड़ें। हम सांसारिक प्राणी हैं, इसमें आपको क्या आपत्ति है। यह तो हमारा कार्य है। तब स्वामीजी ने कहा—तुम अपना सांसारिक कार्य नहीं छोड़ सकती, तो मैं रोटी के लिए आचार को कैसे छोड़ सकता हूँ।

(ग) व्यवहार दर्शन—

दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण माध्यम है—व्यवहार। व्यवहार से व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान होती है। स्वामीजी का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार-कौशल अनूठा था। उनके सामने जो भी व्यक्ति आता, वह स्वामीजी के व्यवहार से अभिभूत हो जाता। क्योंकि स्वामीजी दूर से ही आने वाले व्यक्ति की नब्ज पहचान लेते और उनके मनोभावों को ताड़ लेते थे। कुछ ऐसे ही जीवन-प्रसंग प्रस्तुत हैं, इस सन्दर्भ में:—

१. तुम्हारे लिए नरक ही बचा है :

आचार्य भिक्षु देसूरी जा रहे थे। रास्ते में घाणेराव के महाजन मिले। उन्होंने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है? स्वामीजी ने कहा—भीखण। उन्होंने कहा—भीखण! तेरापन्थी, वह तुम हो? तब स्वामीजी ने कहा—हाँ, हूँ तो वही। तब वे उत्तेजित होकर बोले—अहो! अनर्थ हो गया। तुम्हारा मुँह देखने वाला नरक में जाता है। स्वामीजी ने कहा—तुम्हारा मुँह देखने वाला? उन्होंने गर्व के साथ कहा—हमारा मुँह देखने वाला स्वर्ग या मोक्ष में जाता है। स्वामीजी ने सस्मित हास्य बिखेरते हुए कहा—तुम्हारे विश्वास के आधार पर मुझे तो स्वर्ग या मोक्ष ही मिलेगा। तुम्हारे हिस्से में तो नरक ही बचा है।

२. जैसा दिया जाता है वैसा पाया जाता है :

'काफरला' गाँव में साधु गोचरी को गए। एक जाटनी के घर में धोवन पानी था। वह देने को तैयार नहीं हुई। उसका विश्वास था—जैसा दिया जाता है वैसा मिलता है। मैं ऐसा पानी नहीं पी सकती इसलिए नहीं दूंगी। सन्तों ने स्वामीजी को सारी अवगति दी। तब स्वामीजी स्वयं वहां पधारे और बहिन से धोवनपानी देने को कहा। तब बहिन ने कहा— मुझसे धोवन नहीं पिया जाता। तब स्वामीजी ने कहा—गाय को घास डाली जाती है, फिर भी वह दूध देती है। ऐसे ही साधुओं को धोवन पानी देने से लाभ मिलता है। ऐसा सुनते ही उसने धोवन पानी दे दिया।

(घ) विचार दर्शन—

पक्षी को अनंत आकाश में उड़ने के लिए पांखों की अपेक्षा रहती है। पांखें जितनी शक्तिशाली होती हैं, पक्षी उतनी ही ऊंची उड़ान भर सकता है। विचारों की पांखें जितनी सबल और स्फुरित होती हैं व्यक्ति उतनी ही विकास की ऊंची उड़ान भर सकता है। प्रस्तुत है स्वामीजी के संस्मरणों की एक झलक:—

१. आप कैसे जानते हैं?

केलवा में ठाकुर मोखम सिंह जी ने कहा—आप भविष्य का लेखा-जोखा बतलाते हैं। वह किसने देखा है। तब स्वामी जी बोले—तुम्हारे बाप, दादे, परदादे, हुए हैं। तुम उन पीढ़ियों के नाम और उनकी पुरानी बातें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानते हो। उन सबको किसने देखा है? तब ठाकुर सा बोले—हम तो चारणों और भाटों की बहियों के आधार पर जानते हैं। यह सुनकर स्वामी जी ने कहा—भाटों और चारणों को झूठ बोलने का त्याग नहीं है। उनकी लिखी बातों को तुम सच मानते हो। तब ज्ञानी पुरुषों द्वारा कही हुई बात असत्य कैसे हो सकती है। यह सुनकर ठाकुर सा बहुत प्रसन्न हुए।

२. कहीं नया झगड़ा खड़ा न हो जाए :

स्वामीजी के सिरियारी चातुर्मास में पोतियाबन्ध सम्प्रदाय का कपूर जी नाम का साधु था। वहाँ पर कुछ उस सम्प्रदाय की श्राविकाएँ भी थीं। क्षमायाचना दिवस के दिन कपूरजी ने स्वामीजी से कहा—भीखणजी! श्राविकाओं से मेरी कुछ खटपट हो गयी। आज उनसे क्षमायाचना करने जा रहा हूँ। स्वामी जी ने कहा—कपूर जी जा तो रहे हो, कहीं नया झगड़ा खड़ा मत कर लेना? कपूर जी ने कहा—नया झगड़ा क्यों करूंगा। कपूरजी ने वहाँ जाकर कहा—बहिनों तुम ने मेरे साथ बुरा व्यवहार किया, पर मुझे राग-द्वेष नहीं रखना है। तब बहिनों ने कहा—बुरा व्यवहार हमने किया या तुमने किया। इस पर झगड़ा और बढ़ गया। कपूरजी वापस आकर स्वामी जी से बोले—भीखण जी झगड़ा तो उल्टा और बढ़ गया। तब स्मित हास के साथ स्वामीजी ने कहा— मैंने तुम्हें पहले कहा, वही हुआ।

पारदर्शी व्यक्तित्व के महाधनी आचार्य भिक्षु के पास कुछ व्यक्ति उन्हें चर्चा में परास्त करने, कुछ व्यक्ति परीक्षा करने, कुछ दूसरों के द्वारा उकसाए हुए तो कुछ अपनी अस्मिता का प्रदर्शन करने आते थे। ऐसे व्यक्तियों को स्वामीजी अपने सिद्धांत-बल, तर्क-बल और बुद्धि-बल से सन्मार्ग की ओर बढ़ने की प्रेरणा देते थे। और अपनी हंस-मनीषा-प्रज्ञा से उनके विचारों में छाये अंधेरे को उजाला प्रदान करते थे।

भिक्खु दृष्टांत में संगृहीत प्रेरणादायी संस्मरणों का निम्नांकित प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है:—

जैसे एक प्रकार का वर्गीकरण

(१) संघीय साधु साध्वियों से सम्बन्धित संस्मरण	७५
(२) संघीय श्रावक समाज से सम्बन्धित संस्मरण	१७
(३) अन्य सम्प्रदाय के साधु-साध्वियों से सम्बन्धित संस्मरण	७१
(४) अन्य सम्प्रदाय के श्रावकों से सम्बन्धित संस्मरण	१३५
(५) कुछ संस्मरण दान, दया, हिंसा, पुण्य, पाप आदि से सम्बन्धित हैं	१४

दूसरे प्रकार का वर्गीकरण

(१) तत्त्व दर्शन से सम्बन्धित संस्मरण	८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) आचार दर्शन से सम्बन्धित संस्मरण ८८
(३) व्यवहार दर्शन से सम्बन्धित संस्मरण ६९
(४) विचार दर्शन से सम्बन्धित संस्मरण ७५

तीसरा वर्गीकरण

स्थान के आधार पर घटित संस्मरणों का अधोविन्यस्त विभाजन सत्यस्त है:—

स्थान (गांव) का नाम	संस्मरणों की संख्या	स्थान का नाम	संस्मरणों की संख्या
१. पीपाड़	१४	बिलाड़ा	१
२. पाली	१२	पादू	२
३. पुर	६	कांकरोली	१
४. खेरवा	५	गुंदोच	१
५. रीयां	४	चेलावास	१
६. सिरियारी	५	किशनगढ़	१
७. केलवा	३	रिणीही	१
८. नाथद्वारा	४	जोधपुर	१
९. ढूढाड	३	देवगढ़	१
१०. आउवा	२	आमेट	१
११. माधोपुर	२	भीलवाड़ा	१
१२. सोजत	२	जाडण	१
१३. काफरला	२	माठा	१
१४. आगरिया	२	देसूरी	२
१५. खारची	१	बूंदी	२
१६. उदयपुर	१		

आचार्य भिक्षु से सम्बन्धित संस्मरणों का गांव ओर शहरों का विवरण प्राप्त नहीं है।

भिक्खु दृष्टांत को पढ़ने से अनुभव होता है, कि ये संस्मरण थली, मेवाड़, मारवाड़, ढूंठाण में घटित हुए हैं। जहाँ आचार्य भिक्षु ने अपनी ओजस्वी-धर्म-देशना से लोगों को लाभान्वित किया था।

प्रकाशन—इस राजस्थानी भाषा के सर्वोत्तम ग्रन्थ का पहला प्रकाशन सन् १९६० में हुआ।

सम्पादक—जैन विद्या मनीषी श्रीचन्दजी रामपुरिया।

प्रकाशक—जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता।

सुधी पाठकों के हाथों में जैसे ही यह कृति पहुँची, संस्मरणों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढ़कर जनता ने अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त किया। पुनः दूसरे संस्करण की माँग होने लगी। चिर प्रतीक्षा के बाद जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के पुनीत अवसर पर दूसरी बार इस कृति का पुनरावलोकन किया गया आचार्यप्रवर के सान्निध्य में। इस महत्वपूर्ण कृति के प्रवाचक-युग प्रधान आचार्यप्रवर हैं। प्रधान सम्पादक—महामनीषी युवाचार्य प्रवर हैं। सम्पादक हैं मुनित्रय—मुनिश्री मधुकरजी, मुनिश्री मोहनलालजी आमेट, मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी तथा प्रबंध सम्पादक श्रीचंदजी रामपुरिया, कुलपति—जैन विश्व भारती लाडनूं।

यह जय वाङ्मय का २४ वां ग्रन्थ है। इसमें तीन परिशिष्ट भी हैं।

१. हेम संस्मरण ३७ हैं।

२. श्रावक संस्मरण २५ हैं।

३. फुटकर संस्मरण दृष्टांत इसमें स्फुट ३२ संस्मरण हैं।

राजस्थानी भाषा साहित्य को जयाचार्य का अनुपम अवदान है—'भिक्खु दृष्टांत'।

कुशल प्रशासक जयाचार्य ने स्वामीजी के जीवन के केनवास पर उभरे हुए हर घटना प्रसंगों को बड़ी कुशलता के साथ शब्दों में उकेर कर 'भिक्खु दृष्टांत' के रूप में प्रस्तुत किया है। यह भिक्खु-दृष्टांत उनकी सफल-सृजनशीलता, साहित्यक प्रतिभा और कुशल कलात्मकता का परिचायक है। वर्तमान में पारदर्शी व्यक्तित्व के महाधनी युग प्रधान आचार्यप्रवर भिक्षु चेतना वर्ष में जन-जन में भिक्खु-दृष्टांत के माध्यम से नई चेतना स्फुरित करना चाहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालूयशोविलास : विविध संगीतों का संगम

मुनि मधुकर

कालूयशोविलास राजस्थानी भाषा का एक महाकाय महाकाव्य है। इसके चरित्रनायक हैं—स्वनामधन्य परमाराध्य गुरुदेव स्व० श्रीमद् कालूगणी। इसमें उनके उदात्त यशस्वी एवं अविस्मरणीय जीवन को छह उल्लासों में पद्यमय संगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। प्रांजल भाषा, प्राकृतिक चित्रण, हर घटना को पकड़ने की पैनी दृष्टि तथा भक्तिभृत आंतरिक आस्था-भाव से भरे हर पृष्ठ को पढ़ते समय पाठक आनन्द-विभोर हो उठते हैं।

कालूयशोविलास एक विशाल पारावार है। इसका विभिन्न दृष्टि-कोणों से विश्लेषण अपेक्षित है। पर मैं प्रस्तुत निबंध के माध्यम से इसमें प्रयुक्त विविध रागनियों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। वि० संवत् २००० की साल आचार्यप्रवर का चातुर्मास गंगाशहर में था। कालूयशोविलास का सर्वप्रथम परिषद् में वाचन वहीं हुआ। आचार्यवर उस समय २८ वर्ष की पूर्ण तरुण अवस्था में थे। गंगाशहर के पूरे चोखले की परिषद् आचार्यवर की सुमधुर प्रवचन शैली से चुम्बक की तरह खिची हुई आती थी।

संगीत की मुझे बचपन से ही अभिरुचि थी। अतः मेरा भी उससे सीधा लगाव हो गया। उस समय मैं ११ वर्ष का था। यद्यपि साहित्य की गहराई को इतना नहीं समझता था पर मुझे याद है—कालूयशोविलास की पहली गीतिका के "सुणिए सयणां रचित सुवयणां, गुरु व्याख्यान सुरंगो रे, सयाणां।"

इस "ध्रुव-पद" को हम साथी लोग खूब आनन्द से गलियों में गाते हुए जाते थे। आचार्यवर के सुमधुर कंठों से सुने हुए वे गीत आज भी मेरे कंठों के साथी बने हुए हैं।

रचनाकार का परिचय—

इस महाकाव्य के सर्जक हैं—युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी। आप जैन श्वे० तेरापन्थ धर्मसघ के नवम अधिशास्ता हैं। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्रों में राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आपके मौलिक विचारों एवं सूझबूझ की गूंज है। आपकी अनेक कृतियाँ साहित्य जगत् में समादृत हो रही हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप साहित्यकार के साथ-साथ एक उच्चस्तरीय संगीतज्ञ भी हैं। आपको यह कला प्रकृति से विरासत में मिली है। आप मात्र ग्यारह वर्ष की अवस्था में श्रद्धेय कालूगणी के चरणों में दीक्षित हो गए थे। आपका कंठ बड़ा सुमधुर था। सामूहिक गायन में आपका स्वर स्वतंत्र रूप से सुनाई देता था। इसलिए लोग आपको "बांसुरी महाराज" इस विशेषण से उपमित करने लगे थे। प्रारंभ से ही आपके हृदय में हर कला को हस्तगत करने की धुन रहती थी। अतः इस कला के लिए आपको कोई अतिरिक्त अभ्यास नहीं करना पड़ा था। श्रद्धेय कालूगणी को सुन-सुन कर आप इस विषय में निष्णात हो गए थे।

एक बार की घटना है—पूज्य कालूगणी ने गायक संतों को संबोधित कर कहा—"असवारी" की राग सुनाओ। जिसका आदि पद है—राणाजी थांरी देखण धो असवारी। संघ के तत्कालीन प्रमुख गायक संत मुनि कुन्दन-मलजी, मुनि चौथमलजी, मुनि सोहनलालजी, चूरू आदि ने इस पद्य को गाकर सुनाया, पर कालूगणी की परीक्षा में वे उत्तीर्ण नहीं हो सके। पूज्य प्रवर ने मुनि तुलसी को संकेत किया तो आपने गुरुदेव के श्रीमुख से कुछ दिन पूर्व ही सुनी उस राग को ज्यों की त्यों सुनाकर "यह ठीक गाता है" यह प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लिया।

श्रीमज्जयाचार्य द्वारा रचित भगवती की जोड़ की ५०० ढालें, वे रागें अगर कहीं सुरक्षित हैं तो आपके ही कंठ में। इसके अतिरिक्त चंद, रामचरित्र आदि पचासों प्राचीन व्याख्यानों की तथा स्वामीजी की रचनाओं की रागों के आप अधिकृत संगायक हैं। इस प्रकार आपने अनेक रागों को आत्मस्थ कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है।

कालूयशोविलास में आपने उनमें से चुनी हुई रागों का खुलकर प्रयोग किया है। इस महाकाव्य के छह खंड हैं। जिन्हें उल्लास के रूप में प्रस्तुति दी गई है। प्रत्येक उल्लास में १६-१६ ढालें हैं और बीच-बीच में प्रसंगोपात्त पचासों अंतर ढालें हैं। अंत में ५ शिखाएं रखी गई हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में १०१ मूल ढालें तथा ५५ अन्तर ढालें हैं। कुछ रागों का एकाधिकबार भी प्रयोग हुआ है। अतः कुल मिलाकर इसमें लगभग ११३ रागें (देशियां) उपलब्ध हैं। उनमें शास्त्रीय संगीत को भी उचित स्थान मिला है।

आचार्यवर की एक विशेषता है कि जहाँ कहीं भी थोड़ी सी रडकन दिखलाई देती है, उसे तत्काल मिटाने का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि आपकी हर कृति परिमार्जन की इस कसौटी से गुजरती हुई पाठकों तक पहुँचते-पहुँचते स्वर्ण की तरह निखर उठती है। कालूयशोविलास भी इसका अपवाद नहीं है। पुनर्निरीक्षण के अवसर पर आपने अनेक स्थलों को आमूल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूल परिवर्तित कर दिया। कुछ कड़ी रागें भी बदल दीं और उनका स्थान आजकल के बहुचर्चित कुछ लोक गीतों ने ले लिया।

कालूयशोविलास की भाषा राजस्थानी है अतः इसमें राजस्थानी लोक गीतों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। उनमें कुछ ये हैं:—

१. कसुंभो	८. लावणी
२. छल्लो	९. मोमल
३. तेजो	१०. होक्को
४. पीपली	११. सपनो
५. ओल्यूं	१२. माढ़
६. केवड़ों	१३. गणगोर
७. बधावो	

लोकगीतों की यह विशेषता है कि ये उचित समय, उचित अवसर और उचित प्रसंग पर गाए जाएं तभी सटीक बैठते हैं।

आचार्यप्रवर इस कला में अत्यन्त दक्ष हैं। कालूयशोविलास में इस दक्षता के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं—"कसुंभो" इस गीत को मंगल प्रसंगों पर गाया जाता है।

कालूयशोविलास का मंगल प्रारम्भ इसी राग से होता है। मरुस्थल का साहित्य और आलंकारिक वर्णन इस राग का माध्यम पाकर कितना सरस हो उठा है; पढ़िए कुछ पद्य—

"रयणी रेणुकणां शशिकिरणां चलकै जाणक चांदी रे।
मन हरणी धरणी, यदि न हुवै अति आतप अरु आंधी रे।"

उ० १, ढा० १, गा० ८

रात्रि में धोरों के रेणु कणों पर चंद्र किरणें पड़ती हैं। उन दोनों का योग देखकर कवि कहता है, ऐसा लगता है—मानो चांदी चमक रही हो। अगर यहां पर ग्रीष्म ऋतु का आतप और आंधियाँ नहीं होती तो इसकी मनोहरता का क्या कहना। आगे इस क्षेत्र की अनेक विशेषताएं बतलाते हुए एक अनोखे स्थल के रूप में चित्रित करते हुए कहते हैं यह तो "स्वर्णस्थल" है, इसे "मरुस्थल" कहना अच्छा नहीं लगता।

"इसै अनोखै स्थल रो नाम, मरुस्थल नहीं सुहावै रे।
स्वर्ण-स्थल भल भावै भाखत, कुण सी बाधा आवै रे॥"

उ० १, ढा० १/१३

पंचमाचार्य श्रीमद् मघवागणी के दिवंगत होने के बाद मुनि कालू का विरही मन क्या-क्या चिंतन करता है, इसका चित्रण एक विरह का राग—

"मूक म्हांरो केडलो हूं ऊभी छूं हजूर" में कितना सटीक लगता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनड़ो लाग्यो रे, चितड़ो लाग्यो रे,
खिण-खिण समरुं गुरु ! थांरो उपगार रे,
किया विसराऊं म्हारां हिवडै रा हार ! मनड़ो····
० नेहड़लां री क्यारी रो म्हांरी रो के आधार रै ?
सूक्यो सोतो जो इकलोतो सूनो सो संसार
० वज्राहत हूँ, मर्माहत हूँ पीड़ा रो नहिं पार रे
मैं ही जाणूं म्हांरै मन री या जाणै करतार
० शासन देवत ! आ पिण केवत नहिं निबड़ी निस्सार रे
एक पक्खी प्रीतडी रो कच्चो कारोबार
० पीऊ-पीऊ करै बो पपीहो पुकार रे
मेहडलै नै हुई न होवै फिकर लिगार
० मोटा मिनख निहारै नांही पाछलै रो प्यार रे
मोख जातां वीर छोड़या गोयमजी ने लार····
मनड़ो·····

उ० १, ढाल० ५/गा० ४, १४, १५, १६, १७

श्रद्धेय कालूगणी के पदारोहण के लिए भाद्रव पूर्णिमा का दिन निश्चित किया गया। और आपका जन्म है—फाल्गुन शुक्ला द्वितीया। इस तथ्य को चंद्रमा के रूप में सुप्रसिद्ध चंद व्याख्यान की एक राग—"भूमीश्वर अलवेश्वर कानन फेरे तुषार" में कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

"भाद्रवि पूनम भावी, भावी-प्रगति-प्रतीक।
नियता पूज्य पट्टोत्सवे, मंगलीक निर्भीक॥
दुतिया स्यूं प्रारंभी, लंबी जिण री लीक।
सो साबत अब ऊगसी, रोहिणी धव रमणीक॥

उ० १, ढाल १२, गा० १०,११

पदारोहण वि० सं० १९६६ की साल हुआ। दो छह को "छक्कं छक्का" इस मुहावरे के साथ कितना संगत बिठाया गया है—

करसी राज अचक्कां, छक्कं छक्का देव।
तिण स्यूं दो छक्का मिल्या, छयांसट्ठे स्वयंमेव॥

उ० १, ढा० १२, गा० ३१

मातुश्री छोगांजी का चातुर्मास बीकानेर था। आप पदारोहण के बाद अपने पुत्र (कालूगणी) के दर्शन के लिए सुजानगढ़ पहुँचती हैं। वह प्रसंग "आज आणंदा रे" इस सरस राग में कितना मधुर लगता है—

सूं सूं शीतलता हुई, हरस हिये असमाण।
मोद न मावै चित्त में, लोयण अमिय भराण॥
अनिमिष नयणां निरखती, जाणक अनिमिष-रूप।
अद्भुत अनुभवती रती, चिन्तै चित अनुरूप॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमित प्रेम-धन ऊमड़यो, रोमांचित तनु संघ ।
जग में जननी जात रो, है अभिहड़ सम्बन्ध ।।
उ० १, ढा० १४, गा० १२,१३,१७

आचार्यश्री कालूगणी लाडनूं पधारते हैं। बालक तुलसी (आचार्य तुलसी) आपका मुखारविंद देखते हैं, तो भंवरे की तरह झूम उठते हैं। उस समय का चित्रण "केवडो" इस राग में कितना सार्थक है—

"म्हांरै गुरुवर रो मुखड़ो है खिलतो फूल गुलाब सो ।
मुखड़ै री छवि मनहार, मुखड़ो शशांक सोम्याकार ।।
मुखड़ो अमंद अविकार.....
मंजु मनोहर मोहन मूर्ति, स्फूर्ती दिव्य दिदार ।
पूंजीभूत पुण्य मनु पलकै, भलकै ललित लिलाड़ ।।
गुरु-वदनारविंद पर झूमै, मुझ मन-अलि अनुहार ।
अनिमिष-नयन निहारै सोत्सुक, सम्मुख बारम्बार ।।"
उ० ३, ढा० ३, गा० २२,२४

वि० सं० १९९० सुजानगढ़ में जोधपुर के श्रावकों द्वारा मारवाड़ पधारने के लिए भाव-भरा निवेदन "मरुधरा की पुकार" के रूप में प्रस्तुत हुआ है—"घड़ि दोय आवतां पलक इक आवतां" इस लोकगीत में—

"गुरु घड़ि-घड़ि पलक-पलक निज हक लख,
खड़ि-खड़ि बाट निहारै हो अति दुख भारै हो,
गणिवर ! विरहवती मरु भूमि का,
मोनै "मरु" "मरु" कह बतलावै हो, कइ दिल दावै हो,
गणिवर ! कह मरुदेश-मरीचिका ।
निरजल थल कहि गावै हो मन सुख पावै हो
गणिवर ! जदपि वहै जल-वीचिका
कइ जंगल कहि-कहि जावै हो, जो घबरावै हो
गणिवर ! नाम निसुण मरुदेश रो ।
म्हांरो दिलड़ो खूब दुखावै हो, किल बिललावै हो,
गणिवर ! करुण दृश्य लख क्लेश रो ।"
उ० ४, ढा० १, गा० २२,२३

इसी प्रकार "भांग" की देशी—पिओ नीं परदेशी.....में मेवाड़ी लोगों की प्रार्थना में मेवाड़ का अनूठा चित्रण हुआ है—

"पूज्य परमेश ! पधारो देश मेवाडां
तारो अजि तारणहार
थांरो इक मात्र आधार ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

० ऊँचा ऊँचा शिखरां स्यूं शिखरी सुहाणां
शिखरयां स्यूं हरित अपार ।
झर-झर झरता निर्झरणा, उज्ज्वल वरणां,
किरणां दूंधां री धार ।।
• बांगां-बांगां बड़भागां, कोयलिया कूजै,
गूंजै गहूर-बिच शेर ।
० लम्बी खोगलां नाला बाहला नै खाला,
नदियां रो नहीं निवेर ।।
० वारी बिन सींचे, वारी सूकै विचारी,
समझो गुरु ! आप विचार ।
० वारी वारिज इकतारी, थांरी नै म्हांरी,
न करो अब देर लिगार ।।

उ० ४, ढा० ९, गा० ९,१०,१३

इसी प्रकार एक भजन—"हरि गुण गायलै रे" की देशी में परमाराध्य कालूगणी के हाथ के व्रण का आखों देखा हाल कितना सही रूप में प्रस्तुत हुआ है—

"भयंकर व्रण स्यूं रे, जकड़यो स्वाम शरीर,
अटल निज प्रण स्यूं रे, धीर वीर गंभीर ।
असर नहीं उपचार रो रे, झाल्यो जिद् हमीर ।।
भजे वाम कर वामता रे, सझे नहीं उपशम ।
पीड़-अर्जणी तर्जणी रे, सघन गर्जणी घाम ।।
छोटे कद में दीखतो रे, जावद में जो रूप ।
लाज-विहूणो आज तो रे, बण्यो घणो विद्रूप ।।
बांधी ऊपर लूपरी रे, भरी पीप स्यू पूर ।
कुलै कुटिल विष विषमता रे, प्रसरी पीड़ प्रचूर ।।
चबको अति अबखो चलै रे, सबको दिल बेचैन ।
उच्छृंखल खल आग्रही रे, सुणै न मानै ऐन ।।"

उ० ५, ढा० १३, गा० १३-१६

दूसरा चित्रण देखिये प्राचीन चौबीसी की देशी—"कुंथु जिनवर रे" में—

"आज म्हांरै गुरुवर रो लागै अंग अडोलो ।
सदा चुस्त सो रहतो चेहरो सब विध ओलो दोलो ।।
कुण जाणी व्रण वेदन बेरण दारुण रूप बणासी,
सारै तन में यूं छिन-छिन में अपणो रोब जमासी ।
ओ उणिहारो रे जाबक पड़ग्यो धोलो ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूर पंचमी-समिती जातां आई है निबलाई,
चलता लंबी-लंबी डग भर अब काया कुमलाई ।
दिल बिलखावै रे खावै हियो हिलोलो ।।"

उ० ६, ढा० २, गा० ८,९

'ओल्यूं' राग राजस्थान की प्रसिद्ध राग है। इस राग में निबद्ध युवाचार्य पद की भूमिका के रूप में हुआ गुरु-शिष्य संवाद पाठक को एक नई दुनिया में ले जाता है तथा समर्पण और वात्सल्य का अलौकिक उदाहरण दिखलाता है। उसके कुछ बोल हैं—

"हां रे शासण नायक री
मधुरी-मधुरी बोली प्यारी लागे रे, तुलसी !
हा रे बोध विधायक री
सेवा करतां सुप्त भावना जागै रे, तुलसी !

० आज तनै मैं स्थिर मना,
तेडचो है एकांते भार भुलाऊं रे, तुलसी !
भैक्षव शासन री मता,
ममता, क्षमता लै सारी संभलाऊं रे, तुलसी !

० सुणतो रहग्यो स्तब्ध सो,
एक बार तो सहसा सद्गुरु-वाणी रे, तुलसी !
आज अचानक आ स्थिति,
इंयां सामनै आसी कबे न जाणी रे, तुलसी !"

उ० ६, ढा० ६, गा० १६,१७

विरह की व्यथा बड़ी विकट होती है। आचार्य प्रवर कालूगणी जब स्वर्गवासी हो जाते हैं उस समय पूरा संघ व्याकुल सा बन जाता है। युवाचार्य श्री तुलसी की मानसिक स्थिति का तो कहना ही क्या। उस स्थिति का हू-बहू चित्र देखने के लिए प्रस्तुत हैं कुछ भाव प्रधान पद्य 'चंद चरित्र' की विरह व्यक्त करने वाली राग "हो पिउ पंखीड़ा" में—

० हो गुरु गुण गेहरा ! आशा-तरु अणपार जो,
लड़ालुम्ब लहराया हृदय अमारडै रे लोय ।
हो म्हांरा शिर-सेहरा । क्यूं ओ तरुण तुषार जो,
आज अनूठो बूठो विरह तुम्हार डै रे लोय ।।

० हो गुरु गुण गेहरा । किण आगल कहुं बात जो,
कुण सुणसी अब म्हारो कहण कृपा-निधे रे लोय ।
हो म्हांरा शिर सेहरा ! निशिदिन पुलकित गात जो,
रहतो सम्मद लहतो नित पद सन्निधे रे लोय ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

० हो गुरु-गुण गेहरा ! "तुलसी" "तुलसी" नाम जो,
कुण बतलासी किण स्यूं करस्यूं मंत्रणा रे लोय ।
हो म्हांरा शिर सेहरा ! ओ गुरुतर गणधाम जो,
किण विध होसी नव निर्माण, नियंत्रणां रे लोय ।।"

उ० ६, ढा० १३, गा० १८,१९,३२

कालूयशोविलास को गन्ने की उपमा दी जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। गन्ने को जहां कहीं से चूसो मधुर ही लगेगा। वही स्थिति इसकी है। छठे उल्लास को तो इसका हृदय कहा जा सकता है। मुझे कठिनाई अनुभव हो रही है कि मैं इस छोटे से निबंध में किस प्रसंग को लूँ और किसको छोड़ूं।

अंत में इस महाकाव्य में प्रयुक्त देशियों की सूची ही प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरा संगीत-प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि वे अगर इनका पूरा रसास्वादन करना चाहते हैं तो एक बार आचार्यश्री के कण्ठों से इन्हें अवश्य सुनें।

प्रयुक्त राग का आदि पद—	कालूयशोविलास पृष्ठ
१. आई थी पडोसण कह गई बात	२६६
२. आज आनंदा रे	४६
३. आज म्हारै स्वामीजी रो (तेजो)	३९६
४. आदिनाथ मेरे आंगण आया	१०२
५. आवत मेरी गलियन में गिरधारी	२३४
६. इक्षु रस हेतो रे ज्यांरा पाका खेतो रे	२२४
७. उभय मेष तिहां आहुड़िया	९२
८. ऐसो जादुपति	९५
९. ओल्यूं	३४२
१०. कर्मण की रेखा न्यारी	२९९
११. कांय न मांगा कांय न मांगा	११
१२. काली काली काजलियै री रेखजी	२६३
१३. कुंवर ! थांस्यू मन लागों	९९
१४. कुंथु जिनवर रे	३२७
१५. केसर वरणो हो काढ़ कुसुम्भो	१९३
१६. कोरो कलशो जल भरयो कांइ धरती शोष्यां जाय	२०
१७. खम्मा खम्मा खम्मा हो कुंवर अजमाल रा	१९७
१८. खिम्यावंत जोय भगवंत रो जी ज्ञान	३१८
१९. खोटो लालचियो (दुलजी छोटो सो)	१७२
२०. गहिरो जी फूल गुलाब से	२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. गुरांजी थे मनै गोडै न राख्यो ३८०
२२. घड़ी दोय आवतां पलक इक जांवतां २१४
२३. चंडाली चौकड़िया हो १८६
२४. चंदन चौक्यां में सरस वखांण १८३
२५. चामड़ा री पूतली भजन कर ३०१
२६. चालो बाबाजी घर आंपणै ३४५
२७. चालो सहेल्या आंपा भैरू नै मनास्या अै १५२
२८. चूरू की चरचा २३८
२९. छल्ला मैं नहीं छोडूं २१८
३०. छेड़ो नांजी नांजी हो नांजी नांजी ३१४
३१. जगदंबा गुरु अंबा नी गुंण भंभा बाजै २४१
३२. जय जय नंदा, जय जय भद्दा ३५२
३३. जग बाल्हा जग बाल्हा जिनेन्द्र पधारिया २५४
३४. जय बोलो नेम जिनेश्वर की १५१
३५. जय जस गणपति वन में १३
३६. जय जय जय जय सांवरिया नै नमूं रे नमूं ९
३७. ज्यां सिर सोवतां रे लोय ३६८
३८. जिण घर ज्याजै है नींदड़ली ११४
३९. जिन शासण में धुर स्यूं आदि जिणंद कै ५८
४०. जोवै विमलपुरी ना वासी रै २३२
४१. जंबू ! कह्यौ मान लै रे जाया ९०
४२. झड़ाकै छोड़ी हो बाला १६५
४३. डाम मूंजादिक नी डोरी ९५
४४. डेरा आछा बाग में रे २७७
४५. तावड़ा धीमो सो तपजै ९३
४६. तू तो पल पल राम समर रे ७०
४७. दारू दाखां रो २१३
४८. दुनिया राम नहीं जाणै २७५
४९. देखो रे भाई ! कलजुग आयो १७३
५०. धन धन भिक्षु स्वांम दीपाई दान दया १०१
५१. धीठा में धींठ मैं कहा बिगाड़ा तेरा ११८
५२. नाहरगढ़ ले चालो बन्ना सा ३२५
५३. निमित्त नहीं भाखै गुरु ज्ञानी १२२
५४. नींदडली हो बेरण होय रही १६९
५५. पनजी मूंढै बोल २९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. पायल वाली पद्मनी १३८
५७. पिउ पदमण नै पूछै जी ३०६
५८. पिओ नी परदेशी २४५
५९. प्रीतम जी हिवै तुम वेग पधारो ११०
६०. पुण्यसार सुख भोगवै २२
६१. बगीचीं निंबूवां की १०५
६२. बधज्यो रे चेजारा घारी बेल १७८
६३. बाह्यौ गुलाबशाही केवड़ो १४४
६४. बोले बालक बोलड़ा रे १०७
६५. भजिये निशदिन कालूगणिंद ९१
६६. भलो दिन ऊग्यो २९३
६७. भवन सुन्दरी जय सुन्दरी २४९
६८. भविकां नृपनी बेटी गुण नी पेटी २५९
६९. भंविका मिथुन ऊपर दृष्टंत कहै जिन ३४
७०. भावै भावना ५९
७१. भूमीश्वर अलवेश्वर कानन फेरै तुषार ४२
७२. मनवा नांय विचारी रे २४३
७३. महिलां रो मेवासी हो लसकरियो १३२
७४. माढ ३८८
७५. मुनिवर विहरण पांगुर्या सखि २९०
७६. मुनि मन चलियो रे तू घेर २८
७७. मुनिवर ने आपो झूंपड़ी आंपारी १८१
७८. मूक म्हारो केडलो मैं ऊभी हूँ हजूर रे १८
७९. म्हांनै चाकर राखोजी २७८
८०. म्हांरा लाडला जंवाई कुत्ती पाल लीज्यो जी १६१
८१. म्हांरी रस सेलड़िया आदी जिनेसर कीधो पारणो ६६
८२. म्हांरै रे पिछोकड बाह्यौ रे कसुम्बो ४
८३. म्हांरो घणा मोल रो माणकियो कुण पापी लेग्यो रे ३६३
८४. रच रह्यौ ज्ञान ज चरचा स्यूं १५०
८५. राख नां रमकड़ा ३९३
८६. राजा राणी रंग थी रे खेले अनुपम खेल १४०
८७. रात रा अमला में होको गहरो गूंजे हो राज २८४
८८. राम रट लै रे प्राणी १८०
८९. रूडै चंद निहालै रे नवरंग १४४
९०. रूठोड़ा शिव शंकर म्हारै घरे पधारो जी ११९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९१. लक्षमण राम स्यू विनवै ४०२
९२. वारू है साधां री वाणी १४८
९३. वीर पधार्‌या राजगृही में २२१
९४. वीरमती कहै चंद ने ४०
९५. वीरमती तरू अंब नै कांई दीधो कंब प्रहार २५६
९६. वीर विराज रह्या २३८
९७. शहर में शहर में वैरागी संयम आदरै २२६
९८. सपना रे वेरी भंवर मिला दे रे ३११
९९. सभापति हमें मिले बुधवान २८६
१००. सरणाट कुचामण बहग्यो २८४
१०१. सहियां गाओ अे बधावो २३०
१०२. सायर लहर स्यूं जाणैजी ५१
१०३. साधु श्रावक व्रत पाल नै रे ८०
१०४. साधु श्रावक रतनां री माला ८५
१०५. सीपइया तेरी सांवरी सूरत पर वारी १११
१०६. सुखपाल सिंहासण १०३
१०७. सुगणा खमाविए तज खार ३८४
१०८. सुमति नाथ सुमता पथ दाता ८५
१०९. सुहाग मांगण आई २९९
११०. हरी गुण गाय लै रे ३१२
१११. हाँ रै हूँ तो इचरज पानी स्वामी बचने ७५
११२. हेम ऋषि भजिए सदा रे ७२
११३. हो पिउ पंखीड़ा ३६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुदर्शनचरित में सुदर्शन का चरित्र-चित्रण

☐ सुश्री निरंजना जैन

भारतीय साहित्य में शिवत्व की भावना को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। जैन साहित्य-निर्माण लौकिक यश और सम्पदा प्राप्ति के लिये न किया जाकर आत्मशुद्धि, सामाजिक जागरण और लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर किया जाता रहा है। भारतीय काव्याचार्य काव्य या साहित्य को सोद्देश्य मानते हैं। काव्याचार्य भामह काव्य-रचना का उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति, समस्त कलाओं में निपुणता एवं कीर्ति तथा प्रीति तथा आनन्दोपलब्धि बताते हैं।[1] मम्मट ने काव्य के छह प्रयोजनों का उल्लेख किया है—

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृत्तये कांतासम्मितयोपदेश युजे ।।"

जैन साहित्य का उद्भव धार्मिक क्रान्ति पर आधारित है। इसलिए प्रस्तुत चरित काव्य सुदर्शन चरित जो राजस्थानी भाषा का सर्वप्रभावी काव्य है इसके रचयिता तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु, जो राजस्थान के प्रसिद्ध साहित्यकारों में शिरोमणि हैं, ने अपनी प्रसिद्ध कृति सुदर्शनचरित[3] के उद्देश्य में धार्मिक तत्त्व को प्रधानता दी है। प्रस्तुत काव्य के महात्म्य को प्रख्यापित किया गया है—सुदर्शन मुनि के चरित्र के माध्यम से। सुदर्शन मुनि की कथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश ग्रंथों में समान रूप से पायी जाती है। आचार्य भिक्षु ने 'सुदर्शन चरित्र' में से सुदर्शन के जीवन चरित्र को सरस और सरल राजस्थानी पद्यों में व्याख्यापित किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ शील एवं वैराग्य का उत्कृष्ट काव्य है। इसमें शील, संयम, तप, पुण्य और पाप के रहस्य के सूक्ष्म विवेचन के साथ मानव जीवन और प्रकृति के यथार्थ धरातल को काव्यकार अपने प्रधान पात्र सुदर्शन के चरित्र की विशालता में प्रकट करता है। काव्यशास्त्र या नाट्यशास्त्र में नायक का अर्थ प्रधान पात्र होता है। नयति इति नायकः—जो व्यक्ति कथानक को मुख्य उद्देश्य या कथानक की ओर ले चलता है उसे नायक कहते हैं।

शील की दृष्टि से नायक के चार प्रकार कहे गए हैं—धीरोदात्त धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशांत।[4]

जैन साहित्य में जो नायक आये हैं, उनके दो रूप हैं—मूर्त और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमूर्त्त। मूर्त्त नायक मानव हैं, अमूर्त्त नायक मनोवृति विशेष। मूर्त्त नायक साधारण मानव कम असाधारण मानव अधिक हैं। यह असाधारणता आरोपित नहीं, अर्जित है। अपने पुरुषार्थ, शक्ति और साधना के बल पर ही ये साधारण मानव विशिष्ट श्रेणी में पहुँच जाते हैं। ये पात्र सामान्यतः संस्कारवश या किसी निमित्त कारण से विरक्त हो जाते हैं और प्रव्रज्या अंगीकार कर लेते हैं। दीक्षित होने के बाद पूर्वजन्म के कर्म उदित होकर कभी उपसर्ग बनकर, कभी परीषह बनकर सामने आते हैं पर ये अपनी साधना से विचलित नहीं होते। परीक्षा के कठोर आघात इनकी आत्मा को और अधिक मजबूत तथा इनकी साधना को और अधिक तेजस्वी बना देते हैं। प्रतिनायक परास्त होते हैं पर अन्त तक दुष्ट बनकर नहीं रहते। उनके जीवन में भी परिवर्तन आता है। और वे नायक के व्यक्तित्व की प्रेरक किरण का स्पर्श पाकर साधना पथ पर चल पड़ते हैं। भारतीय साहित्य के मूल में आदर्शवादिता है। वह संघर्ष में नहीं मंगल में विश्वास करता है। यहाँ नायक का अन्त दुःखद मृत्यु में नहीं होता। उसे कथा के अन्त में आध्यात्मिक वैभव से सम्पन्न अनन्तबल, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्त सौन्दर्य का धारक बताया गया है।

सुदर्शन मुनि जैन परंपरा में महावीर के पांचवें अन्तकृत केवली माने गए हैं। इनकी यह विशेषता है कि वे घोर तपस्या कर एवं नाना उपसर्गों को सहनकर उसी भव में केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। णमोकार मंत्र के प्रभाव से गोपाल बालक अगले जन्म में सेठ सुदर्शन के रूप में जन्मा। खूब वैभव मिला और घोर यातनाएं भी सहनी पड़ीं। किन्तु वे न तो वैभव और भोगविलास में रमे, न क्लेश और पीड़ाओं में विगलित हुए। उन्होंने आत्मसंयम के उच्चतम आदर्श के फलस्वरूप वीतरागता और सर्वज्ञता पायी।

शास्त्रीय काव्यों की परंपरा में नायक को सफल नायकत्व की कसौटी पर कसा गया है। दशरूपककार ने नायक के गुणों का उल्लेख किया है—

'नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़वंश स्थिरो युवा॥
बुध्युत्साह स्मृति प्रज्ञा कलामान समन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्चधार्मिकः॥'[1]

इस चरितकाव्य का नायक सुदर्शन धीरोदात्त नायक के लक्षणों से युक्त पाया गया है। वह आद्योपांत, अतिगंभीर, क्रोध-शोक-सुख-दुख में प्रकृतिस्थ, क्षमाशील, दृढ़व्रती एवं निरभिमानी पाया गया है। जो उसे धीरोदात्त नायक की कोटि में ला खड़ा करते हैं।

चरितकाव्य का नायक मोक्ष पुरुषार्थ को प्राप्त करने का प्रयास करता है, उसकी समस्त भावशक्ति अपने लक्ष्य की ओर प्रवृत्त रहती है। नायक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में जीता हुआ आदर्शवाद को प्रस्थापित करक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन मूल्यों की पृष्ठभूमि पर अपने चारित्र का निर्माण करता पाया गया है। वह त्यागी वीर, कुलीन, सुन्दर, रूप तथा यौवन से सम्पन्न, कार्यों को करने में निपुण, जनसमुदाय को आकृष्ट करनेवाला, तेज, चतुर और शील आदि गुणों से युक्त पाया गया है। धार्मिक जीवन की सर्वोत्कृष्टता उसके जीवन में प्रस्फुटित हुई है।

सुदर्शन-श्रावक—चम्पा नाम की नगरी में धात्रीवाहन राजा उस नगरी के अधिपति थे। उनकी पटरानी का नाम था अभया (अभिया)। उसी नगरी में ऋषभदास नामका बारहव्रतधारी श्रावक रहता था। उसकी जिनमती नाम की भार्या थी। वह भी श्राविका थी। उसने एक पुत्र को जन्म दिया और उसका नाम सुदर्शन रखा। यथा नाम यथा गुण वाला था सुदर्शन। रूप और सौन्दर्य का भण्डार था 'रूप लक्षण गुण तेहनां भला रे व्यंजनादिक सर्व विशाल रे।'[६] सभी के नेत्रों को प्रियकारी था। उसके अत्यन्त गुणवती मनोरमा नाम की भार्या थी। पिता के धार्मिक संस्कारों के प्रभाव से वह भी बारहव्रती श्रावक बना। 'सेठ सुदर्शन श्रावक तणा रे बारे व्रत पाले रूडी रीत रे। देवादिक रो डिगायो डिगे नहीं रे, तिणरी लोकां में घणी प्रतीत रे।'[७]

पत्नी ने भी बारह व्रत ग्रहण कर लिये। 'पाले श्रावक नां व्रत बार, पुन्न जोगे जोड़ी मिली।'[८]

सुदर्शन रुप, मेधा एवं गुणों से आकीर्ण था 'हुवो बहोत्तर कलानों जाण रे।'[९] तिण में पिण सगला गुण छे विशाल रे।'[१०] वह आचरण के साथ रूप से अनुपम था, उसके अद्भुत रूप ने मित्र-पत्नी कपिला रानी अभया एवं वैश्या को कामान्ध बना दिया, वे कामतृप्ति के लिए उससे प्रार्थना भी करती हैं। रूप देख विरहणी थई वांछे सुदर्शन सूं भोगी।[११] 'राणी रूप देख मूर्च्छित हुई करवा लागी मन में विचार रे। एहवा पुरुष थकी सुख भोगवे, धिन धिन छ तेह नार रे।'[१२] पर श्रेष्ठी पुत्र सुदर्शन अपनी अविचल व्रत निष्ठा से उन्हें असफल कर देता है 'ते पर त्रिया मूल वांछे नहीं रे, तिणरा दृढ़ घणा परिणाम।'[१३]

दृढ़धर्मी, दृढ़व्रती सुदर्शन कामासक्ता बनी कपिला, अभया एवं वेश्या के द्वारा नानाविध प्रलोभित किया जाता है, वे अपकीर्ति की धमकी देती हैं, अपने को मरण शय्या तक भी ले जाती हैं पर ज्ञानी कहते हैं जो अपने बल, स्थाम, श्रद्धा, आरोग्य को देखकर तथा क्षेत्र और काल को जानकर उसके अनुसार आत्मा को धर्म-कर्म में नियोजित करता है, वह स्खलित या अनाचारी नहीं होता।[१४] स्वामीजी ने सुदर्शन की शील निष्ठा का उल्लेख करते हुए ही कहा है—

'पूर्व थकी पश्चिम दिशे, कदाच ऊगे भाण।
तो पिण सेठजी शील थी न चले, जो जावे निज प्राण।'[१५]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शूरवीर—कर्म सेना को ध्वस्त करने में सुदर्शन शूरवीर सिद्ध हुए। उनके जीवन में अधिकांश उपसर्ग स्त्रीजाति ने पैदा किया। उपसर्गों से घबराए नहीं अपितु अपने शक्ति तेज से उन्हें परास्त कर दिया। जितने तीव्र बाहरी उपसर्ग थे उतने ही प्रखर उनके आत्मिक संकल्प थे। पहली बार के उपसर्ग के समय उनका संकल्प बल जाग उठा—

जो, इण उपसर्ग थी ऊबरूं, व्रत रहे कुसले खेम।
तो शील छे म्हारे सर्वथा, जावजीव लगे नेम॥[१६]

उनका संकल्प शुद्ध और पवित्र था इसलिए उनका स्वीकृत अभिग्रह पूरा हो जाता 'सूर वीर सुद्ध परिणाम सूं, त्यारी कदेय न पलटे बाण।'[१७] इसी प्रकार दूसरे तीसरे उपसर्ग में भी वे अपराजेय बन गए।

ब्रह्मचारी—ब्रह्मचारी और ब्रह्मचर्य की महिमा का बड़ा हृदयग्राही वर्णन जैनागमों में मिलता है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को ३२ उपमाओं से उपमित किया गया है। सुदर्शन की जीवन घटना इस बात का प्रमाण है कि ब्रह्मचारी को अपने व्रत में कितना दृढ़ होना चाहिए। यह उदाहरण इस बोध के लिए है कि अनायास शीलखंडन का विकट प्रसंग उपस्थित हो जाय तो भी ब्रह्मचारी मोहग्रस्त होकर विचलित न हो। ऐसे सब प्रसंगों के अवसर पर भी वह असीम मनोबल का परिचय दे और कामराग को पूर्ण रूप से जीते। ऐसे ही प्रसंग पर सुदर्शन का मनोबल प्रकट होता है—

"मैं चारित्र न जाण्यो नार नो, तिण सूं आय फस्यो छूं एह।
पिण शील न खंडूं मांहरों, आ करे अनेक उपाय।"
जो वस छै म्हारी आत्मा तो न सके कोई चलाय।[१६]

सचमुच 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'—मन पर काबू हो जाय तो वाणी और कर्म आसानी से वशीभूत हो जाते हैं। सुदर्शन शीलस्खलन के विभिन्न प्रसंगों में ब्रह्मचर्य व्रत के प्रति अडिग देखे गए, ब्रह्मचर्य की स्तुति में अपने को भावित कर आत्मा का उद्धार करते हैं 'शील व्रत हो व्रतां में प्रधान।'[१९] शीलव्रत की दृढता, ब्रह्मचर्य के प्रभाव से शूली भी उनके लिए आनन्द का सिंहासन बन जाती है। ब्रह्मचर्य की निष्ठा से ही वे बोल पड़ते हैं—'जो आवे इन्द्र नीं अप्सरा तो पिण नही छोडूं धर्म नी टेक।'[२०]

उत्कृष्ट त्यागी वैरागी—'त्रिया मदन तलावड़ी, डूबो बहु संसार।
केइक उत्तम उबर्या सदगुरु वचन संभार॥[२१]

सुदर्शन उत्तम प्राणी था। धर्मघोष मुनि से धर्मकथा सुनकर उसने संसार के वास्तविक रूप को जानकर निश्चय किया कि जरा और मरण रुपी अग्नि से जलते हुए इस संसार से मैं अपनी आत्मा का उद्धार करूँगा।[२२] "अब पांच महाव्रत आदरूं, छांडी परिग्रह तास। बारे भेदे तप तपूं ज्यूं पामूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिवपुर वास।"[२३] कामभोग दुःखावह हैं। उनका फल बड़ा कटु होता है। वस्तुतः जब मनुष्य दैविक और मानुषिक भोगों से विरक्त हो जाता है तब वह अन्दर और बाहर के अनेकविध ममत्व को उसी प्रकार छोड़ देता है जिस तरह महानाग केंचुली को। जैसे कपड़े में लगी हुई रेणु-रज को झाड़ दिया जाता है, उसी प्रकार वह ऋद्ध, वित्त, मित्र, पुत्र, स्त्री और सम्बन्धी जनों के मोह को छिटका कर निस्पृह हो जाता है। जब मनुष्य निस्पृह होता है तब मुण्ड हो अणगार वृत्ति को धारण करता है। जब मनुष्य मुण्ड हो अनगार वृत्ति को धारण करता है, तब वह उत्कृष्ट संयम और अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है। सुदर्शन शीलव्रत की रक्षा के लिए अपने वज्र संकल्प के आधार पर विरक्त हो मुनि बनता है 'इण उपसर्ग थी हूं बचूं, तो लेसूं संजम भार।'[२४] उत्कृष्ट तप तपकर वह कर्म श्रंखला को कमजोर बनाता है।

क्षमावान—सहना आत्मधर्म है। आत्मविजेता उत्पन्न कष्टों को अपने कृत कर्मों का परिणाम मानकर सहन कर लेता है, किसी दूसरे पर दोषारोपण नहीं करता। अभिया रानी काम की निष्फलता पर सुदर्शन को प्रताड़ित करती है, फांसी के फंदे तक पहुँचा देती है पर सुदर्शन अपने आत्मधर्म को नहीं त्यागता। वह यही चिंतन करता है—'म्हारे अशुभ कर्म उदे हुआ, हिवे काची आदरूं केम।[२५] कर्म तणी गति बांकड़ी रे, ते भोगावणी मुझे नेठ।'[२६] ब्रह्मचर्य के प्रभाव से सेठ सुदर्शन शीलवान रूप में प्रकट होता है तो राजा क्रोधित हो अभिया रानी को मारने की सोचता है, उस समय सुदर्शन प्रार्थना के स्वर में कहता है—'तो अभिया राणी ने धाय री, आप दोयां री मत करो घात हो लाल।.....यां तो कियो छे म्हांसू उपगार हो लाल।'[२७] राजा के द्वारा भी अकृत किया गया पर सुदर्शन ने क्षमा का दान देकर अपनी कीर्ति बढ़ाई। अभिया रानी अपने दुष्ट पापाचरण का पर्दाफाश होने पर लज्जित एवं क्रोधित हो आत्माघात कर बैठी, मरकर व्यन्तरी बनी। व्यंतरी योनी में भी सेठ सुदर्शन का पीछा करती है, कष्ट देती है पर ब्रह्मचर्य के प्रभाव से या देव-प्रभाव से वह शान्त हो जाती है। अपने घोर अन्यायपूर्ण आचरण के लिए पश्चात्ताप करती है तथा क्षमा माँगती है। क्षमावीर सुदर्शन अपकारी को उपकारी मानकर कह देते हैं 'ओ उपगार छे सर्व तांहरो, थांसूं नहीं म्हांरे धेष लिगार हो।'[२८]

मुनि सुदर्शन का ममत्वयोगी रूप यत्र-तत्र प्रकट हुआ है। हर स्थिति में हर परिस्थिति में समता ही उनका मूल मंत्र था 'तो पिण मुनिवर मूल डिग्या नहीं, राख्या समता भाव।'[२९] मुनिवर समें परिणामें सह्यो, कर्म किया चकचूर।[३०] इस प्रकार समता की निसेणी से उन्होंने मोक्ष की मंजिल को प्राप्त कर लिया। 'छूटा संसार ना दुख थकी, पहुता अविचल मोख हो।'[३१]

निष्कर्षतः इस चरितकाव्य का सबसे प्रधान गुण नायक के चरित्र का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कर्ष दिखलाना है। ब्रह्मचर्य की रक्षा साधक को प्रत्येक स्थिति में करनी चाहिये और इस प्रकार से शील की रक्षा करते हुए व्यक्ति को कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता, यही इसका सार है। ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचारी की महिमा प्रतिस्थापित करना इस काव्य का मूल प्रतिपाद्य बनता है।

संदर्भ-सूची

१. काव्यालंकार (भामह) १.२
२. काव्यप्रकाश १.२
३. भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर भाग-२ रत्न १९ प्रका० तेरापंथी महासभा प्रकाशन, कलकत्ता
४. साहित्य दर्पण—तीसरा परिच्छेद
५. दशरूपक १.११
६. भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर खण्ड-२, रत्न १९, ढा० १-१०
७. वही, ढाल १-२१
८. ,, ढाल २-१८
९. ,, ढाल १-१२
१०. ,, ढाल १-२०
११. ,, ढाल २; दोहा ७
१२. ,, ढाल ८-८
१३. ,, ढाल ३-९
१४. दसवैकालिक अ० ८-३५, जैन विश्व भारती, लाडनूं
१५. भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर खण्ड २, रत्न १९, ढा० २०-३
१६. वही ढाल ५-२
१७. ,, ढाल १६; दोहा २
१८. ,, ढाल ४; दोहा २-३
१९. ,, ढाल १६-१
२०. ,, ढाल १६-९
२१. ,, ढाल १६
२२. ,, ढाल ३२-२
२३. ,, ढाल ३२-६
२४. ,, ढाल १६; दोहा १
२५. ,, ढाल २१; दोहा २
२६ ,, ढाल २२-१
२७. ,, ढाल २८-१६,१७
२८. ,, ढाल ४२-७
२९. ,, ढाल ४१-१३
३०. ,, ढाल ४१-१५
३१. ,, ढाल ४२-९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य भिक्षु की साहित्य साधना

☐ साध्वी चन्दनबाला

राजस्थानी जैन साहित्य की हजार वर्ष की परम्परा रही है। अनेक मनीषी आचार्यों-सन्तों ने राजस्थानी साहित्य भण्डार को समृद्ध किया है। विभिन्न-विधाओं में विविध विषयों पर लिखकर उन्होंने राजस्थानी साहित्य की अनुपम साधना की है। उन यशस्वी साहित्यकारों की शृंखला की एक विशिष्ट कड़ी हैं—आचार्य भिक्षु।

आचार्य भिक्षु अपने युग के महान् विचारक और क्रांत-द्रष्टा सन्त थे। रूढ़ परम्पराओं और मिथ्या मान्यताओं के विरुद्ध उनकी लेखनी कठोरता से चली। हर परिस्थिति में वे सत्य की शोध में उतरे रहे। धर्म, दर्शन, आचार आदि विषयों में उनकी अनुभूतियाँ काव्यात्मक रूप में अभिव्यञ्जित हुई। उनके काव्यों में कबीर का फक्कड़पन और स्वाभाविक संवेग दृष्टि के दर्शन होते हैं।

संघर्षों के घटाटोप में भी उनका मस्तिष्क कभी कुंठित नहीं हुआ। कदम-कदम पर वैचारिक सामाजिक अवरोधों के बावजूद उनका चिन्तन रूढ़ नहीं बना, रुका नहीं। वि० सं० १८१७ में आचार्य भिक्षु ने धर्म-क्रांति की। तब से लेकर १८५३ तक उन्हें विभिन्न प्रकार के संघर्षों से गुजरना पड़ा फिर भी उनकी लेखनी का अजस्र प्रवाह अविरल बहता रहा।

दर्शन के गूढ़ रहस्यों को सहज, सुबोध भाषा में बाँधना उनकी विलक्षण प्रतिभा का आत्मभू साक्ष्य है। जैन तत्त्वज्ञान, आचार विश्लेषण, सैद्धांन्तिक मतभेदों का निरूपण, मर्यादा और व्यवस्थाओं का विवेचन आदि मौलिक विषयों पर जो रचनाएं उपलब्ध हैं, वे निःसन्देह राजस्थानी साहित्य की अप्रतिम देन है। उनका पद्य साहित्य चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) आचार निरूपण (साधु-आचार-संहिता)
(२) परवादियों का निराकरण—सैद्धांतिक पक्ष
(३) आख्यान काव्य
(४) प्रबन्ध काव्य

गद्य साहित्य में अधिकांशतः तात्त्विक निरूपण है। संघीय मर्यादा से सम्बन्धित पत्र भी उनके गद्य साहित्य को सुशोभित करते हैं। कवि बनाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं जाते वे नैसर्गिक होते हैं। आ० भिक्षु इसके जीवंत निदर्शन हैं। हृदय में उठने वाले विचारों को उन्होंने कविता में बाँध दिया। आस-पास, परिसर में जहाँ कुछ वैशिष्ट्य नजर आया उसे अपनी कलम का विषय बना लिया।

आचार्य भिक्षु की अधिकांश रचनाएं राजस्थान में प्रचलित विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध हैं। सोरठों और दोहों का प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है। गीतों के माध्यम से गम्भीर दार्शनिक विषयों को भी जन भोग्य बना दिया है।

१. नवपदार्थ—

सृष्टि के नियामक दो तत्त्व हैं—जीव और अजीव। नौ तत्त्वों में वर्णित आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये जीव की ही अवस्थाएं हैं। और पुण्य-पाप, बन्ध अजीव की। षड्-द्रव्यों में पाँच द्रव्य अजीव हैं। अतः उनकी मीमांसा अजीव पदार्थ के अन्तर्गत समाविष्ट है।

आचार्य भिक्षु ने १३ ढालों में नौ पदार्थों का क्रमबद्ध एवं विशद विवेचन किया है। सहज-सरल भाषा में तत्त्वों की गहनता को सरलता से समझा दिया है। नौ पदार्थ के विवेचन में ही द्रव्य षट्क का वर्णन भी स्वतः समाहित हो गया है। जैन तत्त्व-मीमांसा व आचार-मीमांसा दोनों की दृष्टि से इस कृति का वैशिष्ट्य है।

२. श्रावक के बारह व्रत—

पूर्णता और अपूर्णता की दृष्टि से मुमुक्षु को दो वर्गों में विभाजित किया गया है। पहला वर्ग संयमी का है, जो गृही जीवन में पूर्ण संयम का जीवन स्वीकार कर लेते हैं। पांच महाव्रतों की अखंड अनुपालना उनका उद्देश्य होता है। तथा दूसरा वर्ग व्रतों को यथाशक्य स्वीकार करता है, जिन्हें श्रावक कहा जाता है!

श्रावक जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। साधना के परिप्रेक्ष्य में उसके लिए १२ व्रतों का विधान है। आचार्य भिक्षु ने इस कृति में श्रावक के १२ व्रतों का विस्तृत और सरल विवेचन किया है। एक-एक व्रत को समग्रता से समझाने का गहरा प्रयत्न किया है। इसमें कुल १३ ढालें और ५२ दोहे हैं।

३. ब्याहुलो—

विवाह सामाजिक व्यवस्था का एक क्रम है, जिसमें दो व्यक्ति एक दूसरे के प्रति समर्पित होते हैं। इस अवसर पर अनेक लौकिक प्रथाएं प्रचलित हैं। इस कृति में आचार्य भिक्षु ने विवाह सम्बन्धी लौकिक क्रियाओं को परमार्थ दृष्टि तक ले जाकर प्रतिपादित किया है। कृति के उद्देश्य की चर्चा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए स्वयं आचार्य भिक्षु ने कहा है—

"जोगी जोग सेठे रहे भोगी तेज विकार"

४. निन्वरास—

अपने युग में आचार्य भिक्षु को विपक्षी लोग निह्नव कहते थे। वास्तव में निह्नव किसे कहते हैं ? इस प्रश्न को उत्तरित किया गया है इस कृति में। आचार्य भिक्षु की धारणा के अनुसार निह्नव वह है जिसकी आस्था निर्ग्रन्थ धर्म के विपरीत है, जिसके आचार और तत्त्व प्ररूपणा में भी अन्तर है। वास्तव में यह कृति तात्कालिक मिथ्या अभिनिवेशों, क्रियाकलापों पर गहरी चोट करती है।

५. गणधर सिखावणी—

इस कृति में आचार्य भिक्षु ने मनुष्य जीवन की अस्थिरता को अनेक रूपकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जैसे :—

"अथिर परपोटो पाणी तणों, अथिर झालर रो झिणकारो।
त्यूं अथिर आऊखो मिनष रो, जांणे बिजली तणो चमत्कारो॥"

जीवन की अवास्तविकता प्रदर्शित कर प्रतिक्षण जागरूक रहने का संकेत किया है। "णाणागमो मच्चु मुहस्स अत्थि" इस आगम वाक्य का रहस्य सरल और सुबोध भाषा में अभिव्यक्त कर अध्यात्म के प्रति रुझान पैदा करने का प्रयत्न किया है। कृति का रचनाकाल वि० सं० १८४३ तथा स्थान केलवा है। ३६ गाथाओं में निबद्ध दो ढालों का संग्रह अपने आप में विलक्षण है ऐसा प्रतीत होता है।

६. कालवादी री चौपाई—

आचार्य भिक्षु का युग अनेक मत-मतान्तरों का युग था। उनमें काल-वादी नामक एक विशिष्ट मत था। उनकी मान्यता में समय (काल) को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया था। इस कृति में आचार्य भिक्षु ने कालवादियों की मान्यता का खंडन कर वास्तविकता पर गहरा प्रकाश डाला है। दार्शनिक ग्रन्थों में इस कृति का अपना वैशिष्ट्य है। इसमें कुल ६ ढालें, ३६ दोहे और २४६ गाथाएं हैं। दार्शनिक तथ्यों के साथ-साथ गूढ़ तात्त्विक रहस्य भी इस कृति में उद्घाटित किये गये हैं।

७. इंद्रियवादी री चौपाई—

अध्यात्म जगत में कर्मवाद का प्रमुख स्थान है। कर्मवाद के गंभीर अध्ययन का अर्थ है अध्यात्म की गहराइयों में जाने का सघन प्रयत्न। जो ऐसा नहीं करते, वे अध्यात्म का रहस्य उद्घाटित नहीं कर पाते।

अध्यात्म चेतना का विकास कर्मों के क्रमिक विलय पर आधारित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणी मात्र के विकास क्रम का भी कर्म एक सशक्त माध्यम है।

आचार्य भिक्षु ने अपनी इस कृति में कर्मों के क्षय, क्षयोपशम से होने वाली उपलब्धियों का सूक्ष्मता से विवेचन किया है। इस कृति में पांच इंद्रियों के विषय की गम्भीर मीमांसा की है। इन्द्रियों की प्राप्ति क्षयोपशम भाव है। क्षयोपशम भाव और उदय भाव दोनों का अलग-अलग क्षेत्र है। इस तथ्य को उजागर करते हुए कहा है—

"उदेने क्षय उपशम भाव दोय छे, त्यांने एक कोई मत जाणो रे
क्षय उपशम स्युं कर्म लागे नहीं, उदे भाव स्युं कर्म लागै आणो रे

कुछ दार्शनिक इन्द्रियों की प्राप्ति को कर्मबन्ध का निमित्त मानते थे। उनकी अवधारणा में इन्द्रियां विषय ग्रहण के साथ राग-द्वेष के भाव तरंगित करती हैं। इस दृष्टि से इन्द्रियां सावद्य हैं—

"केई इन्द्रियां ने सावद्य करे, ते जिण मारग रा अणजाण"

इन्द्रिय निरवद्य है। —इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए कृति में अनेक सूत्रों की साक्षियाँ दी गई हैं। एक-एक विचारणीय बिन्दु का मार्मिक विश्लेषण किया है। इस कृति में कुल १५ ढालें तथा ९२ दोहे हैं। गाथाओं की संख्या ६९६७ है। इसका रचनाकाल वि० सं० १८४६ व १८४७ है। कृति के अध्ययन से यह अनुमानित होता है कि इसकी रचना विहरण काल में विविध भट्टों में हुई।

८. परजायवादी री चौपाई—

आचार्य भिक्षु के समय अनेक मतों का बाहुल्य था। पर्यायवादी भी उस शृंखला में एक था। पर्यायवादी मत नास्तिकवाद के अन्तर्गत आता था। उनके सिद्धांतानुसार जीव-अजीव का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। उनकी आस्था को अपने शब्दों में अभिव्यक्ति देते हुए आचार्य भिक्षु ने लिखा है :—

"बाप नहीं जीव बेटो नहीं जीव, वले जीव नहीं सगलो परिवार रो
जीव जनमें नहीं जीव मरें नहीं, पिण जीव नहीं भोगवे बिषेंकार रो"

पर्यायवादी जीव के भेद-प्रभेदों को भी मान्य नहीं करते थे। भावों के शाश्वत-अशाश्वत, पर्याप्त-अपर्याप्त आदि भेद और बाल, युवा, प्रौढ़ आदि अवस्थाएं मात्र काल्पनिक हैं। आचार्य भिक्षु ने आगमों की अनेक साक्षियाँ देकर जीव के अस्तित्व का प्रतिपादन किया है। भगवती सूत्र का प्रसंग उद्धृत करते हुए लिखा है। गौतम स्वामी ने भगवान से चार प्रश्न किये—

(१) क्या जीव आदि अनन्त रहित है ?
(२) क्या जीव आदि सहित और अन्त रहित है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) क्या जीव आदि रहित और अनन्त सहित है ?
(४) क्या जीव आदि और अन्त सहित है ?
भगवान ने समाधान की भाषा में कहा—

"श्री वीर जिणेसर कहे सुण गोयमा, ए च्यारु भांगा छे जीव
ज्यांरा भेद विसतार कहूं छूं जूजूआ ए सरध्या समकीत नींव"

अपेक्षा भेद से इस वर्गीकरण को सिद्ध करते हुए भिक्षु स्वामी कहते हैं—

"ए आदि रहित ने अन्त रहित छै ए अभव सिधीया जीव जांण हो
आदि नहीं पिण अंत सहित छे, ते भव सिधीया जीव पिछाण हो"

जे करम खपाए ने सिद्ध गीत में गया त्यांरी आदि छै पिण नारकी तिर्यंच मिनष ने देवता ए आदि ने अंत सहित है ।

इस प्रकार आचार्य भिक्षु ने अनेक सैद्धांतिक, आगमिक तर्क प्रस्तुत करते हुए पर्यायवादी मत की विशद् समीक्षा इस कृति में की है । इस कृति में तीन ढालें, १५ दोहे और ९०९ गाथाएं हैं ।

९. टीकम डोसी की चौपाई—

टीकम डोसी एक धार्मिक व्यक्ति थे । लेकिन सैद्धांतिक आदि अनेक बिन्दुओं पर वे सन्देहशील थे । आचार्य भिक्षु उनके एक-एक सन्देह का सूक्ष्मता से निवारण किया । उनकी अवधारणा को अभिव्यक्ति देते हुए आचार्य भिक्षु ने लिखा है—

"बले सावद्य स्यूं पण लागो सरधे,
तिण सावद्य ने कहे अधर्म पुन रो
कर्त्ता कहे अधर्म, ते जाबक भुलो मर्म"

समाधान करते हुए आचार्य भिक्षु ने लिखा है—

"सावद्य जोगां स्यूं पाप लागै छै,
निरवद्य जोगां स्यूं निर्जरा होय !
बले निरवद्य जोगा स्यूं पुन पिण लागै,
शुभजोगां ने संवर करद्यो मत कोय ।"

इस प्रकार यह कृति तात्त्विक विषयों की गहरी चर्चा प्रस्तुत करती है । इस कृति में ५ ढालें, २८ दोहे और कुल १२८ गाथाएं हैं ।

१०. निक्षेपां री चौपाई—

व्याख्या पद्धति का नाम है निक्षेप । उन्हें चार भागों में विभक्त किया गया है । वे हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव । निक्षेप के विषय में विभिन्न अवधारणाएं प्रचलित थीं । आचार्य भिक्षु ने एक-एक निक्षेप का मौलिक स्वरूप प्रतिपादित करते हुए विशद् व्याख्या प्रस्तुत की है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम निक्षेप की अवास्तविकता बताते हुए आचार्य भिक्षु लिखते हैं—

"गुण विण नाम दीयो लोक में, ने प्रतरव लेणो देस
नाम दीयों छै गोविन्दराय, फिर-फिर चरावे पराई गाय
बाई रो नाम दीयो छै लाछ, मांगी न मिले कुलडी छाछ"

इस प्रकार स्थापना निक्षेप के माध्यम से मूर्ति पूजा पर गहरी मीमांसा प्रस्तुत की है। द्रव्य निक्षेप विषय-वर्णन में अपना वैशिष्ट्य रखता है। अन्त में भाव निक्षेप की वास्तविकता प्रगट की है। निक्षेपों पर सरल, सरस और गंभीर विवेचन कर मौलिक विचारों को आकार दिया गया है। इस कृति में ६ ढालें, ३० दोहे और कुल २६७ गाथाएं हैं।

११. मिथ्यात्वी री करणी री चौपाई—

जैन दर्शन में दृष्टि का बहुत बड़ा महत्व है। सम्यक् और मिथ्या दृष्टि के दो भंग हैं। दृष्टिकोण की यथार्थता और अयथार्थता के पारिभाषित शब्द हैं—सम्यक्त्व और मिथ्यात्व। कुछ दार्शनिक सम्यक्त्वी को ही सम्यक् मानते हैं। मिथ्यात्वी की सम्यक् क्रिया को अनादेय मानते हैं। आचार्य भिक्षु ने इस अवधारणा में एक क्रांति घटित की। अपने अभिमत को स्पष्ट करते हुए कहा—सम्यक् क्रिया चाहे किसी के द्वारा की गई हो, वह आदरणीय है, जीवन-विकास के अभिमुख है। अन्यथा विकास क्रम का ही अवरोध हो जाएगा।

"मिथ्याती आछी करणी कियां बिणा, किण विध पामें समकित सार।
सुध प्राकम स्यूं समकित पामसी, तिण में संकाम राखो लिगार॥"

आचार्य भिक्षु ने मिथ्यात्वी की क्रिया को भगवान की आज्ञा में कहा है। इस तथ्य का उद्घाटन कर स्वामीजी ने समस्त प्राणी जगत् के लिए मोक्ष का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इस कृति में ४ ढालें और २५ दोहे हैं। कुल गाथाएं १५१ है। रचना काल १८४३ और १८४६ रहा है, ऐसा अनुमानित है।

१२. एकल की चौपाई—

एकल से तात्पर्य है—अकेला! जैन दर्शन में साधना के अनेक प्रकार हैं। मुख्य रूप से दो मार्ग हैं—(१) समूह के साथ रहकर साधना करना अथवा अकेले रहकर। अकेले रहकर साधना के मार्ग में चलने वालों को एकल विहारी कहा जाता है। उनमें कुछ अर्हताओं का होना अपेक्षित है।

ठाणांग सूत्र में एकल विहारी के लिए आठ अर्हताएं प्रतिपादित की हैं—सघन आस्थाशील होना, सत्यवादी, प्रज्ञावान, बहुश्रुत आदि-आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ साधक अपनी निजी दुर्बलता के कारण सामूहिक चेतना के साथ जुड़ नहीं पाते। अहं की प्रबलता से वे एकाकी जीवन स्वीकार कर लेते हैं। उनके बारे में आचार्य भिक्षु ने लिखा है—

"अभिमानी आपणपो मोटो मानतो रे,
प्रबल मोह माहे, कार्य-अकार्य सुध सूझे नहीं रे।
विवेक निकलते एक थाय रे॥"

कुशील, पार्श्वस्थ स्वच्छन्द और संसक्त अकेले रहने वाले शुद्ध साधना नहीं कर सकते। इस सत्य को मार्मिकता से प्रस्तुति दी है इस कृति में। इसमें ८ ढालें और ३६ दोहे हैं। कुल गाथाएं २२६ हैं।

१३. जिनाग्या री चौपाई—

इस कृति का प्रतिपाद्य है—वीतराग भगवान के द्वारा प्रतिपादित धर्म ही वास्तविक धर्म है। वह फिर चाहे किसी नाम से पुकारा जाए। करणीय और अकरणीय में जिनाज्ञा का बड़ा महत्व है। साधक के लिए आज्ञा सर्वोपरी है जो भी भगवान की आज्ञा से बाहर धर्म की प्ररूपणा करते हैं, उनके मन की तर्क पूर्ण शैली से तीव्र आलोचना की है। मिश्र धर्म का भी खंडन कर धर्म का शुद्ध स्वरूप प्रगट किया है, जिसका सुन्दर और गम्भीर विवेचन है। कल्प और अकल्प की भी गहरी मीमांसा की है।

इस कृति में ५ ढालें, ३४ दोहे कुल २३५ गाथाएं हैं। रचनाकाल लगभग १८४० से लेकर १८५६ का अनुमानित है।

१४. पोतिया बंध री चौपाई—

आचार और विचार भेद का इतिहास बहुत पुराना है। जितने विचार उतने मत और जितने मत उतने समुदाय। अपने-अपने अभिमत को प्रत्येक व्यक्ति विस्तार देना चाहता है।

आचार्य भिक्षु के समय में जैनों के अनेक सम्प्रदाय थे। उन्हीं में कुछ प्रसिद्ध कुछ अप्रसिद्ध थे। एक सम्प्रदाय पोतियाबन्ध के नाम से प्रख्यात था। आचार्य भिक्षु जब गृहस्थ में थे, उस समय उनका पूरा परिवार पोतियाबन्ध सम्प्रदाय के प्रति आस्थाशील था। आचार्य भिक्षु ने निकटता से इस सम्प्रदाय की मान्यता का अध्ययन किया। इस कृति में आचार्य भिक्षु ने पोतियाबन्ध सम्प्रदाय के कुछ अर्थहीन अभिनिवेषों पर गहरी मीमांसा प्रस्तुत की है।

नमस्कार महामंत्र जैन मात्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मंत्र है। प्रस्तुत सम्प्रदाय उसकी रचना में त्रुटि निकालता है। अपने अभिमत में वे कहते हैं—सिद्धों से पहले अरहन्तों को नमस्कार करना युक्ति संगत नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार और भी अन्य अनेक अभिनिवेशों पर गहरा प्रहार करते हुए आचार्य भिक्षु ने वास्तविक तथ्य प्रगट किए हैं। इस कृति में ४ ढालें २८ दोहे और १६७ गाथाएं हैं।

पोतियाबन्ध सम्प्रदाय में दीक्षित स्वयं को मुनि मानते थे। उनकी अवधारणा के अनुसार वर्तमान युग में मनयोग स्थिर नहीं रह सकता। अतः कोई भी त्याग तीन करण, तीन योग से नहीं हो सकता। इस दृष्टि से वे स्वयं को भी श्रावक के रूप में स्वीकार करते थे। साहित्य लेखन भी उनकी दृष्टि में पाप का कार्य था। इसका कारण था – उपकरणों की सीमा। केवल चौदह उपकरण ही साधु के लिए कल्पनीय मानते थे। अधिक उपकरण रखना कल्प से बाहर है, ऐसी उनकी मान्यता थी।

१५. अनुकम्पा की चौपाई

अध्यात्म के क्षेत्र में अहिंसा, दया और अनुकम्पा का बहुत बड़ा महत्व है। किन्तु इनका यथार्थ अवबोध गहरा अध्ययन, चिन्तन और मनन की अपेक्षा रखता है। आचार्य भिक्षु ने इन तीनों शब्दों की गहरी मीमांसा की है। उन्होंने अपनी नैसर्गिक प्रतिभा से ऐसे तथ्य सुझाए जो प्राचीन ग्रन्थों में भी सुलभ नहीं थे।

अहिंसा के बारे में स्वामीजी ने कहा—

जीव जीवै ते दया नहीं, मरे तो हिंसा मत जाण।
मारण वाला नै हिंसा कही नहीं मारै ते दया गुणखाण॥

जीव का जीना या मरना दया अथवा हिंसा नहीं है। बल्कि मारना हिंसा है और न मारना दया है।

अनुकम्पा पर आचार्य भिक्षु ने स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना की। भाषा शास्त्रीय दृष्टि से दार्शनिक चिन्तन प्रस्तुत किया है। अनुकम्पा शब्द की मीमांसा करते हुए कहा गया है—

गाय भैंस आक थोरनो ए चारूं ही दूध।
तिण अनुकम्पा जाणज्यो आणी मन में सूध॥

केवल दूध शब्द अपनी अर्थ यात्रा में गाय, भैंस, आक, थोहर आदि सभी को समाविष्ट कर लेता है, उसी प्रकार अनुकम्पा शब्द भी व्यक्ति को भ्रमित कर सकता है। इसकी सही पहचान के लिए अनुकम्पा को दो भागों में विभक्त किया है—सावद्य और निरवद्य।

राग और द्वेष से प्रेरित अनुकम्पा सावद्य है। इसलिए उसे धर्म नहीं कहा जा सकता।

आचार्य भिक्षु ने इस विषय का गम्भीर विवेचन किया है। प्रस्तुत कृति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अहिंसा के क्षेत्र में स्वामीजी बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बड़े विचारक और प्रयोक्ता थे। उनके चिन्तन में अनेक बहुमूल्य स्थाई तत्त्व थे।

यह कृति १२ ढालों का संग्रह है जिसमें ५४ दोहे हैं। गाथाओं की संख्या ४८७ है।

प्रारम्भिक आठ ढालों की रचना का सम्वत् नहीं मिलता। अवशेष ढालों के अन्त में निम्न जानकारी मिलती है :—

ढाल	सम्वत्		शहर
९	१८४४	फालगुन सुदी ९ रविवार	बगड़ी
१०	१८५२	आषाढ़ बदी ११ मंगलवार	मांढा
११	१८५४	आषाढ़ बदी ११ मंगलवार	मांढा
१२	१८५३	कार्तिक बदी १४ गुरुवार	पुर

उपर्युक्त रचना-वर्णन से लगता है—कुछ ढालें मूल कृति के साथ बाद में जुड़ी हैं। वर्तमान में इस कृति का साधुवाद सटिप्पण संस्करण स्वतंत्र रूप में प्रकाशित है।

१६. विरत-अविरत की चौपाई—

भगवान महावीर के बाद जैन धर्म दो भागों में विभक्त हो गया—श्वेताम्बर और दिगम्बर। इनमें भी विभिन्न मत अपने-अपने अभिनिवेशों के साथ भिन्न-भिन्न परम्परा से जुड़ गए।

उन्हीं में एक परम्परा से सम्बन्धित मत एक ही क्रिया में धर्म और अधर्म दोनों को स्वीकारता था। प्रस्तुत कृति में इस आधारहीन मान्यता का खंडन किया है। साथ ही सैद्धान्तिक पक्ष को समग्रता से प्रस्तुति दी है।

व्रत और अव्रत दोनों का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। इस परिप्रेक्ष्य में साधु-श्रावक व्रत की अपेक्षा से एक हैं। इसे स्पष्ट करते हुए आचार्य भिक्षु ने कहा :—

साध नै श्रावक रतनां री माला एक मोटी दूजी नांन्ही रे।
गुण गूंथ्यां च्यारूं तीरथ रा इविरत रह गई कोनी रे॥

अव्रत की अपेक्षा से श्रावक साधु से भिन्न हैं। इस अपेक्षा से श्रावक का खाना पीना अव्रत में है। इस प्रसंग को आचार्य भिक्षु ने अनेक आगमों की साक्षियाँ तथा शास्त्रीय दृष्टांत देकर स्पष्ट किया है।

दान के विषय में सावद्य-निरवद्य की अलग-अलग व्याख्या कर भ्रांत धारणाओं को तोड़ने का सफल प्रयत्न किया है। इस प्रकार यह कृति अनेक मिथ्याभिनिवेशों को दूर कर अनेक विषयों में सम्यग्दृष्टि देती है। गाथाएं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुल ९७५ हैं। इस संग्रह की कुछ ढालों का रचना स्थान और काल का विवरण इस प्रकार है :—

ढाल	रचना स्थान		रचना काल
४	नाथद्वारा	१८४३	आश्विन बदी १० रविवार
८	नाथद्वारा	१८४३	आश्विन बदी ८ शुक्रवार
९	कोठारया	१८४३	आश्विन सुदी १४ शनिवार
१२	धेनावास	१८४४	माघ सुदी ६ बृहस्पतिवार
१३	पाली	१८५२	श्रावण बदी १३ मंगलवार
१४	पाली	१८५२	आश्विन बदी ५ शुक्रवार
१५	पाली	१८५२	आश्विन बदी १५ सोमवार
१६	सोजत	१८५३	श्रावण सुदी ६ सोमवार
१७	पाली	१८५५	आश्विन सुदी १ बुधवार
१८	नाथद्वारा	१८५६	पौष बदी २ शनिवार
१९	गोगुंदा	१८५७	चैत्र सुदी १४ बुधवार

१८. श्रद्धा की चौपाई—

आचार्य भिक्षु का समय गहरे अभिनिवेशों का समय था। एक विषय पर नाना मान्यताएं थी। सम्यक्त्व और मिथ्यात्व की कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं थी। जिसे जैसा अवभाषित होना, धर्म और अधर्म की स्थापना कर देता। जैसे—आगम सूत्रों की राजस्थानी भाषा में पद्यबद्ध रचना अर्थ (जिसे जोड़ कहा जाता था) चित्र का निर्माण आदि-आदि। आचार्य भिक्षु ने इस विषय में अनेक शास्त्रीय उल्लेख प्रस्तुत किए हैं। वास्तविक धरातल पर आस्था का निर्माण करने में सघनता से लेखनी चली है। धर्म के सन्दर्भ में विपरीत अवधारणाओं की तीव्र मीमांसा की है। इस संग्रह में ३१ ढालें और १६० दोहे हैं। कुल गाथाएं १४६४ हैं।

ढालों का निर्माण विभिन्न क्षेत्रों में तथा अलग-अलग समय में हुआ है। प्राप्त सामग्री के अनुसार निम्नांकित विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

ढाल	रचना स्थान		रचनाकाल
१	बगड़ी	१८३६	कार्तिक सुदी १५ मंगलवार
२	माधोपुर	१८४८	आसोज सुदी ६ सोमवार
४	नाथद्वारा	१८४३	श्रावण बदी १५ मंगलवार
५	नाथद्वारा	१८४३	आश्विन बदी ९ शनिवार
६	ईडवा	१८५४	चैत्र बदी ४ बुधवार
७	कोठारया	१८४३	कार्तिक सुदी १३ शनिवार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल	रचना स्थान	रचना काल	
८	सिरियारी	१८५०	आषाढ़ सुदी २ रविवार
९	गुदवच	१८५१	वैशाख सुदी ११ बुधवार
१०	खेरवा	१८५३	आश्विन बदी १५ बुधवार
११	मेड़ता	१८५४	वैशाख बदी १५ सोमवार
१२	पाली	१८५५	
१३	केलवा	१८५५	फाल्गुन बदी १ बुधवार
१४	गुरला	१८५८	कार्तिक बदी ५ मंगलवार
१५	पींपाड़ा	१८३३	ज्येष्ठ बदी १२ मंगलवार
१६	पादू	१८५४	वैशाख बदी १० मंगलवार
१८	सिरियारी	१८५१	कार्तिक बदी १४ बुधवार
१९	पुर	१८५७	आश्विन बदी ९ शुक्रवार
२०	पुर	१८५७	आश्विन बदी १३ मंगलवार
२१	गंगातुर	१८५७	पौष सुदी ८ मंगलवार
२२	पींपाड़ा	१८५७	चैत्र सुदी १३ सोमवार
२३	खेरवा	१८५४	आश्विनी सुदी १ बृहस्पतिवार
२४	खेरखा	१८५४	आश्विन सुदी १५ बृहस्पतिवार
२५	पूहना	१८५७	माघ बदी २ शनिवार
२६	रावल्यां	१८५७	चैत्र सुदी १४ रविवार
२७	मेवाड़	१८५७	आश्विन बदी १५ बृहस्हतिवार
२९	नेंणवा	१८४८	माघ बदी १५ सोमवार

१८. आचार की चौपाई—

आचार्य भिक्षु की धर्मक्रांति का मौलिक आधार था—आचार-शैथिल्य। तत्कालीन साधुओं का सुविधावादी दृष्टिकोण तथा आगम सम्मत शुद्ध आचार के प्रति औदासीन्य देखकर स्वामीजी ने इस कृति का निर्माण किया। जब कभी जहां जो कुछ घटित होता है आपकी लेखनी उसे कागज पर उतार देती, यह आपकी साहित्यिक चेतना की प्रतीक थी।

प्रस्तुत कृति में शुद्ध साधु की पहचान के कुछ बिन्दु प्रस्तुत किए हैं। साध्वाचार और श्रावकाचार की मौलिकता जनता के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

यह कृति ३२ ढालों का संग्रह है। प्राप्त सामग्री के अनुसार कुछ ढालों का रचनाकाल और स्थान निम्न प्रकार है—

ढाल	रचना स्थान	रचनाकाल	
९	मेड़ता	१८३३	वैशाख बदी ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल	रचना स्थान	रचनाकाल	
११	रीयां	१८३३	आषाढ़ सुदी ३ सोमवार
१२	पींपाड़	१८३४	आषाढ़ सुदी ६ बुधवार
१४	अगंदपुर	१८३३	वैशाख सुदी ११ रविवार
१६	खेरवा	१८३२	आसोज सुदी २ मंगलवार
१७	खेरवा	१८३२	कार्तिक बदी २ मंगलवार
१८	गुंदवच	१८३२	वैशाख सुदी ११ सोमवार
१९	रीयां	१८३३	ज्येष्ठ सुदी १५ शुक्रवार
२०	रीयां	१८३३	आषाढ़ बदी ९ रविवार
२५	पाली	१८५२	भाद्रव बदी ७ शुक्रवार
२६	सोजत	१८५३	आसोज सुदी ७ शनिवार
२७	पाली	१८५२	आसोज सुदी २ बुधवार
२८	सोजत	१८५३	आसोज बदी ११ मंगलवार
२९	पाली	१८५५	भाद्रव बदी १० बुधवार
३०	नाथद्वारा	१८५६	कार्तिक सुदी ८ मंगलवार

२०. निह्नव री चौपाई—

भगवान महावीर युग में उन्हीं के शिष्य अपने एकांत आग्रह से संघ विच्छेद कर लेते हैं। किसी एक मान्यता में निजी स्वतंत्र मान्यता प्रस्तुत कर अपना अलग संगठन बना लेते हैं, जिन्हें निह्नव कहा गया। जैसे—जमाली गोष्ठामाहिल आदि।

परिस्थिति विशेष में जनित अवस्था से वे प्राप्त अवधारणा को छोड़ नई अवधारणा से जुड़ गए—जैसे जीव का अन्तिम प्रदेश ही जीव है। एक समय में दो क्रियाएं हो सकती हैं, आदि-आदि।

इस कृति में आचार्य भिक्षु ने निह्नवों की मान्यताओं की गम्भीर आलोचना की है।

इस संग्रह में कुल ६ ढालें तथा २८ दोहे हैं। गाथाओं की संख्या १७२ है। रचनाकाल और स्थान का उल्लेख प्राप्त नहीं है।

२१. विनीत-अविनीत की ढाल—

आचार्य भिक्षु एक विशिष्ट साधक थे, लेखक थे और थे मनोवैज्ञानिक स्कॉलर। प्रस्तुत कृति में अविनयी के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रभावोत्पादक रूप में गुम्फित है। साथ ही अविनयी पुनः विनय में प्रतिष्ठित होकर आत्मोदय की ओर किस प्रकार प्रस्थान करता है, इसका भी सुन्दर विवेचन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कृति में २ ढालें, २ दोहे एवं कुल ५० गाथाएं हैं। रचनाकाल के विषय में कृति मौन है।

२२. उरण री ढाल—

सम्बन्धों की दुनियाँ में व्यक्ति एक दूसरे के प्रति कृतज्ञता से भर जाता है। सामान्यतः तीन व्यक्तियों से उऋणता प्राप्त करना बहुत आवश्यक है। माता-पिता, मालिक और गुरु, सन्तान, नौकर और शिष्य आध्यात्मिक दृष्टि से कैसे उऋणता प्राप्त कर सकते हैं? इस विषय का रचना में सुन्दर विवेचन है। एक मार्मिक दृष्टान्त के द्वारा विषय को सामान्य बनाने का प्रयास किया गया है।

इस कृति में मात्र १ ढाल, १ दोहा और ७८ गाथाएं हैं। रचनाकाल के सम्बन्ध में यह रचना भी मौन है।

२३. मोहणी कर्मबंध की ढाल—

प्राणीमात्र के भव-भ्रमण का मुख्य कारण है—मोहकर्म। यही वह कर्म है जो प्राणी की ज्ञान-दर्शन की शक्ति को अवरुद्ध कर देता है। कुछ कार्य ऐसे हैं जिनसे मनुष्य मोहकर्म की सुदृढ़ शृंखला से आवेष्ठित हो जाता है। इस कृति में आचार्य भिक्षु ने महामोहनीय कर्मबन्ध के सघनतम ३० निमित्तों का विवेचन किया है। इस रचना के गंभीर अध्ययन-मनन से व्यक्ति हिंसा आदि से बच सकता है।

इस रचना में ५ दोहे और ५० गाथाएं हैं। रचनाकाल सम्वत् १८३७ श्रावण कृष्णा रविवार तथा स्थान पादुगांव है।

२४. दसवें प्राछित्त री ढाल—

भूल होना व्यक्ति की नैसर्गिक वृत्ति है। किन्तु भूल का प्रायश्चित्त जरूरी है, जिससे आराधक पद प्राप्त किया जा सके। शास्त्रों में दस प्रकार के प्रायश्चित्त का विधान है। प्रस्तुत संगीत में दसवें प्रायश्चित्त की चर्चा है। किस प्रकार की भूल में यह प्रायश्चित्त दिया जाता है उसका सुन्दर विवेचन है। इस रचना का आधार स्थल है स्थानांग सूत्र। इसमें २ दोहे और २१ गाथाएं हैं। रचनाकाल उपलब्ध नहीं है।

२५. जिण लखणा चारित आवे न आवे तिण री ढाल—

श्रामण्य जिन्दगी का वह अवसर है जो उसे मंजिल तक पहुँचाने का गहरा और सबल आश्वासन है। आगमों में उसे गुणों का महामार कहा है। जब तक अन्तःस्फुरणा नहीं होती, आत्मिक गुण प्रगट नहीं होते। श्रामण्य आ नहीं सकता। श्रामण्य प्राप्ति में किन-किन गुणों की अनिवार्यता है इसका सुन्दर विवेचन है प्रस्तुत कृति में। इस ढाल में ५ दोहे और ५७ गाथाएं हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी रचना संवत् १८३५ माघ सुदी ४ बुधवार के दिन की गई, ऐसा उल्लेख प्राप्त है।

२६. सूंस भंगावण रा फल री ढाल—

व्यक्ति विवेक-जागरण के बाद अकरणीय के द्वार बन्द कर देता है, अन्तःप्रेरणा अथवा अप्रिय की आशंका से वह कई कार्यों के लिए संकल्पित होता है, लेकिन कभी-कभी उसके संकल्प की गांठ ढीली हो जाती है। स्वीकृत संकल्प को तोड़ना महान् पाप है। गिरते हुए व्यक्ति को पुनः कैसे संभाला जाए, कैसे उसे उसके आदर्शों पर स्थिर किया जाए आदि-आदि पहलुओं पर गंभीरता से विवेचन है प्रस्तुत रचना में।

इस ढाल में ५ दोहे और ! ७ गाथाएं है। सम्वत् १८५४ चैत्र शुक्ला १३ बुधवार के दिन पादु ग्राम में इसकी रचना की गई।

२७. सांमधर्मी सांमद्रोही की ढाल—

इस रचना में आचार्य भिक्षु ने दो भिन्न-भिन्न दृष्टान्तों के द्वारा शाश्वत सत्य को अनावृत किया है। एक योगी के मंत्रबल से चूहा बिल्ली से सिंह बना। सिंह बनकर वह योगी को ही खाने दौड़ने लगा। दूसरी ओर एक स्वामीभक्त नौकर जिसे राजा ने ठुकरा दिया, लेकिन वक्त पड़ने पर जब राजा विपत्ति में था तब नौकर ने पूरे सम्मान से राजा की सुरक्षा की। इन दृष्टान्तों के माध्यम से प्रस्तुत रचना में आचार्य भिक्षु ने विनीत और अविनीत शिष्य की मनोदशा को अभिव्यक्त किया है।

२८. शील की नवबाड़—

साधक जीवन की अनिवार्यता है ब्रह्मचर्य। उसके अखंड निर्वाह के लिए आगमों में कुछ संकेत वर्णित हैं। आचार्य भिक्षु ने प्रस्तुत कृति में उत्तराध्ययन सूत्र के आधार पर ब्रह्मचारी के लक्षण, रहन-सहन, व्यवहार आदि में वर्जनाओं का गंभीर विवेचन किया है। जिन्हें रूपक की भाषा में बाड़ कहा गया है। जिस प्रकार खेत की सुरक्षा के लिए कांटों की बाड़ आवश्यक है उसी प्रकार ब्रह्मचर्य की अखंड आराधना के लिए ९ वर्जनाओं की अपेक्षा है।

यह रचना ११ ढालों का संग्रह है, जिसमें ४६ दोहे और १६७ गाथाएं हैं।

सम्वत् १८४१ फाल्गुन कृष्णा १० बुधवार के दिन पादु ग्राम में इसकी रचना हुई, ऐसा उल्लेख मिलता है।

इस कृति का सटिप्पण हिन्दी अनुवाद अलग प्रकाशित हो चुका है।

२९. समकित री ढालां—

जैन आगमों में मोक्ष प्राप्ति के आधारभूत कारणों में सम्यक्त्व का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मौलिक स्थान है। सम्यक्त्व के लक्षण क्या हैं? सम्यक्त्व रत्न का अधिकारी कौन है? सम्यक्त्व का स्वरूप क्या है? आदि-आदि विषयों पर गहरी मीमांसा की गई है इस रचना में। यह रचना दो ढालों का संग्रह है, जिसमें कुल २ दोहे और ४६ गाथाएं हैं।

३०. **दान री ढालां**—

आचार्य भिक्षु ने लिखा है—

दान शील तप भावना, ए च्यारूं जिण आग्या हीत।
जे समदिष्टि जिनधर्म में, यांनें ओलखो रूडी रीत॥

ढा० २, दो० १, पृ० ४७०

दान, शील आदि भगवान् द्वारा निर्दिष्ट तत्त्व हैं, लेकिन पहचान आवश्यक है। दान का अधिकारी कौन है? दान किसे, किस परिस्थिति में देना चाहिए इसका सुन्दर प्रस्तुतिकरण है प्रस्तुत रचना में। बल्कि देने वाले की मानसिकता का चित्र भी बखूबी से खींचा गया है। देता वही है जिसमें उदारता है। सम्पन्नता अथवा विपन्नता उसमें बाधक नहीं बनती। जैसा कि लिखा है—

केई धनवंत पिण कृपण हुवें केइ निरधन हुवें दातार।
छते जोग मिल्यां कृपण थकी, लाहो लेणी न आवें लार॥

ढा. २, गा. १९, पृ. ४७१

यह दो ढालों का संग्रह है, जिसमें ६ दोहे और ९० गाथाएं हैं। संवत् १८४२ कार्तिक महीने में सिरियारी में इसकी रचना की गई।

३१. **वैराग री ढालां**—

भौतिक आकर्षण विकर्षण के हेतु हैं। व्यक्ति आसक्ति के घेरे में इस प्रकार कैद हो जाता है कि अन्तिम सांस तक निकलने का नाम नहीं लेता। अनादिकाल से प्राणी वासना की गिरफ्त में अंधा बना रहता है। जिन्दगी के अनेक पड़ावों से गुजरता हुआ जब बुढ़ापे की दहलीज पर पांव रखता है तब उसकी दयनीय दशा का बड़ा द्रावक चित्र आचार्य भिक्षु ने इस कृति में खींचा है। बुढ़ापा अभिशाप है इस तथ्य का जीवन्त प्रमाण है यह कृति। बूढ़ा व्यक्ति किसी को प्रिय नहीं लगता। जैसे लिखा है—

जब गमतो न लागै केहनें, बले दीढांई न सुहाय
पुन्य संचो पूरो हुवै, हिवें दुःख मांहे दिन जाय।

इस प्रकार यह कृति मूढ़ व्यक्तियों की चेतना को झंकृत करती है। गृहस्थावस्था की विडम्बना का सुन्दर विवेचन है इस रचना में। यह कुल ४ ढालों का संग्रह है, जिसमें ५ दोहे और १०५ गाथाएं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। संवत् १८३४ आषाढ़ कृष्णा ११ शनिवार के दिन इसकी रचना की गई, ऐसा उल्लेख मिलता है।

३२. जुआ री ढाल—

आगमों में सात व्यसनों का उल्लेख मिलता है जो व्यक्ति की ऊर्जा को समाप्त कर अधोगामिता में धकेल देते हैं। जुआ भी उन्हीं का एक अंग है, जिसमें अधिक पाने की लालसा व्यक्ति को समग्रता से खाली कर देती है। इस रचना में आचार्य भिक्षु ने जुए के भीषण दुष्परिणामों की मौलिकता से प्रस्तुति दी है।

४ दोहे और ६१ गाथाओं का यह संग्रह संवत् १८५७ श्रावण शुक्ला ५ शनिवार को रचा गया।

३३. "विनीत-अविनीत की चौपाई"—

विनय क्या ? विनय क्यों, विनय किसके प्रति ? आदि-आदि प्रश्न उत्तरित हुए हैं। प्रस्तुत कृति में मौलिक दृष्टान्त और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर विषय को समग्रता से समझाने का सफल प्रयत्न किया गया है। इस कृति का मुख्य आधार है 'उत्तराध्ययनसूत्र'। आगम के आधार पर रचित यह कृति अपना अतिरिक्त वैशिष्ट्य रखती है। अविनीत की जीवन चर्चा का चित्र खींचते हुए आचार्य भिक्षु ने लिखा है—

"कुहना कांना री कूतरी, तिण रेझरे कीडा राध लोही रे
सगलै ठांम सूं काढे हुड-हुड करे, घर में आवण न दे कोई रे,
धिग-धिग अविनीत आत्मा।

दूसरी ओर विनीत के बारे में लिखा है।

"विनीत सूं गुरु प्रसन्न हुवै, तो आपे ग्यान अमूलजी
तिण सूं शिव रमणी वेगी वो, रहे शाश्वत सुख में झूलजी"

इस प्रकार यह कृति विनय के स्वरूप का मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इस कृति में ८ ढालें, २ दोहे एवं कुल ३४२ गाथाएं हैं।

३४. तात्त्विक ढालां —

प्रस्तुत संग्रह में पांच ढालें हैं। सबका अपना स्वतंत्र विषय है। जैसे प्रथम ढाल में आदिनाथ, ऋषभ, भरत, अरिष्टनेमि आदि विशिष्ट व्यक्तियों का वर्णन है, जिन्होंने श्रामण्य स्वीकार कर अन्तिम लक्ष्य प्राप्त किया।

दूसरी ढाल में २४ दण्डकों की अपेक्षा से २३ पदवियों का मार्मिक विश्लेषण है।

तीसरी ढाल में 'ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः' का सघन विवेचन है। ज्ञान और क्रिया की सहचारिता को स्पष्ट अभिव्यक्ति देने के लिए अंधे और पंगु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति का दृष्टान्त उल्लिखित किया है। अर्थगाम्भीर्य इस ढाल का वैशिष्ट्य है।

चतुर्थ ढाल में एकेन्द्रिय जीवों की सुखद तथा दुःखद अनुभूतियों का विश्लेषण है।

पाँचवी ढाल में मनुष्य को चार भागों में विभक्त किया है। रुपक की भाषा में बोधगम्य बनाने के लिए मोम, लाख, काष्ठ और मिट्टी के गोलों से उसे उपमित किया गया है। प्रस्तुत रचना में मनुष्य की मानसिकता का मार्मिक चित्र प्रस्तुत है।

इस कृति में कुल ७ दोहे और १२४ गाथाएं हैं। रचनाकाल तथा स्थान विशेष का संकेत उपलब्ध नहीं है।

३५. अविनीत रास—

धर्म का मूल है विनय। इस कृति में अविनीत के स्वभाव का गहरा विश्लेषण है। महत्वाकांक्षी और अभिनिवेशों से घिरा व्यक्ति किस प्रकार अपनी सीमाएं लांघ देता है। इसका साक्षात् दिग्दर्शन है। विनय और अविनय के संदर्भ में स्पष्ट तथा क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत कृति में उपलब्ध हैं।

इस संग्रह में १ दोहा और ४४३ गाथाएं संग्रहीत है।

पद्य साहित्य की गहनतम कृतियाँ तात्त्विक और सैद्धान्तिक विषयों में गुम्फित हैं। उपर्युक्त कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आचार्य भिक्षु का शास्त्रीय ज्ञान गंभीर था। आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन कर क्षीर नीर विवेक उनकी प्रतिभा की विलक्षणता थी। सूक्ष्मतम तत्त्व निरूपण में जिस शैली को माध्यम बनाया है उसमें गाम्भीर्य के साथ-साथ सहज बुद्धिगम्यता है।

आचार्य भिक्षु एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक थे। व्यक्ति के मनोभावों का विश्लेषण जिस मुक्तता एवं पटुता से किया है, मुग्ध करने वाला है। स्वामीजी सहज कवि और तत्त्वज्ञानी थे। बहुश्रुत होने के साथ-साथ प्रखर चिन्तक थे। तीव्र आलोचक, कठोर समीक्षक, महान् विचारक तथा निर्भीक और स्पष्ट वक्ता थे।

आचार्य भिक्षु के पद्य साहित्य का एक खंड है आख्यानों और कथाओं का।

आगमों में वर्णित आख्यान संदर्भों को सहज-सुबोध भाषा में तथा विविध राग-रागनियों में आबद्ध कर सरस और मनोहारी बना दिया है।

आचार्य भिक्षु ने आख्यान शृंखला में जिन-जिन नायकों का चरित्र-चित्रण किया है उनमें अद्भूत स्वाभाविकता और उत्कृष्टता का दर्शन होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। प्रस्तुत आख्यान माला में निम्नलिखित कथानकों का प्रस्तुतिकरण है—

१. गोशालक री चौपाई
२. चेडाकोणक री सिंध
३. तामली तापस रो बखाण
४. उदाई राजा रो बखाण
५. सकडाल पुत्र रो बखाण
६. सुबाहु कुमार का बखाण
७. मृगा लोढ़ा रो बखाण
८. उंबरदत्त रो बखाण
९. धना अणगार रो बखाण
१०. मल्लिनाथ रो बखाण
११. थावच्चापुतर रो बखाण
१२. द्रौपदी रो बखाण
१३. तेतली प्रधान रो बखाण
१४. जिनरिख जिनपाल रो बखाण
१५. नंद मणिहार रो बखाण
१६. पुंडरीक-कुंडरीक रो बखाण
१७. सुदर्शनचरित
१८. सास-बहू रो बखाण
१९. जम्बूकुमारचरित
२०. भरत चरित

अस्तु आचार्य भिक्षुकृत व्याख्यान-शृंखला अत्यन्त रसप्रद और मौलिक है। आख्यानों के माध्यम से जो ऐतिहासिक, तात्त्विक, सैद्धांतिक, सामाजिक, भौगोलिक और आध्यात्मिक दिशा-निर्देश हैं वास्तविकता व स्वाभाविकता से जुड़कर वे जीवन के हर मोड़ को उजागर करने वाले हैं। स्थान-स्थान पर स्वामीजी की काव्य-चेतना विविध रसों में मुखरित हुई है। साहित्यिक प्रतिभा का ज्वलंत उदाहरण है, प्रस्तुत ग्रन्थ। आचार्य भिक्षु नैसर्गिक प्रतिभा संपन्न सहज कवि थे। उन्होंने अपनी कृतियों में जिस सहजता और सरलता से विषयवस्तु का प्रतिपादन किया है, हर इन्सान के लिए सहज एवं बोधगम्य है।

आचार्य भिक्षु एक कुशल प्रशासक थे। उन्होंने जिस आचार-संहिता का निर्माण किया उसमें तनिक सी शिथिलता भी उन्हें सह्य नहीं थी। अनेक ऐसे प्रसंग हैं जहाँ आचार्य भिक्षु ने सामान्य गलती पर भी कितनी कठोरता की। संघ में आचार शैथिल्य को उन्होंने कभी स्थान नहीं दिया।

आचार्य भिक्षु के युग का प्रसंग है—साध्वी मेणांजी ने आचार विषयक कुछ गलतियाँ की। ज्यों ही आचार्य भिक्षु परिस्थिति से अवगत हुए, तत्काल कठोर अनुशासनात्मक कार्यवाई की। संघ की पवित्रता अक्षुण्ण रखने के लिए प्रतिकारात्मक एक पत्र प्रेषित किया। पत्र के कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

आर्या मैणांजी, धन्नांजी, फूलांजी, गुमानांजी गोगुंदा मांहे रहे तो वैशाख सुध १५ पछै चोपड़ी रोटी नै जाबक सूंखड़ी वैहरण रा त्याग छै। मारगिया रै आठ दिन टाल नै नवमें दिन जाणो, एक रोटी तथा एक रोटी रो बारदानो (सामग्री) बहरणो पिण इधको न वैरणो। कदा पाणी री भीड़ पडे तो दूजे पांतरे जाणो। पाणी धोवल ल्यावणो पिण बीजो कांई न ल्यावणो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे लिखा है—फूलांजी ? गुमानांजी ! ये पाधरा न चालिया तो थांरो वसेख फितुरो हो तो दीसै छै। तिण सूं थे घणां सावधान रही जो।

अस्वस्थ की अग्लान भाव से वैयावृत्य पर आचार्य भिक्षु ने विशेष बल दिया है। यही कारण है, इस संघ में दीक्षित होने वाला हर एक सदस्य निश्चिन्तता का अनुभव करता है। जहाँ कहीं उपेक्षा महसूस होती है, तत्काल ध्यान दिया जाता है। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

आरज्या मांदी हुवै तिण नें गोचरी उठावणी नहीं, मांदी सूं कोई काम करावणो नहीं, उण से पिण काम साजी हुवै, त्यां कनै करावणो।

आचार्य भिक्षु ने संघ को सुव्यवस्थित बनाने के लिए अनेक संविधान निर्मित किए, जिन्हें लिखित कहकर अभिहित किया गया। सबसे पहला लिखित सं. १८३२ में लिखा गया।

कुल १० लिखित लिखे जैसे:—

सं. १८३२ में युवराज-पद अरपण रो लिखित
सं. १८३४ में साध्वियां रो लिखित
सं. १८४१ में साधुवां रै पारस्परिक व्यवहार रो लिखित
सं. १८४५ में सेवा व्यवस्था रो लिखित
सं. १८५० में साधुवां री मरजादा रो लिखित
सं. १८५२ में साधवियां री मरजादा रो लिखित
सं. १८५९ में सामूहिक मरजादा रो लिखित
सं. १८५९ में विगय आदिक री मरजादा रो दूसरो लिखित
सं. १८२९ में अखेरामजी रो लिखित
सं. १८३३ से आर्या फतूजी आदि रो लिखित

अन्तिम दो लिखित व्यक्तिगत प्रेरणा के हैं। आचार्य भिक्षु ने साध्वी फतूजी आदि साध्वियों को दीक्षा देने से पहले कई हिदायतें दी। कुछेक जैसे—

उभी नै कीड़ी न सूझे जद संलेखणा मंडणो।
विहार करण री सगत नहीं, जब संलेखणा मंडणो॥ आदि-आदि।

अस्तु आचार्य भिक्षु का राजस्थानी साहित्य दार्शनिक, सैद्धांतिक, तात्त्विक विषयों की मौलिक सामग्री प्रस्तुत करता है। आचार्य भिक्षु की उत्क्रांति का मूल आधार था—भगवान महावीर का दर्शन। तत्त्वों का सरल व सूक्ष्म विवेचन उनकी अनन्य विशेषता थी। आगमन समुद्र में अवगाहन करने की उनकी विरल क्षमता थी। उनकी दार्शनिकता गहरे स्वाध्याय से प्रगट हुई। उन्होंने जो कुछ कहा भोगा हुआ सत्य अभिव्यक्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य भिक्षु की कृतियों का काव्यात्मक मूल्यांकन

☐ साध्वी निर्वाणश्री

विक्रम की १८ वीं-१९ वीं सदी के महान् राजस्थानी कवि आचार्य भिक्षु का जीवन काल वि० सं० १७८३ से १८६० है। वे जन्मजात कवि थे। रीतिशास्त्र और अलंकारशास्त्र का विधिवत् प्रशिक्षण प्राप्त किए बिना ही कवित्व उनके अन्तःकरण में स्फुरित हो गया। काव्य के नियमोपनियमों के विज्ञाता न होने पर भी छन्द योजना, उक्ति वैचित्र्य और अलंकार विधान उनकी रचनाओं में बहुत स्वाभाविक है। सरस और सुबोधशैली में लिखी गई ५५ कृतियाँ उनकी विलक्षण काव्य-प्रतिभा की जीवंत साक्षियाँ है। उनकी अधिकांश कृतियाँ पद्यात्मक हैं। मेवाड़ी मिश्रित मारवाड़ी भाषा में बहता यह काव्य-निर्झर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देने वाला है। कहीं-कहीं गुजराती की हल्की पुट इसके माधुर्य में और भी रस घोल देती है। राजस्थानी के प्रचलित दोहा और सोरठा छन्द के अतिरिक्त विभिन्न राग-रागिनियों का भरपूर उपयोग उन्होंने अपने काव्य में किया है। रास, चौपाई, चोढ़ालिया, सिंध आदि सभी विधाओं में उन्होंने काव्य लिखे हैं।

काव्यकारों ने काव्य-निर्माण के मुख्य तीन हेतु बतलाये हैं—प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास। आचार्य भिक्षु की कृतियों में ये तीनों यत्र-तत्र दृष्टिगत होते हैं। तत्त्व, श्रद्धा, आचार आदि बीसों विषयों को उन्होंने अपनी लेखनी का विषय बनाया है। दार्शनिक विषयों के प्रतिपादन में उनकी प्रतिभा अतुलनीय है। विभिन्न दर्शनों को काव्यात्मक भाषा में प्रस्तुति देकर उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में एक नया स्थान बनाया है।

दार्शनिक विषयों के प्रतिपादन में उनकी प्रतिभा अतुलनीय है। उनकी ब्याहुलो, सास-बहू रो चोढ़ालियो, सांमधरमी, सांमद्रोही री ढाल, उरण री ढाल जैसी रचनाएं उनकी लौकिक विधाओं की पारगामिता की परिचायक हैं।

काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में आचार्यों के विभिन्न मत हैं। वामन ने जहां रीती को काव्य की आत्मा कहा है, वहां आनन्दवर्धन इस आसन पर ध्वनि को प्रतिष्ठित करते हैं। श्री विश्वनाथ के अभिमतानुसार रस काव्य की आत्मा है। आचार्य भिक्ष की रचनाओं में हमें रीति, ध्वनि और रस सबका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाहार दृष्टिगत होता है। उनके एक पद्य में वैदर्भी रीति और विरोधाभास ध्वनि का कैसा सुन्दर समवन्य है—

नाम छे अबला नार पिण, सबली इण संसार।
सबला सुर-नर तेहने, निबला कर दिया नार॥
(सुदर्शनचरित, ढाल ६/१२)

शांतरस का अनिर्वारप्रवाह तो उनकी रचनाओं में है ही, अन्यान्य रसों का प्रयोग करने में भी वे सिद्धहस्त हैं। एक पहुँचे हुए सन्त होने के कारण छिछले शृंगार रस का प्रतिपादन उन्हें अभीष्ट नहीं है। पर उच्च-कोटि के शृंगार रस का वर्णन करने में वे कभी चूकते नहीं हैं। क्षत्रिय और चोर के बीच की संघर्षपूर्ण स्थिति में जो शृंगार रस उनके काव्य में प्रस्फुटित हुआ है, वह कवि हृदयों को छूने वाला, अद्भुत और कल्पनातीत है। वे संवाद शैली में लिखते हैं—

चोर पर्‌यो ते देखने ने खत्री करवा लागो मांण।
चोर कहे—गरबे किसूं ? म्हारे नारी नयणा रा लागा बांण॥
(शील की नवबाड़, ढाल ५/१७)

अपनी शब्द तूलिका से वीभत्स रस को रेखांकित करते हुए वे राक्षस की आंखों के सम्बन्ध में कहते हैं—

बांका भागा भांपणा दीसता बुरा, टीलोडी रे आकार पिछाण।
राती पीली छे बिण री आंखियां, खीजूर ना फल सम जांण॥
(मल्लीनाथ री चौपई, ढाल ९/६)

मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में दोष रहित और गुण समन्वित रचना को काव्य कहा है। आचार्य भिक्षु की रचनाएं पद दोष, वाक्य दोष तथा वाक्यार्थ दोष से विरहित एवं शब्दगुण और अर्थगुण से समन्वित हैं। उन्हें भाषा के अधिनायक कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। सर्वत्र भाषा उनके भावों का अनुसरण करती-सी दृष्टिगत होती है। कथ्य भाषा में सीधे-सीधे रूप से आ गया तो वैसे कह दिया, अन्यथा घुमाकर कहने में भी उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई। पर अपने फक्कड़पन के कारण किसी भी विषय को अनदेखा नहीं किया। सब पर सटीक टिप्पणी की। वृद्धावस्था के सन्दर्भ में की गई स्वभावोक्ति का एक निदर्शन है—

खाट पड्यो खूं खूं करे, हुई सूगली देह।
हाल हुकम चाले नहीं, परिजन फिर दीधो छेह॥

इसी प्रसंग में वे आगे लिखते हैं—

बूढ़ो डिगतो-डिगतो चाले, आंख नाक भरे सिर हाले।
कंपण वाय ज्यूं मस्तक धूणे, जब जाय बैठो घर खूंणे॥
(वैराग री चौपई, ढाल २, दूहा २ तथा ढाल २/१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुलक्षणा स्त्री की चेष्टाओं को वे घुमाकर कहते हैं—

डेली चढ़ती डिग-डिग करे, चढ जाय डूंगर असमान ।
घर मांहे बैठी डर करे, रात जाए मसाण ।।
देख बिलाइ ओजके, सिंध ने सनमुख जाय ।
सांप ओसीसे दे सुवे, ऊंदर सूं भिड़काय ।।

—सुदर्शनचरित, ढाल ६/५,६

अनुप्रास की छटा भी उनके काव्य में दर्शनीय है—

खिण रोवे खिण में हंसे, खिण मुख पाड़े बूंब ।
खिण राचे विरचे खिणे, खिण दाता खिण सूम ।।

—सुदर्शनचरित, ढाल ६/८

भिक्षु के उपमा अलंकार के प्रयोग भी बड़े हृदयहारी हैं । प्रचलित उपमाओं के अतिरिक्त सैकड़ों स्वोपज्ञ उपमाओं का प्रयोग उन्हें महान कवयिता के रूप में प्रतिष्ठित कर देता है । नारी के नयनों को बाणों से उपमित करने वाले सैकड़ों कवि हैं । पर उसके वचन और अंग को उपमित करने वाले एक मात्र कवि हैं आचार्य भिक्षु । वे कहते हैं—

नेण बाण नारी तणा, वचनज तीखा सेल ।
अंग तीखो तलवार सो, इण मार्‌या सकल सकेल ।।

—सुदर्शनचरित, ढाल ६/१४

अविनीतपुत्र जब अपने वृद्ध पिता के सन्दर्भ में कहता है—'म्हारे बारणे रिणाइ ज्यूं बैठो'' तो सांसारिक संबंधों की स्वार्थपरता की धुन साधारण श्रोता को भी उद्‌वेलित कर देती है ।

अविनीत व्यक्ति की प्रकृति को चित्रित करते हुये वे लिखते हैं—

अविनीत ने अविनीत श्रावक मिले, ते पामे घणो मन हरख ।
ज्यूं डाकण राजी हुवै चढ़वाने मिलिया जरख ।।

—विनीत-अविनीत री चौपाई, ढाल ५।२८

प्रकृति चित्रण को काव्य का एक आवश्यक पहलू माना गया है । आचार्य भिक्षु की प्रतिभा इस विषय में बेजोड़ थी । चंपानगरी के धात्रीवाहन राजा के उद्यान की सुषमा का वर्णन करते हुये रानी अभया कहती है—

फूल्यो रहे सखी ! चंपो मरवो अथाय,
फूल्या छै जाई-जुही नै केतकी ।
फूल्या हे सखी ! पाडल फूलड़ा ताय,
फूल्या छे रूंख धवलाने सेतकी ।।

—सुदर्शनचरित, ढाल ७/२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रसंग में आम्रमंजरी, कोयल की कूक, चकवा-चकवी के प्रेमालाप आदिका चित्रण भी बड़ा प्रभावोत्पादक है।

लोकोक्तियों एवं किंवदंतियों के प्रयोग से उनके काव्य-रचना का सौष्ठव और भी बढ़ गया है। उदाहरण के रूप में कुछ अप्रचलित लोकोक्तियां—

बाप तलाई जाण ने खावे गार गिवार।
पूत रा पग जाणो पेट मांही।

अपने पूर्व कवियों की वाणियों का भी बड़ा हुबहू प्रयोग आचार्य भिक्षु ने अपने काव्य में किया है। कबीर की वाणी—"जो घर फूंको आपना—चलो हमारे संग" तथा आचार्य भिक्षु की वाणी—"घर जलाय तीरथ जे करसी, सो साधु जाग मांहे तिरसी" में कितना अधिक साम्य है। ऐसा लगता है कि आकाशीय रिकॉर्ड में रही शब्द-तरंगों को विज्ञान किसी शताब्दी में पकड़ पाएगा अथवा नहीं, पर हमारे सन्त पुरुष ऐसा करने में बहुत सक्षम हैं।

आचार्य भिक्षु ने आगमों के विविध कथानकों को जहाँ राजस्थानी पद्यों में संगुंफित किया है, वहाँ बीच-बीच में क्रांति के स्फुलिंग भी उसमें जगमगाते हुए दृष्टिगत होते हैं। वीतभय नगरी के राजा केशी की निषेधाज्ञा के प्रतिपक्ष में कुंभकार का सत्याग्रही स्वर गूंजता है—

हूं इण साध ने जायगां रहण देसूं, म्हारो कांई करसी राजा रूठो।
भांडा-बासण न सगला गधेड़ा पेहले छेहड़े लेसी लूंटो॥
कदा जीवा मारे तो मरण कबूल छे, साधु तो ऊतारूं घर मांही॥
—उदाई रो बखाण, ढाल ५।१०,११

शकडाल पुत्र की पत्नी अग्निमित्रा अपने पति के धर्माराधना से विचलित होने पर कर्तव्यबोध के स्वरों में कहती है—

तो थे मोंने बचावण उठ्या इण बेलां।
वरतां सांह्मो थे क्यूं नहीं जोयो॥
पोसा मांहे ममता किण री न करणी॥
—शकडालपुतर रो बखाण, ढाल १६।४,६

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि हम उन्हें समाज सुधारक के रूप में, सर्वधर्म समन्वयकारी के रूप में, सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता के रूप में हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य विधायक के रूप में देखते हैं, किन्तु उनका वास्तविक रूप भक्त का है। अन्य सभी रूपों को भक्ति के साधन के रूप में स्वीकार किया है। द्विवेदीजी की यह टिप्पणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य भिक्षु के व्यक्तित्व और वक्तव्य के विषय में भी पूरी तरह से चरितार्थ होती है। आचार्य भिक्षु ने जो कुछ किया और कहा, वह महावीर तथा महावीर वाणी को केन्द्र मानकर किया। उनकी वाणी स्वयं इस बात की स्वयंभू साक्षी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेश रत्न कथाकोश : एक विवेचन

☐ डॉ० किरण नाहटा

तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य जीतमल जी या जयाचार्य राजस्थानी के महान् साहित्यकार हो चुके हैं। आपकी विलक्षण प्रतिभा का परिचय इसी बात से मिलता है कि आपने अपने जीवन काल में राजस्थानी भाषा में लगभग साढ़े तीन लाख पद-प्रमाण साहित्य की रचना की। आपका यह विपुल साहित्य गद्य और पद्य दोनों रूपों में मिलता है। आप द्वारा सृजित, संकलित एवं अनूदित विविध रचनाओं में एक उल्लेखनीय रचना है—उपदेश रत्न कथा कोश। जैसा कि इस रचना के नाम से ही स्पष्ट है, इस विशाल कथाकोश में मूलतः उपदेश प्रधान कथाओं का संकलन हुआ है। यों कथाओं के अतिरिक्त इसमें अनेक उपदेश एवं नीति परक पद्यों का संकलन भी हुआ है। इस प्रकार के उभय पक्षीय संकलन कोश के पीछे संकलनकर्ता का उद्देश्य स्पष्ट रहा है। संकलन कर्ता जयाचार्य मुख्यतः नित्य व्याख्यान देने वाले साधु-साध्वियों के लिए सरस, मनोरंजक एवं उपदेशप्रद सामग्री का बहु उपयोगी कोश प्रस्तुत करना चाहते थे।

उपदेश रत्न कथा कोश में कुल ५६७ कथाएं संगृहीत हैं। इतनी बड़ी संख्या में संगृहीत ये रचनाएं स्वभावतः ही विविध रूपा हैं। कथा, आख्यायिका दृष्टांत, संस्मरण, प्रहेलिका, ऐतिहासिक प्रवाद, पौराणिक आख्यान आदि सबका समावेश इनमें हो गया है।

यद्यपि राजस्थानी भाषा में कथाकोशों की परम्परा नहीं रही है और यह अपने ढंग का अकेला ही कथाकोश है; किन्तु जैन साहित्य में कथा कोशों की सुदृढ़ परम्परा रही है। वस्तुतः यह कथाकोश भी उसी शृंखला की एक कड़ी है। जैन साहित्य में संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश आदि विविध भाषाओं के कथाकोश उपलब्ध हैं। इन कथाकोशों में जिनेश्वरसूरिकृत कथाकोश प्रकरण, राजशेखरसूरिकृत प्रबन्धकोश, हरिषेणकृत वृहत्कोश, नेमिचन्द्रकृत कथामणि कोश, तथा देवभद्रसूरिकृत कथा रत्न कोश आदि प्रमुख हैं।

जयाचार्य के इस कथाकोश की अनेक विशेषताएं हैं जिन पर व्यापक रूप से और विविध दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। यहाँ तो संक्षेप में उसकी कतिपय प्रमुख विशेषताओं को ही रेखांकित किया जा रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेश रत्न कथाकोश में मूलतः अध्यात्म, धर्म और नीति से सम्बन्धित कथाओं का संकलन हुआ है। कथाकोश के विस्तृत कलेवर में शायद ही धार्मिक और नैतिक जीवन का कोई पक्ष अछूता रहा हो। इसमें एक ओर जहाँ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य जैसे जैनधर्म के मूलभूत पाँच महाव्रतों को उजागर करने वाले आख्यान सम्मिलित हैं, वहाँ दूसरी ओर संयम, त्याग, तप, दया, शील, क्षमा, सहिष्णुता, उदारता, विनय, वैराग्य जैसी सद्वृत्तियों के सुपरिणाम दिखलाने वाले अनेक आख्यान सम्मिलित किये गये हैं एवं तीसरी ओर लोभ, माया, मिथ्याचार, छल, छद्म, क्रोध, राग, द्वेष, अहंकार, मिथ्याभिमान, गर्व, कलह, कदाचार, कामान्धता, कुशील, क्रूरता आदि प्रवृत्तियों के अनिष्टकारी परिणामों को प्रदर्शित करने वाली अनेक कथाएं भी संकलित हैं। इसके अतिरिक्त एक ओर गुरु-निष्ठा, धर्म-निष्ठा, व्रत-निष्ठा एवं न्याय के प्रति विश्वास जागृत करने वाली कहानियाँ सम्मिलित की गयी हैं तो दूसरी ओर वाक् संयम, वाक् माधुर्य, नेकनीयती, ईमानदारी आदि सद्गुणों को प्रोत्साहित करने वाली कहानियाँ भी सम्मिलित की गयी हैं। इसी प्रकार सुपात्र-दान, रात्रि-भोजन-परिहार जैसे विषयों से सम्बन्धित कहानियों के माध्यम से जैन संस्कारों के प्रति आस्था जगाने का प्रयास हुआ है और अमानत में खयानत न करना, किसी के प्रति कृतघ्नता का परिचय न देना जैसी नैतिक मान्यताओं को सम्पुष्ट करने वाली कहानियों के माध्यम से उत्थान की भूमिका तैयार की गयी है। यही नहीं आदर्श राज्य व्यवस्था में राजा और उसके पार्षदों का जनता के प्रति कैसा व्यवहार हो— इस प्रकार के लोक हितकारी विषयों को भी अछूता नहीं छोड़ा गया। इस विषय वैविध्य को देखते हुए अगर इस कथाकोश को आदर्श मानव जीवन का विश्वकोश कह दें तो अतिशयोक्ति न होगी। आदर्शों के प्रति लेखक की प्रतिबद्धता इस सीमा तक है कि उसे धर्म के नाम पर चलने वाले पाखण्ड और वितण्डावाद पर निर्मम प्रहार करने में किंचित् भी संकोच का अनुभव नहीं हुआ है।

यहाँ तक उपदेश रत्नकथा कोश के विषय-विस्तार की एक झलक प्रस्तुत की गयी है। आगे के विवेचन में उसकी प्रवृत्तिगत विशेषताओं पर थोड़ा विस्तार से विचार करते हैं। प्रस्तुत कथाकोश में दो तरह की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं—एक जैन कथा-साहित्य की प्रवृत्तियाँ और दूसरी सामान्य भारतीय कथा-साहित्य की प्रवृत्तियाँ।

जैन कथाओं की यह प्रवृत्ति रही है कि अन्त में उनके मुख्य पात्रों को प्रायः जैन धर्म में दीक्षित होते हुए चित्रित किया जाता है। गृहस्थ जीवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को त्याग साधु जीवन अपनाने वाले ये सभी पात्र सत्कर्म के प्रभाव से 'देवलोक' या 'मोक्ष' के अधिकारी बनते हैं। साधु जीवन अपनाने के इस प्रसंग में यह बात विशेष रूप से ध्यातव्य है कि जैन धर्मावलम्बी रचनाकारों द्वारा सर्जित साहित्य में जैन तीर्थंकरों और उनके प्रसिद्ध अनुयायियों को ही जैन भागवती दीक्षा लेते हुए चित्रित नहीं किया गया है वरन् पुरुषोत्तम रामादि अवतारों और उनसे सम्बन्धित अनेक लोगों को भी जीवन के उत्तरकाल में दीक्षित होते हुए चित्रित किया गया है। उपदेश रत्न कथाकोश में भी ऐसी शताधिक कहानियाँ हैं, जिनके कथानायक भरपूर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जीकर, जीवन के उत्तरार्द्ध में जैन भागवती दीक्षा अंगीकार कर आत्म-कल्याण में प्रवृत्त हुए हैं।

जैन कहानियों की एक और सामान्य प्रवृत्ति शासन अनुरागी और शासन-द्वेषी देवताओं के माध्यम से कथानक को गतिशील और रोचक बनाने की रही है। इन कहानियों में जहाँ जैन शासन अनुरागी देवता जैन धर्म के सिद्धांतों पर चलने वाले साधु या श्रावक की सहायता करते हैं, वहीं जैन शासन-द्वेषी देवता अपनी सहज ईर्ष्या बुद्धि से प्रेरित होकर जैन धर्म के अनुयायी एवं अनुरागी श्रावकों एवं साधुओं को नाना मानसिक क्लेश देकर उन्हें स्वधर्म से विचलित करने की कोशिश करते हैं, यद्यपि ऐसे सारे प्रसंगों में अन्त में ये द्वेषी देवता मुँह की खाकर लौटते हुए चित्रित किये गये हैं।

जैन कहानियों की एक और प्रवृत्ति, जो हमारा ध्यान आकर्षित करती है, वह है पूर्वभव-वृत्तांत कथन की प्रवृत्ति। अनेक कहानियों में ऐसे प्रसंग या स्थल आते हैं जहाँ कोई प्रमुख पात्र अपने वर्तमान जीवन के अप्रत्याशित सुख या दुःख के हेतु को नहीं जान पाता है। ऐसे क्षणों में उसके मन में या उससे सम्बन्धित अन्य किसी पात्र के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि उस पात्र विशेष के तात्कालिक सुख या दुःख का हेतु क्या है। और इसी समस्या के समाधान हेतु किसी केवलज्ञानी को वहाँ उपस्थित किया जाता है। तब वह 'केवलज्ञानी' उसके पूर्वभव का वृत्तान्त सुनाकर जिज्ञासा का शमन करता है। इस प्रकार पूर्वजन्म-वृत्तांत कथन के इस शिल्प के माध्यम से कथा को अपेक्षित विस्तार ही नहीं दिया जाता है, अपितु पाठक के कुतूहल भाव को भी बढ़ाया जाता है। कतिपय कहानियों में 'केवली' द्वारा पूर्व-भव वृत्तान्त कथन के स्थान पर स्वयं पात्र द्वारा 'जाति-स्मरण-ज्ञान' के माध्यम से अपने पूर्वजन्म के वृत्तांत को जान लेने के कथा-अभिप्राय का प्रयोग भी होता है।

उक्त जैन कथा-प्रवृत्तियों से इतर भारतीय कथा साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों का निर्वाह भी इन कहानियों में यत्र-तत्र देखने को मिलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कथाकोश की अधिकोश कहानियाँ सुखान्त हैं। इन कहानियों में प्रायः भलाई का परिणाम अच्छा और बुराई का परिणाम बुरा चित्रित हुआ है। इसकी बहुत सी कहानियों में पशु-पक्षी, भूत-प्रेत, देव-गन्धर्व आदि मानेवतर पात्रों का समावेश भी हुआ है और कुतूहल तथा रोचकता की अभिवृद्धि हेतु अलौकिक घटना-प्रसंगों के माध्यम से कहानियों को वांछित जोड़ भी प्रदान किया गया है। इस हेतु अतिमानवीय एवं अलौकिक घटना-प्रसंगों के संयोजन की प्रवृत्ति की भांति ही उसे गतिशीलता प्रदान करने के लिए या उसे चामत्कारिक बनाने के लिए कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग किया जाता है।

जयाचार्य द्वारा संकलित इन कथाओं में भी अनेक कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है। इनमें कतिपय प्रमुख साभिप्राय हैं—निःसंतान अकाल मृत्यु प्राप्त राजा के उत्तराधिकारी चयन के लिए हाथी द्वारा कथानायक के गले में माला डालना या ऐसे ही अन्य किसी प्रयोग द्वारा अपने राजा का चयन करना। बुद्धिमती नायिका द्वारा पुरुषवेश धारण कर प्रवासी पति या पति परिवार को संकट से मुक्त करवाना, पुरुष वेशधारी चतुर एवं साहसी नायिका द्वारा एक या एकाधिक स्त्रियों से विवाह कर विपुल ऐश्वर्य या राज्यादि प्राप्तकर सभी सपत्नियों के साथ अपने पति के पास लौटना, पशु या पक्षी द्वारा किसी मानवोपयोगी रहस्य का उद्घाटन एवं उसकी भाषा से विज्ञ नायक या नायिका द्वारा उस रहस्यपूर्ण कथन के सहयोग से कार्य विशेष में सफलता या वैभवादि को प्राप्त करना, व्यापार या धनोपार्जन हेतु समुद्र यात्रा कर रहे नायक को धन या सुन्दर स्त्री के लोभ में समुद्र में धकेला जाना और उसका दैवयोग से सकुशल लौटकर अपने धन या स्त्री को पुनः प्राप्त करना तथा उस खलनायक को प्रताड़ित या दण्डित करना।

उपदेश रत्नकथा कोश की इन सामान्य प्रवृत्तियों के विवेचन के साथ ही उसकी उन विशेषताओं की चर्चा भी उपयुक्त होगी जो इसे एक विशिष्ट रूप प्रदान करती हैं। इसमें संगृहीत अधिकांश कहानियाँ संक्षिप्त रूप में संकलित हैं। इन कहानियों में सामान्यतः विशद् वर्णनों का अभाव रहा है और प्रायः वर्णन-न्यूनता के अनुपात में ही कथा रस की न्यूनता भी रही है। इस प्रकार संक्षिप्तता इन कहानियों का प्रधान गुण रही है। संक्षिप्तता के पीछे कुछ स्पष्ट कारण भी रहे हैं। प्रथम तो यह संकलन मूलतः जैन साधु-साध्वियों के लिए किया गया था। जैन साधु पाद-विहारी होते हैं और उन्हें विहार के समय अपने सारे सामान स्वयं ही कन्धों पर ढोकर ले जाने होते हैं, ऐसी स्थिति में विस्तृत कलेवर वाले ग्रन्थ भी उनके लिए असुविधा का कारण बनते हैं। फलतः जहाँ एक ओर उन्होंने उन ग्रन्थों को सूक्ष्म सुलेख की सहायता से यथासंभव कम-से-कम पत्रों में संकलित करने का प्रयास किया है, वहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत सी सामग्री को सूत्र रूप में या संक्षिप्त रूप में संकलित किया है। द्वितीय जैन साधु चूंकि परम्परा से ही व्याख्यान पटु होते हैं, अतः कथाकोश-कार की यह अपेक्षा भी उचित ही प्रतीत होती है कि ऐसे व्याख्यान पटु साधु-साध्वी प्रसंग और परिस्थिति के अनुरूप इन कथाओं का विस्तार स्वतः कर लेंगे। तृतीय जैन साधुओं की अपनी मर्यादाएं हैं। वे रस सिक्त कर देने वाले या आसक्ति बढ़ाने वाले प्रसंगों का विस्तार से वर्णन नहीं कर सकते। अतः ऐसी स्थिति में संक्षिप्तता एवं सांकेतिकता सहज अपेक्षित हो जाती है।

उपदेश रत्न कथाकोश की दूसरी जो प्रमुख विशेषता हमारा ध्यान आकर्षित करती है वह है उसमें संकलित बुद्धि-कौशल से सम्बन्धित कथाओं की विपुलता। एक धर्म गुरु द्वारा संकलित कथाकोश में ऐसी कथाओं की प्रचुरता सहज रूप से यह उत्सुकता जगाती है कि धर्म, नीति और उपदेश मूलक कथाओं के साथ-साथ बुद्धि-चातुर्य से सम्बन्धित कथाओं को बहुलता के साथ क्यों संगृहीत किया गया है। जब इस दृष्टि से विचार करते हैं तो कई तथ्य उभरकर सामने आते हैं। प्रथम में तो जैन परम्परा में औत्पत्तिकी, वैनायिकी, कर्मजा और पारिमाणिकी इन चार प्रकार की बुद्धियों का उल्लेख हुआ है। जैन आगम तथा आगमेतर साहित्य में इनसे सम्बन्धित अनेक व्याख्यान मिलते हैं। अतः जयाचार्य ने भी यहाँ उसी परम्परा का अनुसरण किया है। द्वितीय जयाचार्य स्वयं विलक्षण प्रतिभा एवं अनुपम बुद्धि के धनी थे। अतः उनका ऐसी कथाओं की ओर आकृष्ट होना सहज स्वाभाविक है। तीसरे संभवतः जयाचार्य ने यह भी महसूस किया कि व्याख्यानों को रोचक बनाने के लिए केवल धर्म, उपदेश, नीति या अध्यात्म सम्बन्धी कथाओं से ही काम नहीं चलेगा, अपितु अनेक बार जनमानस को प्रभावित करने के लिए इनसे भिन्न, बुद्धि को चमत्कृत कर देने वाले कथानकों का चयन भी अपेक्षित है। इसी दृष्टि से उन्होंने जैन कथाओं से भिन्न विशुद्ध लोककथाओं, ऐतिहासिक प्रसंगों एवं लोक-जीवन की प्रेरक घटनाओं का समावेश भी इस कोश में किया है।

उपदेश रत्न कथाकोश को पढ़ते समय जयाचार्य के असाम्प्रदायिक और उदार दृष्टिकोण से भी सहज ही साक्षात्कार होता है। यों तो उनकी कथाओं के मूलस्रोत जैन साहित्य, जैन इतिहास एवं जैन पुराण ही रहे हैं, किन्तु इसके साथ ही साथ उन्होंने प्रसंगानुकूल हिन्दु धर्म एवं इस्लाम धर्म से सम्बन्धित अनुकरणीय एवं आदर्श कथानकों का संकलन भी इस कथाकोश में किया है। लोक-जीवन एवं इतिहास से भी उन्हें जहाँ कहीं भी प्रेरक एवं उपयोगी सामग्री मिली है उसका भी उपयोग करने में उन्हें किंचित् संकोच का अनुभव नहीं हुआ है। उनकी इस उदार दृष्टि का परिचय उनके कथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकलन की भांति उनके पद्य-संकलन में भी मिलता है। प्रसंगानुकूल पद्यों के संकलन में तेरापंथी साधुओं से भिन्न अन्य जैन मतावलम्बी साधुओं एवं श्रावकों की रचनाओं का संकलन भी इस कथाकोश में उसी उत्साह एवं तत्परता से किया गया है। यही नहीं सूर, तुलसी, कबीर, बिहारी आदि कवियों की रचनाओं के संकलन में भी उन्हें कहीं संकोच का अनुभव नहीं हुआ है। इसी प्रकार संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी और ब्रजभाषा के अनेक पदों का संकलन भी उनकी बहुज्ञाता, उदारता और तत्त्व-ग्राहिणी दृष्टि का परिचायक है।

इस कथाकोश की एक विशषता यह भी है कि कोशकार ने अनेक कथाओं को दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत कर अन्त में उनकी व्याख्या भी अपने ढंग से की है। ये सारी व्याख्याएं स्वभावतः उपदेशप्रद रही हैं। इनमें भी जयाचार्य ने सर्वाधिक महत्व शिष्य की गुरुभक्ति, आचार्य-निष्ठा एवं उसकी अनुशासन-प्रियता पर दिया है। ऐसे अनेक उदाहरणों में उन्होंने सुविनीत एवं अविनीत शिष्यों के गुणावगुणों का विवेचन किया है। कथाकोश में ऐसे व्याख्या परक उदाहरणों की बहुलता से दो बातें ध्यान में आती हैं। प्रथम तो कोशकार ऐसे उदाहरणों को बार-बार दुहराकर अपने शिष्यों-प्रशिष्यों को समर्पित वृत्ति वाला बनाना चाहते थे। दूसरा, ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं उनके मन में शिष्यों द्वारा नव-पन्थ प्रवर्तन की चाह भर से गुरु-द्रोह या आचार्य-द्रोह किये जाने का अंदेशा भी था। उसी से प्रेरित होकर शायद अवचेतन रूप से ही उन्होंने इस एक पक्ष पर आवश्यकता से अधिक बल दिया। यद्यपि पूरे उपदेश रत्न कथाकोश में ऐसे पचासों उदाहरण मिल जायेंगे, फिर भी यहाँ उदाहरण रूप में एक का उल्लेख ही पर्याप्त होगा।

"ज्यूं मोती लाल पंचपदांरी आसता राखी तो सुखी हुवो। भारी साहिबीं पाई। त्यूं धर्म री आचार्य री आसता राखै, प्रतीत राखै, अनुकूल पणै प्रवर्तै, करड़ी काठी सीख दियां पिण कलुस भाव आणै नहीं। मन, वचन, काया करकै आचार्य नै आराधै। जिण एक आचरण आराध्या तिण सरब नै आराध्या।"

शिष्यों को उद्‌बोधित करने वाली इन व्याख्याओं के अतिरिक्त भी अनेक कहानियों में धार्मिक एवं नैतिक जगत् से सम्बन्धित व्याख्याएं की गयी हैं। ऐसी व्याख्याओं में आचार्य की महिमा एवं दायित्व, साधु जीवन की विशेषता एवं उसमें आने वाली कठिनाइयों, श्रावक के आचार एवं विचार. साधुओं और आचार्यों के पारस्परिक सम्बन्ध, शुद्ध साधु और साधुत्व की विशेषता, गण बहिष्कृत एवं मिथ्यादृष्टि साधु के व्यवहार आदि अनेक पक्षों पर गम्भीरता से विचार किया गया है।

उपर्युक्त धार्मिक जगत् से जुड़े विविध विषयों की भाँति जयाचार्य ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नैतिक जीवन से जुड़े अनेक पक्षों का विश्लेषण भी इन कहानियों में किया है। ऐसे प्रसंगों में अहंकार के दुष्परिणाम, क्रोध से होने वाले अनर्थ, क्षमा से होने वाले लाभ, लोभ से होने वाले अनिष्ट जैसे अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही अमानत में खयानत न करना, झूठी गवाही न देना, बिना विचारे कोई बात न कहना, सुनी-सुनाई बात पर विश्वास न करना, अप्रिय संभाषण न करना जैसी अनेक नीतिप्रद एवं हितप्रद बातों का खुलासा भी किया गया है। ऐसी कहानियों में कहानीकार पहले शिक्षा रूप में ऐसे कथन प्रस्तुत करते हैं—

"आचारज देव उपदेश में दूहो कह्यो—
झूठा बोला मानवी, नहीं ज्यां री प्रतीत।
मनुष्य जमारो हार नैं नरकां हुवै फजीत ॥"

और अनेक कहानियों में कथा की समाप्ति पर अपनी सम्मति जाहिर करते हुए पाठक को उद्बोधित किया गया है। उदाहरणार्थ--'अविचार्यौ काम कीधौ, तो पछ्यातापाप पायो। यूं जांण नैं अविचार्यौ काम न करणो।" और भी—'इम सतगुरु पासै विनय करी विद्या भणवी। बिना विनय विद्या सिद्ध हुवै नहीं।"

ऐसे सभी उदाहरण और ये सभी व्याख्याएं कथाकोशकार की मान्यताओं एवं उनकी जीवन दृष्टि को रूपायित करती हैं।

यों तो कथाकोशकार का सामान्य उद्देश्य उद्बोधन कथाओं का संकलन करना ही रहा है, किन्तु इन कथाओं में आये प्रसंगों और वर्णनों से जयाचार्य युगीन सामाजिक जीवन की विभिन्न स्थितियों का ज्ञान भी होता है। तात्कालिक समाज और विशेष रूप से जैन समाज के विश्वासों, मान्यताओं आदि को जानने की दृष्टि से यह कथाकोश काफी उपयोगी प्रमाणित हो सकता है। सेठ साहूकारों, राजा-महाराजाओं के अतिरिक्त सामान्यजन के जीवन की विविध झांकियाँ इन कहानियों में देखने को मिलती हैं।

जयाचार्य के इस कथाकोश को जैन संस्कृति का कोश भी कहा जा सकता है। जैन धर्म, दर्शन और संस्कृति के अनेक प्रसंगों का इसमें सहज ही समावेश हो गया है। जैन साधुओं और जैन श्रावकों के विविध आचारों का वर्णन भी इन कथाओं में हुआ है। इसमें एक ओर सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, कायोत्सर्ग आदि विविध तरह से जैनाचार का वर्णन हुआ है तो दूसरी ओर शुक्लध्यान, केवलज्ञान, वैक्रियलब्धि, जाति-स्मरण-ज्ञान आदि विशिष्ट जैन तत्त्वों का उल्लेख भी हुआ है। जैन धर्म के परिवेश में रहने वाले व्यक्ति के लिए तो जहाँ ये सारे प्रसंग सुपरिचित हैं वहाँ जैनेतर पाठकों के मन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म एवं संस्कृति के प्रति जिज्ञासा भाव को प्रबल करते हैं।

जैन धर्म, दर्शन और संस्कृति के विविध उपादानों पर प्रकाश डालने वाला यह कथाकोश लोक-व्यवहार की भी समीचीन व्याख्या करता है। इस कथाकोश से लोक-व्यवहार की अनेक हितकारी एवं उपयोगी बातों की जानकारी भी होती है। विभिन्न परिस्थितियों में एवं विविध जनों के साथ कब-कैसा व्यवहार उचित होता है, इसका ज्ञान भी इन कथाओं से होता है।

अब थोड़ी सी चर्चा कथाकोश की भाषा के सम्बन्ध में कर ली जाए। जयाचार्य चूंकि कई भाषाओं के ज्ञाता थे। अतः उनकी भाषा में विविधता के दर्शन होते हैं। कहीं संस्कृत के तत्सम शब्दों की छटा है तो कहीं ठेठ देशी शब्दों का ठाठ। राजस्थानी में भी कहीं मारवाड़ी की प्रधानता है तो कहीं ढूंढाड़ी के रंग देखने को मिलते हैं। गुजराती का प्रयोग तो अपेक्षाकृत बहुलता से हुआ है। इसके स्पष्ट कारण भी हैं। एक तो कुछ शताब्दियों पूर्व राजस्थानी और गुजराती भाषा एक ही थीं। अतः इनमें परस्पर काफी साम्य है। द्वितीय जैन साधुओं के लिए राजस्थान और गुजरात समान रूप से विचरण के क्षेत्र में रहे हैं। अतः अन्य लोगों की अपेक्षा उनकी भाषा पर गुजराती का प्रभाव कुछ अधिक ही है। कथाकोश की इन कहानियों में जहाँ एक ओर अहंकार, नित्य, सूर्य, पुनः, संयुक्त, दोष, द्रव्य, दृष्टि, श्रद्धा, मिथ, दृष्टान्त, युक्ति जैसे अनेक तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है, वहीं बखाण, मिनख, आचारज, तृखा, कुरणा, मुगती, मेह, धवलो, साख्यात आदि अनेक तद्भव शब्द भी काम में आये हैं। संस्कृत तत्सम शब्दों के शुद्ध प्रयोगों के साथ ही जयाचार्य ने अनेक तत्सम शब्दों का राजस्थानीकरण भी किया है। जिन शब्दों के सहज-सरल तद्भव रूप नहीं बने हैं, उन्हें सायास विकृत करने के स्थान पर उनमें किंचित् परिवर्तन कर राजस्थानी प्रवृत्ति के अनुरूप ढाला है। यथा—प्रवर्तै, प्रसंस्या, परूपै, बनीताई जैसे अनेक प्रयोग दृष्टव्य हैं। तत्सम एवं तद्भव शब्दों की भाँति ठेठ राजस्थानी और गुजराती के शब्द भी उनकी विशाल शब्द-सम्पदा के साक्षी हैं। राड़, नीवांण बराण, राल्या, ऊंदरा, ब्याळू, सोड़ियो, अंवळो जैसे राजस्थानी के अनेक ठेठ शब्दों का प्रयोग इन कहानियों में हुआ है। राजस्थानी के ठेठ शब्दों के साथ ही गुजराती के शब्द भी अपनी मौजूदगी का अहसास स्थान-स्थान पर करवाते हैं। अनै, हिवै, पामैं, नत्थी, पोते, अनेरा, आदि ऐसे ही शब्द हैं। इन सबसे भिन्न अरबी-फारसी के अनेक शब्द भी इन कहानियों में प्रयुक्त हुए हैं। विशेष रूप से मुस्लिम जीवन या संस्कृति से संबन्धित प्रसंगों में बीबी, बांदी, खुदा, साहिब, वजीर, अर्ज, गुनाह, हुक्म आदि शब्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ है।

कथाकोश की भाषा एक अन्यदृष्टि से भी उल्लेखनीय बन पड़ी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें अनेक ऐसे शब्द भी आये हैं जो राजस्थानी के वर्तमान शब्दों के पूर्व रूपों को उजागर करते हैं। इन प्रयोगों से अनायास ही यह जाना जा सकता है कि वर्तमान में प्रयुक्त इन शब्दों का विकास क्रम क्या रहा है? या उनमें क्या विकार आ गया है? कितोयक (कितोक), रुपइया (रिपिया) धवला (धोळा), रहिवाद्यो (रैवाद्यो) बाहिला (भायला), साहमी (सामी) ताहिरै (थारै) एहने (इन्नै) अम्हारै (म्हारै) मौनै (मन्नै) जैसे शब्द अतीत से वर्तमान की यात्रा-गाथा स्वयं ही कहते हैं।

आलेख काफी लम्बा हो रहा है। अतः कथाकोश की दो एक बातों की चर्चा केवल संकेत रूप में करेंगे। जहाँ तक इन कथाओं के शिल्प-विधान का प्रश्न है वह विविध रूपा है। कहीं मूलकथा के साथ अवांतर कथाओं के संयोग से कथा-कलेवर का विस्तार ही नहीं हुआ है अपितु उसे बहु आयामी भी बना दिया गया है, तो कहीं-कहीं उद्देश्य पर ही दृष्टि केन्द्रित कर बात को अतिसंक्षेप में प्रस्तुत कर उसे लघुकथा के अतिसन्निकट लाकर खड़ा कर दिया गया है। कहीं प्रश्नोत्तर या प्रहेलिका शैली का उपयोग कर कथाओं में चमत्कृति लाने का प्रयास हुआ है, तो कहीं-कहीं घटनाओं का तथ्यात्मक ब्यौरा देकर उन्हें इतिहास की सीमा रेखा में ला उपस्थित किया है। कुछ कहानियाँ संस्मरणों के निकट पहुँची हुई हैं तो कुछ एक चुटकले भर प्रतीत होती हैं। इन सबका कारण संकलित कथाओं की विशाल संख्या में निहित है।

जैसा कि पहले भी संकेत किया जा चुका है कि यह कथाकोश में सुनी-सुनाई कथाओं का संकलन है। अतः इसमें कथानकों की मौलिकता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ इनकी शैली जयाचार्य की अपनी है। जयाचार्य ने सामान्य रूप से छोटे-छोटे सरस वाक्यों का प्रयोग किया है। दुरूह, जटिल एवं लम्बे वाक्यों का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है। छोटे-छोटे वाक्यों के माध्यम से बात को सरस एवं सुबोध रूप में प्रस्तुत करने में जयाचार्य सिद्ध हस्त रहे हैं। एक उदाहरण लीजिए—'वेनाटपुर नगर। मूलदेव राजा। देवदत्त गणिका। राज ऋद्ध सुख भोगवै। नगर में एक मण्डूक नामा चोर। दिन रा पगां में पाटा बांध राजमारग पर बैठो तूंणगर रो काम करै। रात रा नगर में खांत दे, धन ले, बावड़ी रै भूंहरा में जाय, आपरी बहिन सहित रहै। यूं चोरी करतां घणोकाल व्यतीत हुओ।" इस प्रकार छोटे और सुगठित वाक्य-विन्यास से निष्पन्न यह सरसता और रोचकता बीच-बीच में प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियों से और अधिक बढ़ जाती है।

अन्त में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जयाचार्य का 'उपदेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्न कथाकोश' अपनी इन्हीं सब विशेषताओं के कारण राजस्थानी की एक अमूल्य निधि है। धर्म, नीति और अध्यात्म की तो यह त्रिवेणी ही है, लोक रंजन के साथ-साथ लोक-मंगल का सुन्दर समन्वय इसमें हुआ है। जीवन में उच्चादर्शों को प्रतिष्ठित करने का यह स्तुत्य प्रयास है। अपनी संपुष्ट भाव भूमि की भाँति ही अपने साहित्यिक सौष्ठव के कारण भी यह स्पृहणीय बन गया है। इसके साथ ही इसका भाषागत वैशिष्ट्य भी अध्येताओं के लिए एक प्रमुख आकर्षण रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापंथी राजस्थानी साहित्य की रूप-परम्परा

☐ डॉ० परमेश्वर सोलंकी

बारै कोसां बोली पलटे, वनफल पलटे पाकां।
बरस छत्तीसा जोवन पलटे, लखण न पलटे लाखां॥

कहावत सांच सांची, पिण साहित्य की रूप-परंपरा भासा रै लखण ज्यूं दर्शाव देवै। विक्रम संवत् १००० सूं सईका १६०० तांई रा सिलालेखां रै एक अध्ययन सूं म्हांनै आ बात समझ पड़ी। सं० १०१५ री हट्टां-देवळ, सं० ११०३ को नोहर-लेख अर सं० १२१० को खेड़-बालोतरा को वालिग सासण लिख्यो-पढीजै कै—"जतंग अषवत मकत: पवए"; "अमनाथ आधेस पथर के चौकए: गुमठे चढई:"; "खेड़ि जु राणो होई सु जुको वालिगुलेई कुहाडुलेई ताकि केरिय गदह चढई:"—अे तीन ओल्या आजपिण कमोबेस ज्यूं री त्यूं बोली जै।

कागज पै लिखिया ग्रन्थां मांय राजा भोज रै सभाकवि धनपाल रो 'सच्चउरिय महावीर'; जैसलमेर भण्डार मं मिलियो भरतेश्वर बाहुबली घोर'; 'जिनपतिसूरि बधावणो'; विजयसेन सूरि को 'आबूरास' अनै 'रेवंत-गिरि रास'; 'शालिभद्र रास'—राजतिलक रो अर विजयचंद सूरि रो 'बारह व्रत रास पिण सं० १३३८ सूं पैलीरा लिख्या मिलै जिण री भासारो रूप कमो बेस एक सरीसो लखावै। पिण जिका ग्रंथ राजा री आज्ञा सूं लिखिज्या; जिका सिलालेख राजा रै कहवणै सूं उकीरिज्या उणरो भासा रूप संस्कृत री चाल ढाल रो दर्शाव देवै जीयां म्है दमोह—मध्यप्रदेश मं मिलियो एक सिलालेख संपादन करियो। तेरहवीं सदी रै उणलेख री दो एक पंक्ति इण मुजिब पढीजै—"बघडगरू भू विट्ठणो सुहकरण वरणंत"; वघडपटिपरि-ठिअउ खतिउ विजयपालु जेणे काइउ रणि विजिणिउ तहसुतु भुवणपालु"; "चाइसूरो सुभटो सेलखनकज कुशलो गुहिलौतो सव्वगुणो"—इत्याद।

आज री संगोष्ठी रो विषै—'तेरापंथ रो राजस्थानी नै अवदान' इण दीठ सूं धुंधलो-धुंधलो दर्शाव देवै। भासा रो रूप-विकास मधरो घणो होवै अर सदियां रै अंतराल सूं दीख पड़ै, जद कै तेरापंथ रो आखो साहित्य दो सदियां मांय हीज लिख्यो रच्यो गयो ह; पिण म्हांनै आपरो आदेश पालणो जरूरी। फेरूं लारलै अंग्रेजी महिनै री २३ तारीखनै जद म्है आचार्यश्री नै 'तुलसी प्रज्ञा' रो नूंवो अंक भेंट करणै पूग्यो तो उण वेळा कृपा करनै आप म्है नै 'तेरापंथ—प्रबोध' नाम सूं छपियो एक चौपन्नियो दियो अर फरमायो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कै ऊंनै म्है ओळी-ओळी करनै जरूर पढ़ूं। चौपन्निये रै आमुख मांय लिखियोडो है—'तेरापंथ की संक्षिप्त झलक कागज पर उतर गई। सहज सरल राग, संस्कृत प्रधान राजस्थानी भाषा और रचनाशैली में प्रवाह। इतिहास, सिद्धान्त और कुछ संस्मरणों का सम्मिश्रण'—सचमुच आ बात सही लागै। 'तेरापन्थ प्रबोध' री ५७ वीं ओळी कहवै—

'अरे हेमड़ा ! दीक्षा लेसी के, तूं म्हारै मर्‌या पछै
या जीते जी'—बोल्या भिक्षु—'कह दै थारै जिसीजचै।'

फेरूं १०३ वीं ओळी—

'जनम लियो पहाड़ी भूमी पर ? शेरगुफा में ही जनमैं'
सिंहवृत्ति स्यूं संयम पाल्यो मस्त रह्या अपणै पनमें।'

अर १२२ वीं ओळी देखो—

'कामधेनु है विश्व भारती, शिक्षण संस्था वरदाई
युग री मांग समण श्रेणी है, आ पुरखां री पुण्याई।'

—इण ओळ्या मांय सहज सरल राग, संस्कृत प्रधान राजस्थानी भासा अर रचना शैली मं प्रवाह—तीनों दीसै। देख-पढनै म्हारो हाव बढ्यो अर थोड़ो बोऽत तेरापंथ रो राजस्थानी साहित्य पिंण देखियो तो घणकरी बातां समझ पड़ी।

कीं दिनां पैली म्हारा साथी रह्या अर पछै—राजस्थान विश्वविद्यालय मांय म्हारा अध्यापक रह्या आदरजोग जयनारायण आसोपा री संपादन करियोड़ी पोथी—'क्लचुरल हेरीटेज ऑफ जयपुर' देखी। उण मांय छपियोडै एक लेख मं लिखिज्यो ह कै पटोदी रो दिगम्बर जैन मंदिर अर तेरापंथी बड़ो मंदिर—दोन्यूं जयपुर शहर रै निर्माण साथै हीज बण्यां, जिण मांय उण वेला रै लेखक भाई रायमल रै शब्दां मं—"और यहां दस बारह लेखक सदैव सासते जिनवाणी लिखते हैं वा सोधते हैं और एक ब्राह्मण महेनदार चाकर राख्यो है सो बीस तीस लड़के बालकन कूं न्याय व्याकरण, गणितशास्त्र पढ़ाते हैं और सौ पचास भाई व बायां चर्चा व्याकरण का अध्ययन करै हैं।' भाई रायमल आगै लिखै—'अर जैन लोग समूह वसै है। दरबार के मुतसदी जैनी है और साहूकार लोग सबै जैनी है। जधपि और भी है पर गौणता रूप है मुख्यता नाही। छह सात व आठ वा दस हजार जैनी महाजना का घर पाइवै है। ऐसा जैनी लोगों का समूह और नग्र विषै नाही औईइ के देश विषै सर्वत्र मुख्यपणै श्रावती लोग बसे है तातै एह नग्र व देश बहाते निर्मल पवित्र है। तातै धर्मात्मा पुरुष बसने का स्थान है। अबार तो ए साक्षात् धर्मपुरी है।'

उठै रो ही, दूजो कवि बखतराम संवत् १८१८, १८२४ अर १८२६ रै बीचालै जैन अर शैवां रै बीच हुयै संघर्ष रो ब्यौरो देवै—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत् अठारह से गये, उपरिजके अठारह भये ।
तब इक भयो तिवाडी स्याम, डिभी अति पाखंड को धाम ।
लक्ष अधिक द्विज सब तैवांरि, सैर तही साहन की हारि ।
करि प्रयोग राजा वसि कियौ, माधवेसनृप गुरुपद दियो ।
गलवा बालानंद दे आदि, रहे झांकते बैठि वादि ।
सबको ताहि सिरोमणि कियो, फूलिवेसनू राजपद दियो ।
लियो आचमन पांव पखार सौंप्यो ताहि राज सब भार ।
दिन कितेक बीतै है जबे, महाउपद्रव कीनौ तबै ।
हुकम भूप को लेके वाहि, निस जिनाय देवल दिय ढाहि ।
अमल राज को जैनी जहां, नाव न ले जिनमत को तहां ।'

× ×

'कोई आधो कोई सारो, बच्यो जहां छत्री राव नारो
काहूं में सिव मूरति धर दी, अैसी स्याम के गर दी ।'

—इण ब्यौरै सूं मालम पड़ै कै उण वेला जैनों पै मुसीबत पड़ी जीको अन्त पं० टाडरमल री शहादत सूं हुयो अर स्याम तिवाड़ी नै देश निकालो मिलियो । पं० जी री मौत सूं पिण जैन बीस टोला अर तेरापंथ में बंट ग्या । राव कृपाराम, बालचंद, रतनचन्द वगैरह फेरूं दीवाण बणिया अर उणां री सह सूं बाइस टौला रा जैनी लेखक दौलतराम कासलीवाल, बख्तराम शाह, पार्श्वदास, रिषभदास, जयचन्द छाबड़ा वगैरह राजस्थानी भासा नै छोड़ हिन्दी मांय लिखणो सरू कर दीनो जिणसूं उठै राजस्थानी भासा तेरापंथिया री भासा बणगी ।

'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर' मांय मुनि चौथमल लिखै कै "स्वामी भीखण-जीरी तात्त्विक कृतियां ३४ है जो संवत् १८३२ से १८५७ के मध्य रची गई है ।" श्रावकना बारे व्रत अर विनीत अविनीत री चौपाई सं० १८३२ म जदकै श्रधारी चौपई स० १८५७ म रचीजी पिण 'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर' म भासारो भेद कोनी करीज्यो जीयां—

सं० १८३२—

उत्तराधेन पेहला अधेन सूं अविनीत नै ओलखायो रे ।
वले तिण अनुसारे निर्षधियों ते तों लेले सूतररो न्यारों रे ।।

× ×

इण विध पोसानें कीजीये तो सीझसी आतम काजजी ।
कर्म रूकसी ने वले तूटसी इम भासीयो श्री जिणराजजी ।।

सं० १८५७—

इविरत ओलखो उतम प्रांणी छोड़ राग ने धोखो रे ।
मानवनों भव अहलभहारो परभव सांमो देखो रे ।।

× ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कदे नरक निगोद थीनीकलें पामें नर अवतारजी ।
तिणां पिण दुख पामें घणा ते कहितां नांवे पारजी ॥

शब्द अर क्रियापदो रो विकास—

स्वामी भीखणजी री कथानक सुदी रचनावां २१ हैं। अे रचनावां पिण १८३४ सं० १८५० बीच लिखीजी । इण मांय-गूंथीया, पूछिया, आविया नींकल्यो, सन्तोष पांम्यो, वन्दणा कीधी, बिनोंकर बोल्यों, बरजीयो, ओलंभो दीयो, बालजाल भसमकरूं, बींधाया पिण नहीं कान, ते तोनें नहीं जाबक ठीक, जाणों कूड़ारै, आयाथी दोनूं ई छें आच्छारे, लोकां ने दीघा डबोय, उंधी सरधा में न्हाख डबोयारे, करड़ो रोग उपनों, सगली आगुंच दीधी बताय रे, म्हें हाथां काम कमाबीया, मरणो कबूल छे, मारणो मांडयो, कूड कपट बहु केवल्या, अपत्थ पत्थिया, मांहो मांही मिसलत करे, कर्मनीपजे, बूहो आयो, बिगड्यो दीठो काम, अंग सं अंग भीडी लियो, हिवे किसो करणो अहमेव, सुख भोगवे नितमेव, अपथ पथियो तूं खरो, अर दोनूं मांहोमां लड़ मूंई इत्याद भांतरा क्रियापद मिलै । छदमस्थ हुंता, लीधो सरणो, एहवी उद्घोषणा, अनुक्रमें उपजसी, सतकारीयो, भद्रीकछें, प्रतिलाभीया, आराध्यो, अवतर्या, कोकाट शब्द करंता, इत्यादि रै साथै रोवे-झूरे, मांड कही जिसा पद पिण मिलै ।

शब्दां मांय हूंस=चाह, हर्यक्ष=सिंह, हड़को-धड़को=कंपन-प्रकंपन, सापादूती=इधर उधर की बातें, वेलासर=समय पर, राटां घाटां=उतार चढ़ाव, मेहणो=व्यंग, परठना=उचित स्थान पर विसर्जन, अंवली-संवली=उल्टी सिधी, झांझाझोली=अक्षम साधु वास्तै, आमण दूमणो=आकुल व्याकुल, केथ=कहां, केड़=पीछे, कोवी=विद्वान, गडारी=गाड़ी का मार्ग, नांगला=पुस्तकों का बस्ता, राणोराण=खचाखच, शेखैकाल=चातुर्मास से अतिरिक्त, मच्छगलागल=निर्बल को सताना, ढाऊंभाऊं=अनभिज्ञ, जामण जायो=मां का सपूत—जीसां नूंवा नूंवा शब्द-प्रयोग दीसै । इण सूं मालम पड़ै कै भीखण सांमीरी भासा मांय राजस्थानी री बोलियां रो रल्यो-मिल्यो रूप रह्यो होण सकै । उण मांय मेवाड़ी, जैसलमेरी, मेरवाड़ी, हाड़ोती, बीकानेरी, जयपुरी, थली-शेखाटी री बोल्यां रा बोल शामिल लागै अर भाषा घणी रोचक, सरल अर हृदयग्राही बण पड़ी दीसै, पिंण उणरा मूल ग्रन्थ देख्या बिना भासा रो रूप-विकास बतावणो संभव कोनी ।

राजस्थानी भाषा रो संकट—

रूप विकास री दीठ सूं एक बात विशेष लखावै कै विक्रम संवत् री २०वीं सदी मांय राजस्थानी भासा पै बहोत बड़ो संकट आयो । उण बेला राजस्थान रा घणकरा विद्वान् राजस्थानी नै छोड़ कै खड़ी बोली—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दी मांय लिखणो शरू कर दीन्यो। अजमेर रा पं० चन्द्रधर गुलेरी अर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर रा कविराजा श्यामलदास, जोधपुर रा मुन्शी देवीप्रसाद अर उदयचन्द, भरतपुर रा पं० ज्वाला सहाय अर जयपुर रा पं० सदासुख आद नै राजस्थानी री उपेक्षा की ओर हिन्दी अथवा उर्दू मांय लिखणो शरू कीनो। आर्य समाज रा संस्थापक स्वामी दयानंद अर काशीजी रा भारतेन्दु हरिश्चंद्र अर उणरा साथियां सूं लोक घणा प्रभावित हुया। संस्कृत मांय लिखणिया पिण इण समै दूजी भासा रूप मं राजस्थानी नै अलग कर हिन्दी सूं नातो जोड़ लीन्यो। जयपुर रा पं० मधुसूदन ओझा रा शिष्य मोतीलाल शर्मा इण वेलाहीज अपणा गुरु री पोथ्यां रो हिन्दी अनुवाद शुरू कीनो। जिण सूं हिन्दी राजस्थान मांय सभ्य भासा बणगी अर राजस्थानियां सूं उणरी मातृभासा दूर हूगी।

अकेलो तेरापन्थ—

तेरापन्थ रा साधु संत इण संकट वेला माय मायड़ भासासूं अलगा कोनी हुया जिणसूं राजस्थानी री सुरक्षा अर बढ़ोतरी हुयी। खासकर श्री मज्जयाचार्य सं १९०५ सं० १९३६ तलक जिको साहित्य रचियो उणमांय जीवन चरित विधा में खेतसी चरित, हेमनवरसो, भिक्षुजस रसायण, ऋषि रायसुयश, भीम विलास आद सूं 'स्वरूप चोढालियो' तलक अनेक रचनावां लिखीगी। आख्यान विधा मं जयजशकरण रसायण दीपजश रसायण, महिपाल चरित आदि लिखीजी अर इतिहास, उपदेश, स्तुति, अनुवाद, संस्मरण आदि अनेकों विधाओं री रचनावां हुई। जोड़, चोपी, ढाल, हुंडी, नत्थी, थोकड़ो, देशना, टीप, सिलोका, सिखावण, धवल, बधावो, विवाहलो, सिंध, हियाली, बोल, बखाण, ख्यात, हकीकत, लिखत, मर्यादा, टऊका, ओलोयणा, बाड़, हाजरी, दबावेत, रसाकसा, जसासासा,—आद घणकरी नूंवी-नूंवी विधाओं रो विकास हुयो। व्यक्ति विशेष रै नाम पै बकचूलियो, रोहिणियो, दाड़मियो, झांझुरियो, कठिहारो, थावच्चा, दवदन्ती, उदाई—जेड़ा ग्रन्थ पिण लिखिज्या।

सब मिलनै बीसवीं सदी विक्रमी रै पूर्वार्द्ध मांय जद खड़ी बोली रो जादू आखै उत्तरभारत में सिर चढ्यो बोलै हो जयाचार्य रै नेतृत्व मांय तेरापन्थी साधुसंत राजस्थानी री घणै कोड़चाव सूं बढ़ोतरी करी अर प्राण-पणसूं उणरी देखभाल कीनीं। जयाचार्य वाद पिण राजस्थानी रो तेरापन्थ मांय घणो मान सम्मान रह्यो। अष्टम आचार्व कालूगणि ताई तेरापन्थ रो हर साधु-संत राजस्थानी मांय हीज लिखतो-पढ़तो रहियो। नवम आचार्य खुद राजस्थानी रा मोटा साहित्यकार है पिण देशकाल नै देख परख उणा हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी भासावां नै तेरापन्थ साहित्य मं प्रवेश करायो है। आ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घणी अच्छी बात हुई है। दु.ख री कोई बात है तो आ है कै तेरापन्थ रै राजस्थानी-साहित्य रो उजास कोनी हुयो। आज सूं पांच वर्ष पैली जद एक तेरापन्थी युवक सम्वत् २०३० तक छपियोडै आधुनिक राजस्थानी-साहित्य रो अध्ययन करण सारू ग्रन्थ भेला कर्‌या तो उणनै १४९ ग्रन्थां मांय फकत एक ग्रन्थ मिलियो—अणुव्रत समिति जयपुर सूं प्रकाशित 'जम्बू स्वामी री लूर।'

तेरापन्थ रो राजस्थानी साहित्य पैलीपल कद छपणो शुरू हुवो—कैणी मुश्किल है पिंण मुम्बई री एक फर्म—"खेतसी जीवराज" कानी सुं राजभक्त प्रिंटिंग प्रेस, मुम्बई मं छपियोडी एक पोथी म्हारै देखणै मं आई है जिकी उणरी इबारत मुजिब संवत् १९४१ री छपी होवणी चाहजै। उण पोथी रो ऊपरी पानो इण भांत है—

"श्री भीखुजे जससर्यण चार खंड त्रेसठ ढाला दुहा छपया छंद सहित पाना १३६ सुधी सम्पूर्ण। पछी १३७ थी ठेठ सुधी घ्रष्टांत श्रधा आचारनी उलंषना वगेरे श्री भीषणजी स्वामी कृत तथा श्री जीतमलजी स्वांमी कृत ३०६ बोलहुंडी वगरे श्रावक सोवजी कृत हेमराज नीमाणी तथा लुणा कोठारी कृत। पोथी अपूर्व ग्यान जेमा श्रधा आचार चर्चा प्रश्न उत्तर श्री जिन आग्नानी व्रधी थसे पोथी प्रथम थी सम्पूर्ण वाचे जीव सुध श्रधापामे घणा सुलभ बुधि थासे मदत दई पोथी देस परदेस प्रसिद्ध हुवा थी हमारे समकिती भाई ने घणी व्रधी थसे।"

उण पछै दूजी पोथी पिंण शा० खेतसी जीवराज शुद्ध करावी ने मुंबई रै निर्णय सागर—छापखाना मां छापी प्रसिद्ध करी उण पै सं० १९५३ माहा शुद्ध ७ ने भोमे फेबरबारी सने १८९७ लिखी मिलै। इण पोथी रोनाम—"तेरापन्थी कृत देव गुरू धर्म नी उंलखाण नं० बीजो" है। इण मांय "प्रस्तावना" लिखीजी है—

"मनुष्य जन्म आर्यक्षेत्र उत्तमकुल निरोगी काआ पुरी इद्धी पुरो आवषो सतगुरु संजौग सीधा तनु सांभलवुं सांभलीने श्रद्धवो श्रधी ने तपजप बल प्राक्रम फोर्ववो अत्यन्त दुर्लभ छे ते पामी ने देव गुरु धर्म ए त्रण रत्न अमुल्य छे ते उलंखीने धर्म ते श्री जिनाज्ञामां छे ते निरवद्य करणी नी साधु श्रावक ने आज्ञा आपे पण सावधानी आपे नहीं अने जियां आज्ञा छे त्यां धर्म छे आज्ञानशी त्यां अधर्म छे एवुं जाणी देव श्री अरिहंत वार गुणे करी सहित पांच महाविदेह क्षेत्र ने विषे विराजमान छे तेमने देवकरी मानवा गुरु पांच महाव्रतना धारक पांच सुमिते समिता त्रण गुप्ते गुप्तार तेने गुरु करी मानवा भरत क्षेत्र ने विषे श्री माणेकलालजी स्वामी आद देइने तेरापन्थीना साध-साधवी। धर्म केवली भगवंत नो प्ररूप्यो अहिंसा मां धर्म छे व्रत मां धर्म छे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते विषे आ चोपड़ी मां वरणव करयुं छे जेऊने जोइए ते मंगाबीलेजो आग्रन्थ थी श्रधा आचार ऊलखाण थशे ने घणो जाणपणो थसे कोई प्रश्न पुछे ते ने उत्तर देवाने थसे।"

प्रस्तावना मांय दूजी बात भलै लिखी है कै इण पोथी नै क्यूं छपवाई "कोई लखावो तो रु० १५ मां पण लखावाए नहीं। पण छपाणा बोत तेथी शशता पड्या ने ते ऊपर माहारा थी बनी तेवी मेहनत पण घणीक ी ने जाण्यु जे आपणा तेरापन्थी मां घणो प्रशीद्ध पणु थाय घणा तेरापन्थी श्रावक ने ऊपियोग आवे ते माटे शुद्ध करीने छपावीऊं। बीजी अरज ए छे आपणा तेरापन्थी नो ग्रन्थ काहाडबो होय तो मने संमाचार दीधा थी तेनी शलाथसे ने हुं धली तरफ लादणु बीदासर, सुजानगढ़, रतनगढ़, चूरू, सरदारसेर मारवाड़, मेवाड़, माड़वा जेपुर, हरीयाणा कछ काठीवांड़ गुजरात, सूरत वगरे गओहतो तीआना शेठीआ ओए शलादीधी हमोने पका भरोसा है गणामातवर दीपता गणा श्रावको पुजजीतां साधसाधवीना दर्सण करवा आवे ते ने संसार सोभा अर्थे भाव भगती करेछे ते सेठीआओ ना नाम मदद देवा वाला माहे छे जाणवासवै ओलष्यो छे।"

—इण प्रस्तावना सूं साफ-साफ लखावै कै संवत् १९४१ री 'श्री भीखुजे जस रसायण' हीजपैली छपियोड़ी पोथी होणी चाहिजै उणपछे नाना दादाजी मुंड व्यापारी, पुणें शक संवत् १८१५ विक्रमी संवत १९५० मांय ४१ छापेला पुस्तकों नुं सूचीपत्र जारी कर्यो। उणमांय एक 'भिखुजी सांभी महाराज को चरित्र रास' नाम सूं श्री भीखूजस रसायण अर अलग-अलग जैन धर्म ध्यान प्रदीप, कल्पसूत्र भावार्थ रतन कवर की चौपई, मुनिगुण माला जैन लावणी — इत्याद ग्रन्था रा नाम है।

विक्रम संवत् १९८३ मांय ओसवाल प्रेस, कलकत्ता रा प्रकाश'नां मं' "भिक्षुयश रसायण" भलै छपियो पिण उणरी मासा बदलगी। संवत् २००० बाद तेरापन्थ द्विशताब्दी सूं प्रकाशनांरी झड़ी लागगी। तेरापन्थी महासभा, आदर्श साहित्य संघ, जैन विश्वभारती री प्रकाशन सूचियां मं सैंकड़ो पोथियां लिखी छपी मिलै अर पोथियां री संख्या दिन दूनी रात चौगुणी बढ़ रही है।

अन्त मांय म्है हस्तलिखित पोथियां री बात करूं तो बीकानेर-जोधपुर रा भण्डारां मं दस हजार सूं बत्तीं राजस्थानी रा ग्रन्थ म्हारी निजरा मांय है। उणमं हजार खंड ग्रन्थ तेरापन्थी साहित्य रा होवण सकै। अठै जैन विश्वभारती रा भण्डारां मांय घणकरा राजस्थानी ग्रन्थ है जिणमं अप्रकाशित पिण शामल है उणानैं देख्या पढ्या बिना तेरापन्थी राजस्थानी साहित्य री रूप-परम्परा बतावणी सोरी कोनी। म्है केवल उणरी एक रूप रेखा आपणै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बतावणरी चेष्टा की है। आज राजस्थानी नांव सूं राज्य रा रहवासी अपणी अपणी बोली रा हिमायती बण'र अलगा होवण री बात करै जद कै तेरापंथी राजस्थानी-साहित्य मांय इण भासा रो इसो रूप साफ निजर आवै जिको आखै राज्य री भासा बणी रही और भले वन सकै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापंथ का राजस्थानी में अनूदित साहित्य

☐ साध्वी जिनप्रभा

भाषा भावाभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। भाषा की वैशाखियों पर चढ़कर ही एक की अनुभूतियाँ दूसरे को लाभान्वित करती हैं। भगवान महावीर की अनुभूतवाणी के प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं—आगम। आगमों की भाषा प्राकृत रही है। उत्तरकाल में उन पर संस्कृत एवं प्राकृत में टीका, चूर्णि, भाष्य आदि अनेक व्याख्या ग्रन्थ लिखे गए। काल के प्रवाह के साथ भाषा का प्रवाह भी अविरल बहता रहता है। एक समय था जब संस्कृत-प्राकृत को समझना हिमालय की चढ़ाई की तरह दुरधिगम्य बन गया। अपेक्षा हुई जनभाषा में उसे प्रस्तुति देने की। तेरापन्थ धर्मसंघ ने इस दिशा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तेरापन्थ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु ने राजस्थानी भाषा में लगभग ३८ हजार श्लोक परिमाण साहित्य रचकर भगवान महावीर की वाणी को जनभोग्य बना दिया। आचार्य भिक्षु ने यद्यपि साहित्य, कला, छन्द, अलंकार आदि का विधिवत प्रशिक्षण नहीं लिया था, पर उनकी रचनाओं में है वेधकता और जीवन का मार्मिक सत्य। दर्शन की जटिलताओं को सहज भाषा में प्रस्तुति देने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने जहाँ अनेक दार्शनिक ग्रंथ लिखे वहाँ जैन आगमों के अनेक स्थलों का सुन्दर सटीक अनुवाद भी किया है।

चतुर्थ आचार्य श्री मज्जयाचार्य ने तो मानो साहित्य की स्रोतस्विनी ही बहा दी। राजस्थानी भाषा के लेखकों में जयाचार्य का स्थान सर्वोपरि है। साढ़े तीन लाख श्लोक परिमाण साहित्य लिखकर उन्होंने न केवल जैन जगत् की सेवा की है अपितु राजस्थानी भाषा को अपूर्व योगदान दिया है। किसी एक ही व्यक्ति ने राजस्थानी भाषा में इतना लिखा हो, देखने-सुनने में नहीं आया।

जयाचार्य ने अपनी लेखनी से साहित्य की अनेक विधाओं को उपकृत किया है। चरित्रलेखन, आख्यान, इतिहास, संस्मरण, दर्शन, स्तुति, तात्विक ढाले, न्याय-व्याकरण आदि न जाने कितने विषयों पर गद्य और पद्य दोनों विधाओं में लिखा है। जयाचार्य द्वारा लिखित लगभग १२५ रचनाएं उपलब्ध हैं। उनकी रचनाओं में एक महत्वपूर्ण भाग है अनूदित साहित्य।

जयाचार्य जैनशास्त्रों के पारगामी विद्वान होने के साथ-साथ महान अनुवादक थे। उन्होंने ७ जैनागमों पर राजस्थानी भाषा में पद्यबद्ध टीकाएं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखीं, जो जोड़ के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके द्वारा रचित ७ जोड़ें हैं—

१. आचारांग की जोड़
२. भगवती की जोड़
३. निशीथ की जोड़
४. ज्ञाता की जोड़
५. उत्तराध्ययन की जोड़
६. अनुयोगद्वार की जोड़
७. पन्नवणा की जोड़।

इनमें सबसे बड़ी जोड़ है भगवती सूत्र की। भगवती सूत्र आगम ग्रंथों में सबसे बड़ा आगम है। उसका आकार सोलह हजार श्लोक परिमाण है। इस पर लिखी गयी अभयदेवसूरिकृत संस्कृत टीका १८ हजार श्लोक परिमाण है। जयाचार्य द्वारा अनूदित भगवती की जोड़ का श्लोक परिमाण है ६० हजार। वर्ण्यविषय, तत्त्वनिरूपण आदि की दृष्टि से इतना बड़ा ग्रन्थ सम्भवतः राजस्थानी भाषा का दूसरा नहीं है। तत्त्वविद्या की गहन गुत्थियों को सुलझाने वाला यह ग्रंथ संगीत के स्वरों में गुम्फित है। इसमें दोहों, सोरठों के छन्दों के अतिरिक्त ५०० गीतिकाएं हैं। वे विभिन्न लोकगीतों और रागनियों में गाई जाती हैं। जयाचार्य संगीत प्रिय थे इसलिए उन्होंने अपनी पद्य रचनाओं में संगीत को प्राथमिकता दी। इस अलौकिक कृति की रचना का प्रारम्भ वि० सं० १९१९ आसोज कृष्णा ९ गुरुवार से होता है।

पाँच वर्षों की अवधि में इतने बड़े ग्रन्थ को रच देना उनकी विलक्षण मेधा का परिचायक है।

अनुवाद का अर्थ होता है—भाषांतर अथवा एक भाषा के साहित्य को दूसरी भाषा में उपलब्ध करवाना। अनुवाद की कुछ कसौटियाँ हैं—

१. अनूदित साहित्य में मूल लेखक की भावना यथावत रहे।
२. मूल साहित्य के रस को बरकरार रखा जाए।
३. मूल साहित्य के किसी अंश या परिच्छेद को छोड़ा न जाए।
४. भाषा सुबोध, प्रवाहपूर्ण एवं लालित्यपूर्ण हो।
५. जिस भाषा में अनुवाद किया जाए उस भाषा पर पूर्ण अधिकार हो।
६. जिस भाषा में अनुवाद किया जाए उस भाषा-भाषी व्यक्तियों की पसन्द को ध्यान में रखा जाए।
७. मूल साहित्य को मुख्य और अन्तर्विषय सब अनुवाद में समाविष्ट हो।
८. रचना एवं रचनाकार के प्रति अनौपचारिक समर्पण भाव हो आदि-आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन कसौटियों पर जब जयाचार्य के साहित्य को परखते हैं तो वह न केवल इन कसौटियों पर ही खरा उतरता है बल्कि कई नई कसौटियों को भी जन्म देता है। उदाहरण के रूप में मूलपाठ को सामने रखकर अनुवाद को देखना होगा।

आगमकार ने सूर्योदय का वर्णन करते हुए कहा है—

"उट्ठियम्मि सूरे, सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयणा जलंते।"

अविकल रूप से अनुवाद की भाषा इस प्रकार है—

सहस्रकिरण दिनकर इसो तेज करीने जान।
जाज्वलमान सुदीपतों उदय छटै असमान॥

जयाचार्य ने मूलपाठ के अनुवाद के साथ-साथ अभयदेवसूरिकृत वृत्ति के मुख्य अंशों का भी अनुवाद किया है। टीका और वृत्ति दोनों का संयुक्त अनुवाद कर जयाचार्य ने अपने अनुवाद में मणि-कांचन संयोग उपस्थित कर दिया है।

प्रसंग है गौतमस्वामी के व्यक्तित्व चित्रण का। गौतमस्वामी ऐसी तेजोलेश्या सम्पन्न थे जिसका संकोच या विस्तार किया जा सके। मूल पाठ है—संखित्त विउल तेउलेस्से।

वृत्तिकार ने इसकी टीका की है—संक्षिप्ता शरीरांतर्लीनत्वेन ह्रस्व-तांगता विपुला विस्तीर्णा अनेक योजन प्रमाण क्षेत्राश्रित वस्तु दहन समर्थत्वात तेजोलेश्या विशिष्ट तपोजन्य लब्धि विशेष प्रभवा तेजोज्वाला यस्य स तथा।

बहुयोजन खेतर रै मांही वस्तु दहन समर्थ कहिवाई एहवी विपुल तेजोलेश्या ज्वाला विशिष्ट तप करि ऊपनी विशाला तेज सेक्षेपी तनु अन्तर कीनी, आ तो ह्रस्व पणै करि लीनी।

मूलपाठ प्रश्नोत्तर शैली में है तो जयाचार्य ने अनुवाद में भी उस प्रश्नोत्तर शैली को नहीं छोड़ा है—वायुकाय के सन्दर्भ में गणधर गौतम भगवान महावीर से प्रश्न करते हैं एवं महावीर उसका उत्तर देते हैं। आगमवाणी है—

वाउयाए णं भंते वाउयाए चेव आणमंति पाणमंति अउससंति नीस-संति ? हंता गोयमा ! वाउयाएं वाउयाए चेव आणमंति पाणमंति अउससंति नीससंति।

जयाचार्यकृत जोड़ है—

हे भदन्त ! जे वायुकाए है वायुकाय नै जोयो।
उस्सास अनै निःसास लेवै छै ? ठंता। जिनवच ह्योयो॥

अनुवाद का अर्थ केवल भाषांतर या शब्दांतर ही नहीं, उसका अर्थ है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल में वर्जित विषय को सरसता और सरलता के साथ प्रस्तुति देना। जयाचार्य ने उस अर्थ को सार्थकता प्रदान की है।

वृत्तिकार ने भगवती की तुलना जयकुञ्जर से की है। अनुवादक ने टीका के उस अंश को काव्यात्मक शैली में प्रस्तुति देते हुए कोमलकान्त पदावलि का प्रयोग किया है—

जयकुञ्जर गण जिम जयवंतो समय भगवती सखर सोहंतो
पंचम अंग भगवती पवर, द्वितीय नाम आख्यो तसु अबर
सरस विवाह पण्णविनाएं जय कुञ्जर गज जिम जयकारे
ललित मनोहर जे पद केरी पद्धति रचना पंक्ति सुहेरी
पंडित जनमन रंजन प्यारो प्राज्ञ रिझावण हार प्रचारो ॥

जयाचार्य ने अपने अनुवाद में कई स्थानों पर वृत्तिकार के मत की आलोचना करते हुए स्वतन्त्र टिप्पणियां भी प्रस्तुत की हैं। और उसकी पुष्टि में आगम-प्रमाणों की ऐसी शृंखला खड़ी कर दी है मानो सारे आगम उनके सामने रखे हैं। उदाहरण के रूप में—वृत्तिकार ने मुनि में तीन अप्रशस्त लेश्याओं का निषेध किया है। जयाचार्य ने मुनि में छः लेश्या स्वीकारते हुए ११७ पद्यों में उसकी समीक्षा हेतु अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं (द्रष्टव्य है भगवती जोड़ ढाल ५१, गाथा २४ से १४०)।

जयाचार्य ने अपनी रचनाओं में प्राकृत, संस्कृत व अन्य देशी भाषाओं के शब्दों का राजस्थानीकरण कर राजस्थानी भाषा के विस्तार में बहुत बड़ा योगदान दिया है। शब्दों को मृदु बनाने की उनमें विशिष्ट कला थी। उदाहरण के रूप में अर्धमागधी के स्थान पर अधमागधी, नजदीक के स्थान पर नजीक, बुद्धिमान के स्थान पर बुद्धिवन्त।

प्रस्तुत रचना पद्यात्मक और तुकांत है। गीतिका की लय और तुक का निर्वाह करने के लिए जयाचार्य ने शब्दों की यथोचित कांट-छांट भी की है तथा उनका अपभ्रंशीकरण भी किया है—'पुलाक नियठाणी स्थित।'

जयाचार्य की प्रत्येक रचना में विनम्रता और श्रद्धा झांकती है। जिनवाणी पर उनका समर्पण भगवती जोड़ में स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है। वे अनेक स्थानों पर कहते मिलेंगे—"मैंने अपनी बुद्धि से यह अर्थ किया है कि निश्चय में ज्ञानी पुरुष जाने"—एक पाठ आता है—'व्हाएकय-बलिकम्मे' वृत्तिकार ने बलिकर्म का अर्थ जिन प्रतिमा किया है। जयाचार्य उक्त अर्थ से सहमत नहीं थे। उन्होंने उस पर एक लम्बी समीक्षा करते हुए एवं अनेक आगम-प्रमाणों को उद्धृत करते हुए उसके दो अर्थ निश्चित किए हैं—या तो वह स्थान का विशेषण होना चाहिए या बलि कर्म अर्थात् गृह देवता होना चाहिए। जिन प्रतिमा अर्थ उन्हें नहीं जँचा। अनेक आगम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाणों के साथ इस पद की समीक्षा करते हुए वे उपसंहार में कहते हैं—

"स्नान विशेषण सोय वा पूजी गृह देवतां ।
उभय अर्थ अवलोय सत्य सर्वज्ञ वदैति को ।।

भगवती जोड़ की रचना के उपसंहार में जयाचार्य ने प्रशस्ति के दोहे लिखे हैं, जिनमें किया गया आत्म निवेदन सत्यशोध की भावना का शाश्वत प्रवचन है। उन्होंने अपना अनाग्रही दृष्टिकोण मुक्त रूप से उभार कर रख दिया है।

मैंने भगवती सूत्र व उसकी वृत्ति को देखकर उसकी व्याख्या लिखी है। दूसरे आगमों का सहारा भी लिया है। कुछ अर्थ मैंने अपनी बुद्धि से किए हैं। मैंने इस बात का सदा ध्यान रखा है कि कोई भी अर्थ सिद्धांत के विरुद्ध न हो। मैंने कहीं-कहीं संक्षिप्त अर्थ का विस्तार किया है और कहीं पर विस्तृत अर्थ का संक्षेप किया है। कहीं-कहीं वैराग्य-वृद्धि के लिए उपदेश की शैली का, तो कहीं पर व्याख्यान की रसात्मक शैली का प्रयोग किया है। कहीं पर तुक मिलाने के लिए नए शब्दों का प्रयोग किया है तो कहीं अनुमान से भी काम लिया है।

इस कृति में मैंने अपनी ओर से सिद्धांत से अविरुद्ध निरूपण किया है। फिर भी कोई सिद्धांत विरुद्ध बात आ गई हो तो ज्ञानी का वचन मुझे प्रमाण है। कोई प्रबल पण्डित हो, उसे आगमों के आधार पर इस रचना में कोई सिद्धांत विरुद्ध लगे तो वह उसे निकाल दे। इस सम्बन्ध में विवरण मिलता है कि मैं 'मिथ्या में दुष्कृतम्' का प्रयोग कर अपने आपको निर्भार अनुभव करता हूँ। पठनीय है कुछ दोहे जयाचार्य की अपनी ही भाषा में—

(२) अन्य सिद्धांत तणा बलि, न्याय मेल्या इण ठाम ।
बलि केइक निज बुद्धि थकी, अर्थ कह्या अभिराम ।।
(३) अर्थ कियो फुन शब्द नों, ते पिण मिलतो जाण ।
विस्तार्यो किहां, अल्प नों किहां संकोची वाण ।।
(४) किहां वैराग्य बधायवां, उपदेश्यो अधिकाय ।
किहांइक चोज लगाय नैं, व्याख्यानादि कहाय ।।
(८) इत्यादिक इण जोड़ में, दाख्यो मिलतो जाण ।
अणमिलतो जु आयो हुवै, ज्ञानी वदै ते प्रमाण ।।
(९) बलि कोइक पंडित प्रबल हुवै, आगम देख उदार ।
जे विरुद्ध वचन हवै सूत्र थी, ते काढ़े दीजो बार ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०) विण उपयोगे विरुद्ध वचन, जे आयो हुवै अजाण ।
अहो त्रिलोकीनाथजी, वसु म्हारै नही ताण ।।
(११) म्हैं तो म्हारी बुद्धि थकी, आख्यो छै शुद्ध जाण ।
श्रद्धा न्याय सिद्धांत नां, दाख्या शुद्ध पिछाण ।।
(१२) पिण छद्मस्थ पणा थकी, कहियै बारंबार ।
प्रभु सिकारै अर्थ प्रति, तेहिज छै तंतसार ।।
(१३) अण मिलतो जु आयो हुवै, मिश्र आयो हवै कोय ।
संका सहित आयो हुवै, तो मिच्छामी दुक्कडं मोय ।।

भगवती सूत्र विषयों की दृष्टि से महासागर है। गणित, व्याकरण, न्याय, ज्योतिष, भूगोल, खगोल कोई भी ऐसा विषय नहीं जो भगवती सूत्र में न आया हो। लगता है जयाचार्य सब विषयों के तल तक बैठे हुए थे। भगवती की जोड़ में मूल के एक भी अंश या वाक्य को छोड़ना तो दूर बल्कि उन्होंने अपनी प्रतिभा एवं बुद्धि कौशल से उसे अत्यधिक स्पष्टता प्रदान की है।

भगवती की जोड़ के तीन खण्ड सुसम्पादित होकर प्रकाशित हो चुके हैं। इस जोड़ के सम्पादन में परमाराध्य आचार्यवर, श्रद्धेय युवाचार्यश्री एवं महाश्रमणी साध्वी प्रमुखाश्री कनकप्रभाजी के अनथक-अनगिनत श्रम-सीकरों का उपयोग हुआ है। उसी का परिणाम है कि जोड़ के ३ खण्ड तीन बहुमूल्य रत्नों के रूप में हमारे सामने हैं। अगले खंडों का क्रम जारी है जिस दिन यह पूरा ग्रन्थ प्रकाश में आएगा। जैन साहित्य की तो अद्भुत सेवा होगी ही राजस्थानी साहित्य समृद्धि के शिखर को छूने लगेगा।

भगवती सूत्र के अतिरिक्त जयाचार्य द्वारा किए गए अन्य आगमों के अनुवाद अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं। इसलिए इस निबन्ध में मैंने उनकी विस्तार से चर्चा नहीं की है। आगम का एक सूक्त है—"जे एगं जाणई से सव्वं जाणई" एक को जानने वाला सबको जान लेता है। यदि हमने भगवती जोड़ जैसे महार्णव को तर लिया तो छोटी मोटी नदियाँ स्वतः ही तर ली जाती है।

इस प्रकार जयाचार्य को हम महान अनुवादक के रूप में देखते हैं। उनके साहित्य-समुद्र में व्यक्ति ज्यों-ज्यों अवगाहन करता है नये-नये मणि-मुक्ताओं से लाभान्वित होता हुआ अतिरिक्त आह्लाद का अनुभव करता है।

द्वितीय आचार्यश्री भारमलजी के शासनकाल में एक सन्त हुए हैं मुनि जिवोजी। वे भी एक कुशल अनुवादक थे। उन्होंने ग्यारह जैनागमों का राजस्थानी भाषा में अनुवाद कर साहित्य को गरिमा प्रदान की है। इसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिरिक्त उन्होंने जयाचार्यकृत शासन-विलास एवं भिक्षु-दृष्टांत इन दोनों ग्रन्थों का राजस्थानी में पद्यानुवाद किया है। उनके द्वारा रचित साहित्य का ग्रंथाग्र लगभग १० हजार श्लोक प्रमाण है। पर अब तक यह साहित्य भी अप्रकाशित है। हम आशा करते हैं कि वह भी प्रकाशित होकर जल्दी जनता के हाथों में पहुँचेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापन्थ के प्रमुख राजस्थानी कवि

☐ साध्वी पीयूषप्रभा

तेरापन्थ धर्म संघ ने अध्यात्म की ऊँचाईयों का तो स्पर्श किया ही है साथ ही साहित्य-साधना के क्षेत्र में भी अपनी विकास यात्रा को एक गति दी है। संस्कृत और हिन्दी भाषा में प्रचुर साहित्य लिखा गया है, किन्तु राजस्थानी भाषा को भी उसका कम अवदान नहीं है। राजस्थानी भाषा में आत्म संगीत की अमर स्वर-लहरियाँ जीवन की पगडंडी पर बढ़ते पथिकों के लिए अमर पाथेय हैं। काव्य-धारा में अनुभूति के जिस रस को ऊंडेला है वह रस कितने ही काल खंडों के बीत जाने पर भी कभी सूखेगा नहीं। तेरापन्थ को कवित्व का तो जैसे वरदान ही मिला हुआ है। आद्य प्रवर्तक भिक्षु स्वामी से लेकर आज तक कितनी ही प्रतिभाएं इस क्षेत्र का स्पर्श कर चुकी हैं। सबको परिचय की आँखों से देख पाना एक लघु पुस्तिका तैयार करना है। प्रस्तुत निबन्ध में कुछ प्रमुख और विशिष्ट कवियों का काव्य-परिचय ही अभीष्ट है।

आचार्य भिक्षु —

कवि किसी टकसाल में निर्मित नहीं होते। उनकी काव्य-प्रतिभा सहजात होती है। आचार्य भिक्षु उसके अप्रतिम उदाहरण हैं। उन्होंने काव्य शास्त्र का कहीं विधिवत् शिक्षण लिया हो ऐसा नहीं था, किंतु उनमें कवित्व की स्फुरणा सहज थी। उनकी रचनाएं काव्य की उत्कृष्टता से संचालित हैं। वे एक सन्त थे, लेकिन सामान्य नहीं। क्रांतद्रष्टा सन्त पुरुष थे। इसलिए उनकी रचनाओं में तत्कालीन प्रचलित रूढ़ियों और साधु-समाज की विकृतियों पर कसकर प्रहार हुआ है। इसलिए कहीं-कहीं शब्दों में तीखापन अवश्य आ गया है, किन्तु इससे उनके काव्य का गौरव कम न होकर गुरुता को ही प्राप्त हुआ है। कबीर का सा फक्कड़पन लिए हुए उनकी शब्द-संयोजना वास्तव में उनको सच्चे साहित्यकार की भूमिका पर लाकर खड़ा कर देती है। उनकी शैली व्यंग्यात्मक है। उनके व्यंग्य-वाण एक कुशल धनुर्धारी के वाण की तरह खाली नहीं जाते। हिंसा में धर्म मानने वालों को अपना मन्तव्य बड़े ही सटीक शब्दों में समझाते हैं—

लोही खरड्यो जे पीतांबर, लोही सूं केम धोवायो।
तिम हिंसा मे धर्म किहां थी, जीव उज्ज्वल किम आयो॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य भिक्षु के काव्य में तत्त्व निरूपण जिस सरस शैली के साथ प्रस्तुत हुआ है वह दुर्लभ है। अनेक ऐसे नवीन उपमान प्रयुक्त किए हैं जो समूचे साहित्य में अपनी मौलिकता लिए हुए हैं। उदाहरण के तौर पर हम देख सकते हैं—

सांभर केरा सींग में, सींग सींग में सींग
ज्यूं मिश्र परूपे त्यांरी बात में धींग धींग में धींग।
बाजर खेत बावे जरे बूंट बूंट में बूंट
ज्यूं मिश्र परूपे त्यांरी बात में झूठ झूठ में झूठ।
चोर मिले उजाड़ में करे झपट झपट में झपट
ज्यूं मिश्र परूपे त्यांरी बात में कपट कपट में कपट।

अर्थात्—सांभर के एक सींग में से दूसरा उसमें से तीसरा इस प्रकार एक-एक से अनेक सींग निकले रहते हैं। जो पुण्य-पाप की मिश्र प्ररूपणा करते हैं उनकी बात में एक भी दुराग्रह नहीं होता। उत्तरोत्तर निकलते अनेक दुराग्रह उसके साथ होते हैं। जब बाजरो का खेत बोया जाता है तब प्रत्येक पौधे की एक शाखा में से दूसरी उसमें से तीसरी और इस प्रकार अनेक शाखाएं निकलती जाती हैं। उसी प्रकार मिश्र प्ररूपणा वाले के एक झूठ में से दूसरा झूठ उसमें से तीसरा इसी तरह अनेक झूठ प्रस्तुत होते रहते हैं। घने जंगल में चोर मिल जाते हैं उनका हर झपट्टा उत्तरवर्ती झपट्टों से युक्त रहता है। इसी प्रकार जो मिश्र प्ररूपणा करते हैं उनकी बात में मानों कपट की एक शृंखला सी जुड़ी रहती है।

तत्त्व निरूपण के साथ-साथ आचार्य भिक्षु ने अनेक आख्यानों की रचना की है। उनमें वर्णित चरित्रों के माध्यम से उन्होंने कुसती नारी के लिए जहाँ 'स्त्री अनरथ मूल' 'नारी कूट कपट नी कोथली' जैसे शब्दों का प्रयोग किया है वहां 'सती सोलह गुण की खान' और सीता सदृश बताकर उसके प्रति आदरपूर्ण शब्दों का भी प्रयोग किया है। आचार्य भिक्षु की लेखनी ने नारी के चरित्र को जिस पराकाष्ठा पर पहुँचाया है एक कुशल कवि ही उसमें समर्थ हो सकता है।

भरत नहीं लेवण देवे दीक्षा ब्राह्मी शील तणी मांडी रक्षा।
रूप देखी भरत रै वंछा आई॥
सती बेले बेले पारणो कीनो एक लूखा अन पाणी में लीनो।
फूल ज्यूं काया पड़ी कुमलाई॥
भरत री विषय सूं जाणी ममता तिण सूं ब्राह्मी झाली तपसा।
साठ हजार वर्ष री गिणती आई॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरत छोड़ दीनी मन री ममता सती रो सरीर देखी ने आई समता ।
पछै दीपती दीक्षा दराई ।

तपस्या के द्वारा विषयोन्मुख पुरुष के हृदय परिवर्तन की यह घटना आचार्य भिक्षु की शिल्प-संयोजना का आश्रय पाकर और अधिक निखर उठी है ।

कवि की भाषा मारवाड़ी और मेवाड़ी का मिश्रित रूप है । प्रासाद गुण से युक्त है, किन्तु भावों की गहनता से भी खाली नहीं है । उक्तियों के प्रयोग काव्य में रसात्मकता पैदा कर देते हैं—

आभो फाटै थीगड़ी कुछ छै देवणधर ।
ज्यूं गुरु सहित गण बिगड़ियां त्यांरै चहुं दिस पडिया वघार ।।

यदि आकाश फट जाए तो उसके कौन पैबन्द लगा सकता है । गुरु सहित धर्म संघ बिगड़ जाए तो वहाँ चारों ओर बड़े-बड़े छिद्र हो जाते हैं । (वहां पैबन्द लग'ने की गुंजायश नहीं रहती ।)

इनका कुल साहित्य ३८ हजार पद्य प्रमाण है, जो राजस्थानी काव्य साहित्य की अनुपम निधि है । आचार-मीमांसा, तत्त्व-मीमांसा, सिद्धान्त-मीमांसा, आख्यान, उपदेश—इन विषयों पर लगभग उनकी ५५ रचनाएं हैं ।

जयाचार्य—

आचार्य भिक्षु के बाद काव्य-सर्जना के क्षेत्र में पूज्य जयाचार्य का नाम बड़े आदर के साथ स्मरण कर सकते हैं । जिनकी प्रखर मेधा ने आगमों को बड़ी कुशलता के साथ पद्यों में आबद्ध किया है ।

परिमाण की दृष्टि से भगवती की जोड़ सम्भवतः राजस्थानी भाषा का सबसे विशालकाय ग्रंथ है । अकेली भगवती की जोड़ का पद्य परिमाण ८० हजार है ।

व्याकरण जैसे शुष्क और दुरूह विषय को पद्यबद्ध करना सचमुच उनकी सूक्ष्म और पारदर्शी ऋतंभरा प्रज्ञा को ही ध्वनित करता है । जैसे—

एक मात्र ते ह्रस्व है, द्विमात्र ते दीर्घ ।
रेखा त्रिमात्र प्लुत कहीजिए मात्रा काल संपेख ।।

उनकी पद्य रचना की एक विशेषता थी कि वे पद्य बोलते जाते थे और कुछ व्यक्ति बिना दोहराए लिखते जाते थे । उनकी रचनाओं के पढ़ने मे ऐसा प्रतिभाषित होता है कि वे ज्ञान के अगाध सागर में गोता लगाने वाले कुशल गोताखोर थे । वे जिस किसी विषय का स्पर्श करते उसकी पुष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में इतने अधिक आगमिक प्रमाण देते कि पाठक को लगता है मानो उसके सामने आगम ही है। यथा—प्रथम गुणस्थानवर्ती जीवों की निरवद्यकरणी आज्ञा में है अथवा आज्ञा बाहिर ? इस प्रश्न को आगमिक आधार पर सिद्ध करने के लिए उन्होंने एक-दो नहीं अठारह प्रमाण प्रस्तुत किए हैं।

जयाचार्य एक भक्त कवि थे। अपने आराध्य के प्रति उनका समर्पण भाव जिस भाव प्रवणता और वेधकता के साथ प्रस्तुति पा सका है वह भक्ति-कालीन कवि सूर, तुलसी और मीरा से कम नहीं है। एक उदाहरण में ही हम उनकी भक्ति का दर्शन कर सकते हैं—

पतिवरता समरै जिम पिउ नै गोप्यां रै मन कान्ह
तंबोली रा पान तणीं पर धरूं स्वाम सौ ध्यान ॥
आशा पूरण आप तणां मुण कह्या कठ लग जाय
सागर जल गागर किम मावै, किम आकाश मिणाय ॥

आपकी भाषा राजस्थानी है। कहीं-कहीं गुजराती का भी मिश्रण है। कविता प्रसाद गुण प्रधान है। आपने हर स्थिति का एक कुशल चित्रकार की भांति चित्रण कर उसे सजीवता प्रदान की है। चाहे शृंगार रस का प्रसंग हो अथवा शांत रस का। संत लेखनी ने बहुत संयत ढंग से बियोगिनी नायिका के चित्रण में शृंगार रस का प्रयोग किया है—

हार नै कहै आज भी मणी दग्धकारी हुवै सोय।
चंदा नै कहै कर चांदनी रै बालण लाग्यो मोय ॥

रस काव्य की आत्मा है तो अलंकार उसका परिधान। कवि ने अपने काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग किया है। उनके काव्य 'शांति विलास' में जिस ढंग से अनुप्रास का प्रयोग किया है उसकी छटा दर्शनीय हैं—

समता खमता दमता जमता नमता वचन निहाल।
तमता भ्रमता वमता तनमन मुनि शांति गुण माल ॥

कुशल मनोचिकित्सक, अनुवादक, नतहृदय और साधनारत साहित्य-कार के रूप में उनका परिचय दे रहे हैं उनके द्वारा रचित साढ़े तीन लाख पद्य प्रमाण आगम भाष्य, तत्त्व दर्शन, आख्यान, स्तुति, साधना, न्याय, जीवनियाँ, व्याकरण, मर्यादा, उपदेश—इत्यादि वर्गों में वर्गीकृत उनकी रचनाएं राजस्थानी साहित्य की एक अनमोल थाती हैं। इतने महनीय कवि की रचनाओं से राजस्थानी भाषा के कवि और साहित्यकार अपरिचित रहते हैं तो वे कवि के प्रति तो न्याय नहीं करते हैं किन्तु उस भाषा के प्रति भी उनका न्याय नहीं होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य तुलसी—

आचार्य परम्परा में जयाचार्य के बाद मघवागणी और माणकगणी ने काव्य के क्षेत्र में चरण रखे, किन्तु वह चरण केवल पूर्वाचार्यों के जीवन प्रसंग, लेखन और कुछ ढालों चौपाइयों तक आकर ही विराम को प्राप्त हो गया। उसके अनन्तर उस साहित्य-साधना को उज्जीवित किया युग प्रधान आचार्य तुलसी ने। आपने राजस्थानी भाषा में जिस सहजता से भावों को अभिव्यक्ति दी है, घटनाओं को चित्रित किया है मानों अतीत स्वयं वर्तमान बनकर पाठक की आँखों के सामने उतर आता है। केवल भाव प्रकाशन में ही कवि सिद्ध हस्त नहीं है बल्कि उचित शब्द-विन्यास ने काव्य को प्राणवत्ता दी है। आपके प्रमुख राजस्थानी काव्य ग्रन्थ हैं—कालूयशोविलास, माणक महिमा, डालिम चरित, मगन चरित, माँ वदना, नन्दन-निकुंज, सोमरस, चन्दन की चुटकी भली, सेवा भावी इत्यादि।

कालूयशोविलास राजस्थानी भाषा का एक अद्वितीय काव्य है। २५ वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ की गई इस काव्य कृति में पूज्य कालूगणी की जीवन गाथा काव्य वैशिष्ट्य के साथ प्रस्तुत हुई है। काव्य नायक के चरित्रांकन के साथ-साथ राजस्थान की भीषण गर्मी, आताप लू, मेवाड़-मारवाड़ की पथरीली, रेतीली और कंटीली भूमि का चित्रण बड़ा ही सजीव और प्रभावी बन पड़ा है। शांत रस के साथ करुण रस का उद्रेक अध्येताओं के मन और आँख दोनों को गीला कर देता है। केवल एक उदाहरण ही कवि की कवित्व शक्ति को व्यक्त करने में समर्थ है। जब मेवाड़ के लोग पूज्य कालूगणी से मेवाड़ पधारने की प्रार्थना करते हैं उस समय कवि तुलसी ने मेवाड़ मेदिनी में विरहणी का आरोपण कर भक्तों की अन्तर्व्यथा को जिस मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है वह दर्शनीय है—

पतित उद्धार पधारियै संगै सबल ही ठाठ।
मेद पाटनी मेदिनी जोवै खड़ी खड़ी बाट॥
सघन शिलोच्च नैं मिषे रे, ऊँचा करि करिहाथ।
चंचल दल शिखरी मषै, दे झाला जगनाथ॥
नयणां विरह तुम्हार डै, झरै निझरणां जास।
भ्रमरा-राव भ्रमै करी, लहै लांबा निःश्वास॥
कोकिल कुजित ब्याज थी, व्रतिराज उड़ावै काग।
अरघट खट-खट का करि, दिल खटक दिखावै जाग॥
मैं अबला अचला रही, किम पहुँचै मम संदेश।
इस झुर झुर मनुं झूरणां संकोच्यो तनु सुविशेष॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि कल्पना का कैसा मौलिक चमत्कार है। आचार्यश्री ने केवल जीवन चरित्रों को ही अपनी लेखनी का विषय नहीं बनाया है अपितु ऐसे हजारों स्वतन्त्र गीतों की रचना भी की है और ऐतिहासिक आख्यानों को राग-रागनियों में बाँधा है जो अंधियारे गलियारे में भटकते मानव के लिए प्रकाश दीप है। ऐतिहासिक आख्यानों में शाश्वत सत्यों को जिस कुशलता से प्रतिबिम्बित किया है उससे लेखनी स्वयं धन्य हो उठी है—

मानव तूं है राही, सरिता रो सलिल प्रवाही।
अपणै सुख दुःख रो तू कर्त्ता अपणै आप गवाही॥

आचार्य मम्मट के शब्दों में—कवि की दृष्टि अनन्य परतन्त्रा होती है। आचार्य भिक्षु जयाचार्य और आचार्य तुलसी तीनों ही महान् कवि इस दृष्टि से सम्पन्न हैं।

तेरापन्थ धर्म संघ के आचार्य ही नहीं मुनिजन भी काव्य निर्माण के मैदान में उतरे हैं। इस शृंखला का पहला नाम है मुनिश्री वेणीरामजी, जिन्होंने भिक्षु जीवन चरित लिखा है जो अपनी सजीव वर्णन शैली के कारण मूल्यवान् कृति बन पड़ी है। मुनिश्री हेमराजजी ने भी भिक्खु चरित लिखा है।

मुनि जीवोजी, जो द्वितीय आचार्य भारमलजी के शासन काल में हुए, उन्होंने १० हजार पद्य प्रमाण साहित्य की सर्जना कर राजस्थानी भाषा के भंडार को समृद्ध बनाया है। उन्होंने साधु-साध्वियों के गुणोत्कीर्तन सम्बन्धी गीतिकाओं की रचना तो की ही है साथ ही शासनविलास, भिक्खु दृष्टांत को जोड़ और ग्यारह आगमों पर जोड़ें की हैं।

मुनिश्री कालूजी (आराय) यद्यपि एक कथाकार संत थे, किन्तु 'तेजसार का व्याख्यान, पखवाड़ा, बिमल-विवेक आदि रचनाओं के द्वारा काव्य साहित्य को भी वृद्धिगत किया है।

कालूगणी के युग में दीक्षित मुनिश्री चांदमलजी के डिंगल-पिंगल तथा चित्रबद्ध छंद पाठक के हृदय को आकृष्ट किए बिना नहीं रहते। मुनि श्री नथमलजी ने स्तुतियों और व्याख्यानों के माध्यम से राजस्थानी भाषा की सेवा की है। मुनिश्री सोहनलालजी ने प्रभूत काव्य साहित्य रचा है। कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि के प्रयोग में ये विशेष दक्ष थे। इनके काव्यों में श्रद्धा और समर्पण की पराकाष्ठा का तो निदर्शन मिलता ही है साथ ही युगीन विषमताओं का भी मार्मिक वर्णन किया है।

जन जीवन में व्याप्त तनाव के बारे में कवि हृदय कह उठता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरणाट उठै सुन बैन कटु
गरणाट चढै सिर की नलियां
सरणाट बहै रस रोस लइ
वरणाट फिरै गलियां गलियां।
अभिमान भ्रुआन कमान बढ़ा
छलबान चढ़ा हसना रलियां
सत सील दया द्रुम बींध लिए
मुरझी तप संयम की कलियां।

आचार्यश्री के युग में अनेक संतों और साध्वियों ने रचनाधर्मिता के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है और कर रहे हैं। उनके नामों की एक लम्बी सूची है, लेकिन मैं यहाँ पर केवल कुछ ही कवियों का परिचय प्रस्तुत कर रही हूँ।

युवाचार्य महाप्रज्ञजी ने राजस्थानी में यद्यपि कम लिखा है किन्तु जो लिखा है वह उनके स्वतन्त्र दिमाग से उपजा है। देखिए एक नमूना—

दिल तो है पण दर्द कोनी
दर्द कोनी जद ही दिल है
नहीं तो आज तांई रहतो ही कोनी
कदैई टूट ज्यातो।

मुनिश्री गणेशमलजी, जंवरीमलजी, मुनिश्री दुलीचन्दजी, मुनिश्री छत्रमलजी ने राजस्थानी भाषा में काफी रचनाएं लिखी हैं। मुनिश्री बुद्धमलजी राजस्थानी भाषा के एक समर्थ कवि हैं। उनकी 'उणियारो' पुस्तक में संगृहीत कविताओं की समीक्षा में डा० मूलचंदजी सेठिया के शब्द कवि के बारे में पर्याप्त परिचय दे रहे हैं—आं रै मांय एक मंजेड़ी कलम रो कमाल है, चिन्तन री गैराई है अर भावा रो इस्यो कसाव है जिरसो वां गिण्यां चुण्यां काव्यां में ही मिलै।

उदाहरण के रूप में—

बारे हंसणो भीतर रोणी अै दोनूं चालै
झूठ अणूंता घोचा नितरा साचै घर थालै
बारै स्यूं साचो भीतर में झूठो वण ज्यावै
की नै मानां की नै छोड़ा ? ओ संसो आवै।।

कवि की दाध विधा में लिखित मिणकला और पगथिया रचनाएं अनुभूति की प्रवणता लिए हुए हैं। देखिए—

कांटा नै मत कोस तूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साध आपरा पांव
कदै न लगै सजग रै
जग रा घाल्या घाव ।।

मुनिश्री सागरमलजी के भक्ति गीतों में काव्य तत्त्व बखूबी के साथ उभरा है। मोहनलालजी 'आमेट', मुनि वत्सराजजी, मुनि सुखलाल आदि अनेक संतों ने राजस्थानी में सौष्ठव पूर्ण रचनाएं की हैं। मधुर गायक मुनि मधुकर जी भी इस क्षेत्र में योगभूत बने हैं। उनके गीतों की शब्द-संयोजना और भावों का पैनापन दोनों ही दर्शनीय हैं। उनके प्रचलित गीत के बोल ये हैं—

'कुण ऊँचो कुण नीचो ?'
मिनख-मिनख में भेद-भाव री भींत अरे मत खींचो।
दया दिखावै पशुवां पर मिनखां नै हीणा मानै
धरम नाम पर बण्या बावला कुण समझावै आंनै
काली करतूतां स्यूं आगी में अब घी मत सींचो।'

साध्वी समाज ने भी काव्य-रचना के क्षेत्र में अपनी लेखनी का उपयोग किया है। साध्वी जयश्रीजी, कनकश्रीजी, कमलश्रीजी आदि अनेक साध्वियाँ इस स्तम्भ में गतिमान हैं।

मैंने तो नमूना मात्र पेश किया है। और भी अनेक कवि-प्रतिभाएं इस क्षेत्र में उभर रही हैं। आचार्यप्रवर की प्रेरणा से तेरापन्थ साहित्य के क्षेत्र में जो धारा प्रवाहित हुई वह निरन्तर गतिशील रहे और विद्वत्जन उन रचयिताओं की रचनाधर्मिता पर गहरा अनुसंधान करें, यही अपेक्षा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापंथ के राजस्थानी काव्यों में चारित्रिक संयोजन

☐ डॉ० लक्ष्मीकान्त व्यास

अनन्त काव्य ब्रह्मांड का कवि ही सर्जक है और यह सर्जना कवि की भावनाओं के अनुरूप ही होती है। कवि की वाणी का संसार नियति के नियम से मुक्त और पूर्णरूपेण स्वतन्त्र है। कवि की यह स्वतंत्रता सार्थक तभी कही जा सकती है जब वह अपनी कला को कला तक ही सीमित न रख, समाज में आदर्शों की स्थापना के लिए उसका उत्सर्ग कर दे। भारतीय साहित्याचार्यों ने काव्य प्रयोजन में आदर्श स्थापन का महत् उद्देश्य अपनाया है, आदर्श की यह स्थापना चाहे किसी भी रूप अथवा साधन से हो वे इसे विस्मृत नहीं कर पाये हैं।

जैन धर्म के तेरापन्थ आचार्यों और मुनियों ने समाज में आदर्शों की स्थापना के लिये विभिन्न चरित्रों को उपस्थित किया है, ये चरित्र इस समाज के अंग होते हुए भी समाज को दिशा-निर्देश प्रदान करने वाले रहे हैं। इसी कारण चरित-काव्यों का सृजन अपेक्षाकृत व्यापक स्तर पर हुआ है। ये चरित्र जीवन्त ही हैं, कल्पना प्रसूत चरित्र बहुत ही कम देखने में आये हैं।

तेरापन्थ के आचार्यों में आचार्य भिक्खू जयाचार्य और आचार्य तुलसी ने व्यापक साहित्य सृजन किया है। उन्होंने आचार्यों, सन्तों और साध्वियों के चरित्रों का गुण-गान काव्य को आधार बनाकर किया है। एक ओर यह चरित्र-गान उन पुनीत व्यक्तित्वों का पुण्य स्मरण है, तो दूसरी ओर लोक शिक्षण का प्रमुख आयाम भी है।

साहित्याचार्यों ने चरित्र-चित्रण अथवा विश्लेषण के जो बिन्दु या मापदण्ड निर्धारित किये हैं, जिनके आधार पर काव्य-नायकों का श्रेणी-निर्धारण किया गया है अथवा पात्रों के प्रकार गिनाये गये हैं उन साहित्यिक मापदण्डों की कसौटी पर न तो इन चरित्रों को कसा जा सकता है और न ही वैसा प्रयास औचित्य पूर्ण भी है, क्योंकि पात्र विश्लेषण के साथ-साथ काव्य-कलेवर, देश, काल, वातावरण और उद्देश्य पर भी दृष्टिपात आवश्यक है। समीक्ष्य काव्यों में चरित्र समायोजन एवं संयोजन अवश्य है लेकिन दार्शनिकता एवं काव्य उद्देश्य की दृष्टि से ये पात्र सामान्य न रहकर एक विशिष्ट श्रेणी के पात्र बन गये हैं, अतः इनका विश्लेषण भी उसी रूप में किया जाना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन काव्यों के काव्य नायक आचार्य, गणि, सन्त और सतियाँ रही हैं, जिन्होंने त्याग-तपश्चर्या के बल पर अपने व्यक्तित्व को ऊँचा उठाया है, साथ ही सद्कर्म एवं प्रयासों से अपने पंथ की सेवा-सुश्रुषा करते हुए उसके विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। ये गुण-धर्म लगभग सभी पात्रों में समरूप से दृष्टव्य हैं, अन्तर केवल रचनाकार की प्रस्तुति एवं प्रकटन का है।

वे सन्त जो महान् एवं अलौकिक गुणों से युक्त होते हुए भी सरल रहे, उनकी सरलता का और वे सन्त जो तेरापंथ की पदीय परंपरा से अलग रहते हुए भी महान् हुए उनकी महानता का गुणवर्णन किया गया है।

प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों में नायकों की जिन श्रेणियों व प्रकारों का वर्णन किया गया है उनमें 'धीरोदात्त' नायक ही प्रस्तुत काव्यों के चरित्र के समान कहे जा सकते हैं। 'धीरोदात्त' नायक का परिचय देते हुए लिखा गया है—"धीरोदात्त नायक आत्मश्लाघा नहीं करता, वह क्षमाशील होता है, गंभीरता से अलंकृत होता है, हर्ष-शोकादि भावों से अप्रभावित रहता है, अपने कार्यों में स्थिर रहता है।"

सन्तों के चरित्र-दर्शन से इन समस्त गुणों का यत्किंचित् दिग्दर्शन हो जाता है। हाँ कुछ विशिष्टताएं धीर प्रशांत नायक की भी दृष्टव्य होती हैं, धीरललित अथवा धीरोद्धत नायक के गुण लेशमात्र भी दिखाई नहीं देते हैं।

प्रस्तुत पत्र में जयाचार्य कृत 'अमरगाथा' 'कीर्तिगाथा', और आचार्य श्री तुलसीकृत 'कालूयशोविलास', 'डालिम चरित्र', 'माणक महिमा', 'मगन चरित्र' को अध्ययन का आधार बनाया गया है। पद्यात्मक कृतियों में चारित्रिक संयोजन अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ किया गया है। काव्य-कलेवर चाहे संक्षिप्त हो अथवा विस्तृत चरित्रों का उद्घाटन यथेष्ट रूप में हो गया है और यही इन कृतियों की प्रमुख विशिष्टता कही जा सकती है।

इन काव्यों में चरित्र संयोजन की प्रमुख विशेषता यह है कि पाठक के सामने मुनियों के चरित्र को खुली किताब के समान रख दिया है। कहीं भी काव्यात्मक ग्रंथियों अथवा लाक्षणिकता के बोझ तले चरित्रों को दबाने का प्रयास नहीं किया है। जन्म से लेकर अवसान तक की घटनाओं का चित्रण इस प्रकार हुआ है कि रेखाचित्र की भांति सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दर्शन सहज ही होता है। चारित्रिक विशिष्टताओं को भी सीधे रूप में अंकित कर दिया गया है। 'अमर गाथा' में मुनि सतयुगी के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा गया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"सुखदाई सहु गण भणी, खेतसी जी गुणखांन ।
भीक्खू ऋष पासे भला, पके मते परधांन ।।

× ×

प्रकृति विनय गुण कर प्रवर, सतजुग सरिसा संत ।
सतजुगि नांम सुहांमणो, मोटा मुनी महन्त ।[1]"

जयाचार्य ने आचार्य भिक्खू को शासनाधीश के रूप में स्वीकार किया है । उस सम्बन्ध में वे लिखते हैं—

"शासन नाथ ज्यूं थया भिक्षु स्वाम,
जीव घणा रा थे सार्‌या जी काम ।
दान दया रूड़ी रीत दीपाय,
पंचमे आरे प्रगट्या मुनिराय ।।"[2]

आचार्य भिक्खू को महानतम् सन्त मानते हुए उनके स्मरण की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए जयाचार्य लिखते हैं—

"स्वामी भिखन जी सुखकारी रे,
त्यांरौ जाप जपो नर नारी, उत्तम ज्ञान क्रिया गुणधारी रे ।

× × ×

समरण कीधां बाधै संपति, पामै सुख भरपूर ।
जय ब्रह्मेन्द्र अच्युत सुख कारण, दुर्गति होवै दूर ।।"[3]

अपने काव्य नायक आचार्य भिक्खू को अलौकिक व्यक्ति के रूप में जयाचार्य ने प्रस्तुत किया है । उसके साथ अपना जीवनाधार भी स्वीकार किया है । स्वामी भिक्खू के प्रति यहाँ जयाचार्य का दास्य भाव प्रकट हुआ है इसी कारण भिक्खू को सर्वस्व माना है और उनके निरंतर स्मरण पर जोर दिया है—

"म्हारै तो मन में स्वामी बसिया,
अहो निशि ध्याऊँ ध्यान जी म्हारै ।
लीजै नित्य प्रति नाम जी, म्हारै समरूं आठू याम जी ।"[4]

आचार्य भिक्खू का यह निरन्तर स्मरण इस तथ्य को सिद्ध करता है कि जयाचार्य की कीर्ति-गाथा के शीर्ष पुण्य आचार्य भिक्खू ही हैं ।

'भारीमाल गणि गुण वर्णन' में गणि भारीमाल के जीवन वर्णन के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व वैशिष्ट्य को भी जयाचार्य ने प्रस्तुत किया है और सन्त शृंखला में उनके शिशिष्ट स्थान को परिलक्षित किया है—

"भारीमालजी में गुण छै भारी, त्या नै ओपमा अधिकी आई ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिम सर में कमल सोभै छै, तिम सोभै साधामांई रै।"

×

वले इन्द्र सोभै देवता में, तिम साधां में मुणिदो।"[५]

जयाचार्य भारीमालजी की महानताओं के वर्णन के साथ-साथ उनके निर्मल चित्त का परिचय भी देते हैं और एक ही पंक्ति में उनकी विशिष्टताओं को पिरोते हुए लिखते हैं—

"सोम प्रकृति चित शांत, सुवनीत घणा जसवंत।
वचन दृढ़ विरुद विशाल॥"[६]

'रायचंद गणिगुण वर्णन' में तृतीय आचार्य के रूप में उनका वर्णन करते हुए जयाचार्य द्वारा लिखा गया है—

"तीजे पाट भिक्षु रे प्रतपो, शरणागत सुखकार।
वीर जिणंद तणी पर हिवड़ां, कर रह्या जगत् उद्धार॥"[७]

रायचन्द गणि को ऋषिराय भी कहा गया है। एक ढाल में उनके गुणों का पारिभाषिक वर्णन किया गया है—

'दखिल' दुख दाहण अघ दली जी, रखिल ऋषि बाल ब्रह्मचार।
अखिल आचार आराधवा जी, सकल गण स्वाम शृंगार॥"[८]

आचार्य वर्णन के साथ-साथ सन्तों की महिमा का गान जयाचार्य ने किया है। मुनि भारमल की महत्ता का वर्णन सेना में सेनापति के समान किया है—

"सेन्यापति सेन्या मांहे सोभतो, तीन खंड में वासुदेव जांण।
चक्रवत छः खण्ड मांहे सोभतो, ज्यू साधां माहे वरवांण॥"[९]

इस सन्त वर्णन में संक्षिप्तता महत्वपूर्ण रही है जहाँ एक ही छन्द में उनका पूर्ण परिचय देने का प्रयास किया गया है।

'शासन विलास' में आपने गद्य रूप भी सन्त वर्णन किया है। जैसे—

"श्री जी दुवारे भोपोसाह, तेहनै पुत्र खेतसी, प्रकृति चोखी।"[१०]

सतीगुण वर्णन में जयाचार्य ने साध्वियों का वर्णन किया है। यहाँ भी संक्षिप्तता प्रमुख विशिष्टता कही जा सकती है। साध्वी आसूजी का वर्णन करते हुए आपने लिखा है—

"सती घणा जीवां नै समझाय नै, अदरायाश्रावक व्रत उदार।
केइकां नै सुलभ बोधी किया, स्याणी सुगणी गण में सुखकार॥"[११]

साध्वियों के वर्णन में उनके गृहत्याग को विशिष्ट रूप में उल्लिखित किया गया है। साध्वी रूपांजी, हस्तूजी (बड़ा) और आसूजी के वर्णन में इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"वरस पनरै आसरै वय जाणी, सुत पीउ छांड सुमता आंणी ।
सती रूपांजी महा स्याणी ।"[१२]

× × ×

आसूजी उत्तम आरज्यां, पीउ छांड व्रत पाल ।
सतियां माहे सिरोमणी, गुणिये नित गुणमाल ।।"[१३]

नारीगत क्षमाशीलता एवं विनयशीलता का वर्णन भी किया गया है, साथ ही कठोर तपस्या का भी परिचय इसमें मिलता है—

सुवनीत घणी सतगुर तणी, सोभा गण मांहि सवाय ।
विनयवंती ने खिम्यावन्ती, हरष घणो हीया मांय ।।
समणी मुद्रा कर सोभती, सील सिरोमणी सुहाय ।
सन्त सत्यां नै सुहामणी, तप करनै तन ताप ।।"[१४]

जयाचार्य का यह काव्यमय चारित्रिक संयोजन काव्य नायकों को उनके मूल जीवन से अधिक दूर अथवा कल्पना लोक में नहीं ले जाता बल्कि उन्हीं के जीवन के इर्द-गिर्द घूमता हुआ उनके मौलिक स्वरूप को उद्घाटित करता है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो जीवन का प्रत्येक क्षण उन्होंने काव्य नायक के साथ ही व्यतीत किया हो। जयाचार्य की इस काव्य दृष्टि की विशिष्टता का उल्लेख करते हुए मुनि सुखलालजी ने लिखा है— "जयाचार्य के पास वह स्फटिक राडार दृष्टि है जो अपने परिसर में घटने वाली सामान्य से सामान्य विशेषता को भी प्रतिबिम्बित कर सकती है।"[१५]

तेरापन्थ के राजस्थानी काव्यों की कड़ी में आचार्यश्री तुलसी की प्रथम काव्य कृति 'कालूयशोविलास' है, जिसमें आपने अपने गुरु एवं आचार्य कालूगणि के चरित्र को संजोया है। आचार्यश्री के हृदय में अपने गुरु के प्रति आदर भाव रहा है, जिसका प्रकटन प्रारम्भ से हो जाता है। जहाँ वे शैशवावस्था में ही उनके महान् होने की सम्भावना को व्यक्त करते हैं—

"शैशववय में पिण शिशुता री किंचित् नही कुवांण ।
भर जोवन में वो गणवन में बणसी आगीवांण ।।"[१६]

कालूगणि के जीवन में गुरुदेव मघवागणि की भूमिका बहुत अहम् रही, उन्होंने ही कालूगणि को पूर्णरूपेण प्रशिक्षित किया था। गाना, बोलना, व्याख्यान करना, ढाल गाना आदि कालूगणि को सिखाया गया था, लेकिन दुर्भाग्यवश पावन गुरु की सन्निधि दीर्घकाल तक प्राप्त नहीं हो सकी। बाल सन्त के गुरु-विरह को आचार्यश्री ने बहुत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"गुरु मघवा सुर-गमन लख, कालू दिल सुकुमार ।
भारी विरह विखिन्न ज्यूं, कृषि बल बिन जलधार ।।"[१७]

त्यागमूर्ति के रूप में कालूगणि का चित्रण किया गया है। उन्होंने आचार्य पद को काफी अनुनय-विनय के पश्चात् स्वीकार किया था—

"सारा मिल अति आग्रहे, सिंहासन शुभ साज ।
मुश्किल स्यूं आसित किया, श्री कालू गुरुराज ।"[१८]

वात्सल्य की प्रतिमूर्ति के रूप में भी कालूगणि के चरित्र को लिया जा सकता है। वे सभी के प्रति समभाव भी रखते थे, जिसका परिचय देते हुए आचार्यश्री तुलसी ने लिखा है—

"अद्भुत वत्सलता भली रे, सारां पर इक साथ ।
भणै सकल जन मोद स्यूं रे, त्रिभुवन तात वदात ।।"[१९]

संघशासन में कालूगणि बहुत ही सफल रहे आचार्यश्री ने उनकी शासन क्षमता को उनके जीवन की नैसर्गिक प्रतिभा के रूप में स्वीकार किया है, जिसका उदाहरण सहित आपने वर्णन किया—

"रवि नै कुण सीखावै, पंक प्रशोषणो,
अमृतरुचि नै आवै, पंकज पोषणो ।
सागर में शोभावै, सहज सधीरता,
त्यूंही कालू काये, पटु कोटीरता ।"[२०]

संतों को अपने जीवन का मोह नहीं होता। वे मानते हैं, शरीर जन्म लेता है, मरता है लेकिन आत्मा तो अमर है तभी तो आचार्यश्री ने अपने गुरु-मुख से ये वचन उद्धृत करवाये हैं—

"जीवै मरै शरीर डाकटरां, आत्मा अमर बखांवा ।"[२१]

संत हृदय भी मातृस्नेह अभाव में कितना दुःखी होता है इसका आभास कालूगणि के अन्तिम समय के भावों से स्पष्ट होता है, जहाँ वे अपनी माता से बहुत दूर होते हैं—

"अंग स्थिति अवलोकतां रे, ओ तो दुष्कर कार ।
धोरां धरती मां रही रे, म्हे बैठा मेवाड़ ।"[२२]

आचार्यश्री ने कालूगणी की माता को एक वीर माता के रूप में चित्रित किया है। पुत्र के सुरगमन-संवाद को सुनकर वह स्वयं ही धैर्य धारण नहीं करती, बल्कि अन्य लोगों को भी विरह त्यागने का संदेश देती हुई कहती है—

"जोग विजोग शुभाशुभ जोगे, गई वस्तु फिर कुण पाई ।"[२३]

आचार्य श्री की महत्वपूर्ण कृति 'माणक महिमा' रही है, जिसमें आचार्य माणक मुनि का चरित्र संजोया गया है। इस संबंध में एक तथ्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेखनीय है कि आचार्य श्री द्वारा पात्रों का चारित्रिक संयोजन इतने सपाट ढंग से होता है कि सहज रूप से संबंधित व्यक्ति के जीवन और चरित्र की पूरी जानकारी मिल जाती है। चाहे उस पात्र को आपने अपने जीवन में देखा हो या नहीं, लेकिन उसका चित्रण वास्तविक होता है। इस संबंध में साध्वी प्रमुखा कनक प्रभाजी के शब्दों को दोहराना समीचीन होगा। जिन्होंने 'माणक महिमा' के सम्पादकीय में लिखा है—"कवयिता ने जीवन चरित्र के नायक से कभी साक्षात्कार नहीं किया पर कृति-दर्शन से ऐसा प्रतीत नहीं होता। अन-देखी स्थिति का इतना सजीव विश्लेषण कवि की गहरी संवेदनशीलता की द्योतना है।"[२४]

माणक मुनि के वैराग्य और गुरु चरणानुराग को आचार्यश्री ने अत्यन्त संक्षिप्त ढंग से प्रस्तुत किया है—

"जय जश मघवा पद अनुरागी, भागी माणक मन वैरागी।
आन्तर हृदय भावना जागी, भागी माणक मन वैरागी॥[२५]

मुनि श्रेष्ठ के रूप में माणक मुनि को स्वीकारते हुए लिखा गया है—

"सकल शुभंकर, मघवा पटधर महामुनि।
मुनिन्द मोरा माणक सुमित सुमेर हो।"[२६]

माणक मुनि अपने उत्तराधिकारी आचार्य का चयन किये बिना स्वर्गा-रोहण कर गये तो आचार्यश्री उन्हें उलाहना देने में भी चूके नहीं है—

"थांरै तो होती असकेल, म्हांरै महाभारत रो खेल।
दो खांधां बहणो आसान, लाखां की मुट्ठी में जान।
क्यूँकर जासी सिन्धु तर्‌यौ।"[२७]

इतना ही नहीं इसके आगे वे साफ शब्दों में लिखते है—

"ओ ऋण बिना चुकायां, स्वर्ग सिधाया साफ सुणावांला।"[२८]

डालिम गणि का चरित्र गान संघ के आचार्य के रूप में आचार्यश्री ने डालिम चरित्र में किया है। चरित्र को एक ही सांचे में ढालकर प्रस्तुत करने का प्रयास यहाँ भी नहीं किया गया है। चरित्र को सहज रूप से गति देने और विस्तार पाने का अवसर आचार्यश्री ने प्रस्तुत किया है। घटना तत्त्व की प्रधानता लिये यह काव्य रहा है, और घटनाओं के आधार पर ही चरित्र निर्माण हुआ है। कहीं-कहीं संकेत रूप में चारित्रिक विशिष्टताओं को एक ही साथ उद्धृत कर दिया गया है। डालिम गणि की कुशाग्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति का परिचय देते हुए लिखा गया है—

"दशवैकालिक आवस्सग, उत्तराध्ययन प्रशस्त।
वेद कल्प नन्दी किया, पांच सूत्र कंठस्थ॥"[२९]

मनुष्य को परखने की विशिष्टता डालिम गणि में विद्यमान रही। आचार्य श्री ने इस ओर ध्यान दिलाते लिखा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"श्री डालिम री देह में, अतिशय अमल अनेक ।
सर्वोत्कृष्ट विशेषता, मिनख परख री एक ।।
× × ×
प्रस्तर रतन परीक्षका, जग में मिलै हजार ।
पर नर रत्न परीक्षका, मुश्किल स्यूं दो च्यार ।।"[30]

तेरापंथ के मंत्री मुनिमगन जी का चरित्र गान आचार्य श्री ने किया है । यह जीवन चरित्र भी यथार्थ का पर्याय ही है, जैसा कि आचार्य श्री ने स्वयं लिखा है—"ज्यों-ज्यों लेखन का क्रम आगे बढ़ा, मेरा मन बढ़ता गया, मैं समझता हूँ मैंने किसी प्रकार की अतिशयोक्ति या अर्थवाद का सहारा न लेकर एक यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है ।"[31]

आचार्य श्री ने मुनि मगन के चरित्र-चित्रण में भी घटनाओं को ही आधार बनाया है । आचार्यत्व से भिन्न उनका चरित्र-चित्रण हुआ है, लेकिन कहीं-कहीं संघ संचालन में उनकी प्रतिभा की बहुत प्रशंसा की गयी है और यही उनके चरित्र का प्रबल पक्ष भी रहा, जिसे आचार्य श्री ने प्रस्तुत किया है—

माणक डालिम संधि काल में, कालू मगन महान् ।
बागडोर कर थामे रखी, जो शासन री शान ।।
डालिम सरिखाँ री गति परखी, रीझ-खीझ उद्दाम ।
कसणी छेद ताप ताड़ण स्यूं, सुवरण न हुवै श्याम ।।
× × ×
शीघ्र नीति निर्णायक शक्ति, निर्णय दृढ़ता नेक ।
इधर-उधर न दिमाग डोलतो, एक राखतो टेक ।।
भोलै बालक की सी भक्ति निश्छल विनय निकाम ।
बद्धाजंलि ऊंचे स्वर करतौ, गुरु वन्दन गुणग्राम ।।"

(मगन-१२८)

संघ के प्रगतिवादी विचारों के मुनि मगन प्रचारक एवं संवाहक रहे, जिसके बारे में भी आचार्यश्री ने लिखा हैं—

"नव जागृति में सदा सहायक, कभी न खींच्यो पांव ।
परिवर्तन है, प्रगति सूचना अै मंत्री रा भाव ।" (मगन-१३४)

चारित्रिक संयोजन की दृष्टि से जिन-जिन काव्यों का अध्ययन किया जा सका उससे एक तथ्य अवश्य ही उभर कर सामने आया है और वह यह कि इस प्रकार की रचनाओं में पात्रों को सहज रूप में उभारा गया है, उन्हें मानवीय धरातल पर ही रखा है । मानव मन की जो-जो चेष्टाएं-अपेक्षाएं होती हैं और होनी चाहिये यदि इन पात्रों में दिखी हैं तो काव्यकारों ने उन्हें विस्मृत नहीं किया है, बल्कि उन्हें भी अनावृत कर निरपेक्ष रचनाधर्म का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्वाह किया है। इस तथ्य को साध्वी प्रमुखाजी ने डालिम चरित्र में इस प्रकार स्वीकार किया है—"दुर्बलता की अभिव्यक्ति से व्यक्तित्व खंडित नहीं होता, भविष्य में संभावित देवीकरण की कल्पना का निरसन होता है। इस विषय में जैन आगम बहुत स्पष्ट रहे हैं। वहाँ जैन साहित्य के बहुचर्चित व्यक्तित्वों के दुर्बल पक्ष को भी छिपाने का प्रयत्न नहीं किया गया है।"

तेरापंथ के इन महान् रचनाकारों ने अपनी रचनाधर्मिता से केवल संघ-सेवा का ही कर्तव्य निर्वहन नहीं किया है, बल्कि आदर्श पात्रों और चरित्रों को जनसामान्य के शिक्षणार्थ प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

१. अमरगाथा, पृ० ९
२. कीर्तिगाथा, ४
३. वही, ८
४. वही, २०
५. वही, ४०
६. वही, ४३
७. वही, ४५
८. वही, ५१
९. वही, ८५
१०. शासनविलास
११. कीर्तिगाथा, २९९
१२. वही, २९१
१३. वही, २९९
१४. वही, ३०८
१५. वही, भूमिका
१६. कालूयशोविलास, १२
१७. वही, १८
१८. वही, ४२
१९. वही, ४६
२०. वही, ५३
२१. कालूयशोविलास, ३१५
२२. वही, ३५०
२३. वही,
२४. माणकमहिमा—सम्पादकीय से
२५. माणकमहिमा, ३३
२६. वही, ५१
२७. वही, ८८
२८. वही, ८९
२९. डालिम चरित्र, ३५
३०. वही, १५०
३१. मगनचरित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य भिक्षुकृत जम्बूचरित का सांस्कृतिक अध्ययन

☐ समणी स्थितप्रज्ञा

संस्कृति किसी भी राष्ट्र की उत्कृष्टतम विभूति होती है। राष्ट्र-विशेष का जीवन-मरण, उसकी उन्नति-अवनति, उसकी प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा आदि तथ्य उसकी संस्कृति पर ही आधारित रहते हैं। जिस राष्ट्र की संस्कृति जितनी ही उदात्त और जनीन होती है वह राष्ट्र उतना ही गौरवशाली बनता है।

भारतीय साहित्य में संस्कृति शब्द एक अर्वाचीन शब्द है। प्राचीन-काल में संस्कृति का अर्थ तो संस्कार से ही सम्बन्धित था। आगे चलकर इसे अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' के अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा। जहाँ तक संस्कृति की परिभाषा का प्रश्न है, संस्कृति ऐसी चीज है जिसे लक्षणों में तो हम जान सकते हैं किन्तु इसकी परिभाषा नहीं दे सकते। डॉ० रामजी उपाध्याय के मतानुसार 'संस्कृति वह प्रक्रिया है जिससे किसी देश के सर्वसाधारण का व्यक्तित्व निष्पन्न होता है। संस्कृति से मानव-समाज की उस स्थिति का बोध होता है जिससे उसे सुधारा हुआ, ऊँचा, सभ्य आदि आभूषणों से आभूषित किया जाता है।...शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक शक्तियों का विकास ही संस्कृति का मुख्य उद्देश्य है।'[1]

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि संस्कृति बाह्य और अभ्यन्तर दोनों तरह की स्थिति, परिष्कार और विकास का नाम है जिसमें मानसिक संस्कार, रीति-रिवाज, धार्मिक-भावनाएं, लोक-विश्वास, शकुन-अपशकुन आदि प्रसिद्ध हैं।

प्रस्तुत निबन्ध में आचार्य भिक्षु द्वारा रचित 'जम्बूकुमार चरित' के आधार पर सांस्कृतिक तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है।

सामाजिक रीति-रिवाज—

विवेच्य ग्रंथ में अनेक संस्कारों का उल्लेख मिलता है। जिनमें निम्न-लिखित संस्कार प्रमुख हैं—

१. जन्म संस्कार :—प्रस्तुत ग्रन्थ में जन्म संस्कार का उल्लेख मिलता है। राजगृह नगरी में ऋषभदत्त सेठ की पत्नी धारिणी के गर्भ में जब बच्चा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आया तब माँ ने स्वप्न में आकाश से उतरते हुए जम्बू वृक्ष को देखा। इस स्वप्न के आधार पर बच्चे का नाम जम्बूकुमार रखा गया।[१] उस समय भी जन्म संस्कार जन्म महोत्सव के रूप में धूम-धाम से मनाया जाता था।[२]

२. **विवाह संस्कार** :—विवाह के दिन जम्बू को पट्ट पर बैठाकर सुगन्धित पदार्थों से शरीर की मालिश कर स्नान कराने तथा बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित कर विशाल बारात के साथ विवाह करने का उल्लेख है। वहाँ तोरण-बाँधना, आरती करना, चंवरी में बैठना और माता-पिता द्वारा हथलेवा दान करने का भी वर्णन है।[३]

(i) **अन्तर्जातीय विवाह** :—विद्या प्राप्ति के लिए ब्राह्मण का चण्डालिणी के साथ विवाह करना अन्तर्जातीय विवाह का द्योतक है।[४]

(ii) **बहुपत्नीप्रथा** :—शिवकुमार नामक राजकुमार की पाँच सौ कन्याओं के साथ विवाह होने का उल्लेख है।[५] जम्बूकुमार का भी आठ श्रेष्ठी कन्याओं के साथ परिणय का उल्लेख मिलता है।[६]

३. **दहेजप्रथा** :—दहेज के बारे में भी विस्तृत वर्णन मिलता है, उदाहरण के तौर पर—

"निनाणू कोड रो सोनईया दिया ए, बले रूपईया जाण।
दीधा घणा हर्ष सूं ए, मन मांहें उद्यम आण।
पुत्री ने आपिया ए।[७]

४. **वैदिक संस्कारों का प्रभाव** :— प्रभव जम्बू से कहता है पुत्र होने के बाद संयम ग्रहण करना, क्योंकि पुत्र के बिना सद्गति नहीं होती। जैसा कि कहा गया है—

"अपुत्रिया नें सद्गति नहीं, कह्यो पुराण मझार।
तिणसूं एक पुत्रं हुवां पछे, छोड दीजे संसार॥"[८]

(i) **दीक्षा संस्कार**—जम्बूकुमार के दीक्षा महोत्सव का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

"ए पाँच सो अठाबीसां तणा, किया दिख्या महोच्छव पूर।
धन खरचे तिहां अति घणो, बाजंत्र बाजे रह्या छे तूर॥[९]

(ii) **मृत्यु संस्कार** :- मृत्यु संस्कार का वर्णन करते हुए कहा है—

"पुत्रां बिना पिंड कुण सारसी, पाणी कुण देसी लार।
श्राद्ध करसी कुण तांहरो, फूल कुण घाले गंगा मझार॥"[१०]

५. **लोकविश्वास** :—बसन्तपुर नगर में गलती करने वाले व्यक्ति को देवी के मन्दिर में ले जाया जाता था और यह विश्वास था कि गलती करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले व्यक्ति को देवी मार देती है।[१२] एक जगह ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि जंगल में एक कुण्ड में स्नान करने से बन्दर सुन्दर मनुष्य और बन्दरी सुन्दर महिला के रूप में परिणत हो गयी।[१३]

६. **कला** :—उस समय बहत्तर कलाओं का प्रशिक्षण दिया जाता था ऐसा उल्लेख भी मिलता है।[१४]

स्वभावगत संस्कार :—

मनोविज्ञाव के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग संस्कार होते हैं। जम्बूकुमार चरित्त में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है।

(क) **सज्जन पुरुष स्वभाव** : माता-पिता के आग्रह के कारण जम्बू विवाह करने को उद्यत हो जाता है, लेकिन वह दूत के माध्यम से आठों कन्याओं और उनके माता-पिता के पास सन्देश भेज देता है कि मैंने आजीवन शीलव्रत को स्वीकार कर लिया है। इसलिए आप चिंतन पूर्वक निर्णय लें क्योंकि मैं किसी को धोखा नहीं देना चाहता।[१५]

(ख) **दुर्जन पुरुष स्वभाव** :—राजकुमार प्रभव गलत संस्कारों के कारण चौर्यवृत्ति में संलग्न होने पर ५०० चोरों के साथ जंबू के घर चोरी करने के लिए आता है। वे अपनी तालोट्टघाटिनी और अवश्वापिनी विद्या के प्रयोग से ९९ करोड़ मुद्राओं को गठरियों में बांध लेते हैं।[१६]

(ग) **सज्जन स्त्री स्वभाव** :—आचार्य भिक्षु ने नारी के उत्कर्ष स्वभाव को भी उजागर किया है। उदाहरण के तौर पर भावदेव—मुनि मानवीय दुर्बलता के कारण संयम से विचलित हो जाते हैं तो नागला पूरे साहस के साथ अपने पति मुनि को सन्मार्ग दिखाती है। मुनि संयम में पुनः स्थिर होकर सिंहवृत्ति के साथ संयम का पालन करते हैं।[१७] जम्बूकुमार की आठ पत्नियों का स्वभाव भी उत्कृष्टता का द्योतक है कि जम्बूकुमार यदि शील का पालन करता है, संयम लेता है तो हम भी उसी पथ का अनुशरण करेंगी।[१८]

(घ) **दुर्जन स्त्री स्वभाव** :—कपिला आदि रानियों तथा कुबेरसेना आदि वेश्याओं के दुश्चरित्र का भी वर्णन मिलता है।[१९]

(ङ) **साधु स्वभाव** :—सुधर्मास्वामी के स्वभाव को उल्लिखित करते हुए कहा गया है कि उन्होंने क्रोध-मान-माया-लोभ पर विजय प्राप्त कर ली। परिषह उत्पन्न होने पर क्षोभ-रहित, निद्राजयी आदि उनके अनेक गुणों का वर्णन मिलता हैं—

> गुण घणाईज छे त्यां मांय, ते एकण जीभ सुं केम कहवाय।
> आर्यक्षेत्र में करे उग्र बिहार, भव जीवां रा तारण हार॥"[२०]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोरंजन के साधन —

धनिक लोग गगनचुम्बी सुन्दर महलों में निवास करते थे, जिसमें मन को तृप्ति देनेवाले हीरे, रत्नों आदि से जटित जालीदार खिड़कियाँ होती थी। बैठने के लिए आराम-दायक सिंहासन होता था।[२१] बाजीगर बन्दर को नचाकर लोगों के दिलों को खुश करते थे।[२२] तथा मनोरंजन के लिए राजा महलों में भी बन्दर रखते थे।[२३] एवं आमोद-प्रमोद के लिए सुन्दर उद्यान होते थे।[२४]

धार्मिक भावनाएं—

प्रस्तुत ग्रन्थ मे साधना के विविध पहलुओं द्वारा धार्मिक भावनाओं का दिग्दर्शन कराया गया है—

१. उपासना :—उपासना पद्धति भी लौकिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार से की जाती थी। जैसे लौकिक में—

(क) गणेश पूजा :—निर्धन को बुद्धि और सिद्धि द्वारा ६ महीने तक गणेश पूजा करने पर प्रतिदिन मुहरों की प्राप्ति होने लगी।[२५]

आध्यात्मिक दृष्टि से जैसे—

(ख) भगवान महावीर की उपासना :—भगवान् महावीर का पदार्पण राजगृह नगरी में होता है। राजा श्रेणिक विशाल परिकर के साथ जाकर भगवान् को वन्दन करता है तथा देशना सुनता हैं। भगवान् महावीर ने मुक्ति के ४ मार्ग दान, शील, तप और भावना का विस्तार से वर्णन किया है।[२६]

"न्हासी जाए दलिद्र दान थी, शील थी दुर्गति रो नास।
(राजेश्वर भावना)
कर्मा रो नास छे तप थकी, भावनां सूं भवां रो विनास।"

ए च्यारूंई मार्ग मुगत रा।[२७]

राजा श्रेणिक ने विशाल परिषद् में भगवान् महावीर से प्रश्न पूछा—भगवन्! आपके शासन का अन्तिम केवली कौन होगा?

भगवान् ने राजा की जिज्ञासा का समाधान करते हुए जम्बूकुमार का उल्लेख किया।[२८]

२. **व्रत** :—भगवान् महावीर की वाणी सुनकर राजा श्रेणिक आदि लोगों ने अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार व्रतों को स्वीकार किया।[२९] कुछ स्थलों पर बारह व्रतधारी श्रावक-श्राविकाओं का भी उल्लेख मिलता है।[३०]

१. दान—दाता के उत्कृष्ट परिणाम, शुद्ध पदार्थ और सुपात्रत इन तीनों के योग से कर्म क्षय हो जाते हैं तथा दान से व्यक्ति तीर्थंकर गोत्र का भी बन्ध कर लेता है।[३१]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. **शील** :—शील को सब व्रतों में श्रेष्ठ बताया गया है। ब्रह्मचारी की विशेषताओं को उजागर करते हुए कहा गया है—

"च्यारूं जात रो देवता, कर ब्रह्मचारी नां गुणग्राम।
जिण नव कोटि शील आदरचो, तिण नें नित-नित बांदे नाम।"[३२]

३. **तप** :—तप की उत्कृष्टता को बताते हुए कहा है—

"कर्म कटे तपसा कियां, तपसा छे मोटो निधान।
कोड भरां रा कर्म संचिया, ते कट जाए तप सूं आसान।"

तप के बारह भेदों का भी संकेत मिलता है।[३३]

४. **भावना** :—भावना के द्वारा ही व्यक्ति संसाररूपी समुद्र का पार पा सकता है। कहा भी है—

"भावना सुध भाया थंका, तो थोड़ा में कटे कर्म जाल।
अनंत भव करणा छेदनें, मुगत जाए तत्काल।
राजेश्वर भावना।।"[३४]

५. **साधु जीवन के कष्ट** :—धरती पर शयन, केशलुञ्चन, सर्दी-गर्मी सहन करना तथा २२ परीषहों को सहना, घर-घर से भिक्षा लाना, नंगे पांव चलना आदि कष्टों का ११ वीं ढाल में विस्तार से वर्णन है।[३५]

६. **संयम** :—सुधर्मा स्वामी के पास जम्बू आदि एक सौ अट्ठावीस व्यक्तियों ने संयम ग्रहण किया। जम्बू स्वामी को अनेक उपमाओं से उपमित किया गया है। ४६ वीं ढाल में उनके संयमी जीवन के गुणों का उत्कृष्ट वर्णन किया गया है—

"गुण तो त्यांनें छे अतिघणा, समुद्र जेम अथाय हो।
कोडजिभ्या करे वर्णवे, तो ही पूरा कह्या न जाय हो।।[३६]

दार्शनिक दृष्टियाँ—

१. **पुनर्जन्म** :—राजा श्रेणिक ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—भगवन्! जम्बूकुमार कौन होगा?

भगवान् ने राजा श्रेणिक के प्रश्न का उत्तर देते हुए जम्बूकुमार के पिछले चार भवों का उल्लेख किया।[३७] प्रस्तुत ग्रंथ में और भी अनेक जगह पुनर्जन्म की चर्चा मिलती है।[३८]

२. **कर्मवाद** :—आचार्य भिक्षु ने इस ग्रन्थ में जगह-जगह कर्मवाद का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है, जैसे—

"एक पाणी रा बिंदू मझे, मात-पिता असंख्याता होय।
त्यांरो नित गटको करूं, त्यां साह्यों क्यूं नहीं जोय।।"[३९]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"मोह अंध जीव फिरे मतवालो,
त्यांनें सदगुरु री सीख न लागे रेलो।
हंस-हंस कर्म बांधे दिन राते, त्यांरी खबर पडेसी आगे रे लो ॥[४०]

२८ वीं ढाल में उल्लेख है—घोड़ी के अनाज खाने में अन्तराय देने से चारक के प्रचुर कर्मों का बन्ध होता है, जिसके कारण वह मरकर कुरूप ब्राह्मण बनता है तथा उसे चारों ओर तिरस्कार ही तिरस्कार मिलता है।[४१]

३. संसार की नश्वरता :—जम्बूकुमार ने अपनी ८ पत्नियों को संसार की नश्वरता का प्रतिबोध दिया। जिसका विस्तृत वर्णन १४ वीं ढाल में है।[४२] और भी कई स्थलों पर बार-बार संसार की नश्वरता का चित्रण मिलता है।[४३] जम्बू ने प्रभव चोर को भी संसार की क्षणभंगुरता को बतला कर प्रतिबोध दिया।[४४]

(क) कामभोग नरक का द्वार :—जम्बू अपनी पत्नी समुद्रश्री को समझाते हुए कहता है—

कामभोग आमिष जिसा जी, काग जिसा जे जीव।
ते रति पामसी कामभोग में जी, त्यां दीधी नरक री नींव।'[४५]

(ख) दुःख का कारण लोभ :—पद्मश्री अपने पति जम्बू से कहती है, कि जैसे बन्दर ने देवता बनने का लोभ किया तो वह बहुत दुःखी हुआ। आपको भी बन्दर की तरह पश्चात्ताप न करना पड़े इसलिए मोक्ष-सुख की लालसा को छोड़ पुण्य से उपलब्ध सुखों का ही उपभोग करें।[४६]

(ग) दुष्कर्म से दुर्गति :—ललितकुमार ने विषयासक्ति के कारण रानी से प्रेम किया तो उसे सेतखाने में गिरना पड़ा। इसलिए जम्बू अपनी पत्नी जयन्तश्री से कहता है कि यदि मैं तुम लोगों से प्रेम करता हूँ तो नरक-निगोद में पड़ जाऊँगा तथा चारों गति में भ्रमण करना पड़ेगा। अतः मैं ललितकुमार की तरह मूर्ख नहीं हूँ। मुझे चारित्र लेकर अष्टकर्म-क्षय कर मोक्ष को प्राप्त करना है।[४७]

(घ) सच्चा मित्र :

"हूं तो मित्री करसूं जिन धर्म नें, ज्यूं म्हारा सुधरे आतम काजो जी।
हूं छूटूं संसार नां दुःख थकी, पामूं मुगतपुरी नों राजो जी ॥[४८]

(ङ) लक्ष्य :—जम्बू कहता है—मेरा एक ही लक्ष्य है मोक्ष प्राप्त करना। जैसे—

"म्हारो बंछा एक मुगत री, अवर न आवे दाय।"[४९]

(च) सद्गुरु :—जम्बू अपनी पत्नी कनकसेना को समझाते हुए कहता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"पिण मोनें तो मोटा सद्गुरु मिलिया,
म्हें जाण्यो जिन धर्म साचो रे।"[४०]

(छ) रत्नत्रय का महत्त्व :—

जम्बू अपनी माता से कहता है—मोह करने से कर्मों का बन्ध होता है। चारित्र के पालन से संसार परिभ्रमण समाप्त हो जाता है और शिवरूपी रमणी का शीघ्र वरण होता है—

"ए साधपणो सुध पालियां, माता कटे छे कर्मा रा जाल।
शिव रमणी वेगी वरे, वले मिट जाए सर्व जंजाल॥"[४१]

नव तत्त्व विचारणा—

सुधर्मास्वामी जम्बूकुमार को नवतत्त्व के स्वरूप को समझाते हैं—

"सुधर्म स्वामी तिण अवसरे, बागरी वाणी अनूप।
जीवादिक नव तत्त्व तणो, कह्यो विवरा सुध स्वरूप॥"[४२]

प्रभव चोर भी अपने ५०० साथियों को नव तत्त्व की विवेचना से प्रतिबोध देता है जिससे उनके मन में वैराग्य हो जाता है और संयम के लिए तत्पर हो जाते हैं।[४३]

१. **आत्म-चिंतन** :—प्रभव आत्म-चिंतन करता है कि मैं राजकुमार होते हुए भी सद्संस्कारों के अभाव में चोरों का अधिपति बन गया और कहाँ यह श्रेष्ठी जंबू जिसने सद्संस्कारों के कारण युवावस्था में ही धन और अप्सरा के समान सुन्दर ८ पत्नियों का परित्याग कर संयमी जीवन जीने के लिए तत्पर है। इसलिए मुझे भी जम्बूकुमार के साथ संयम ग्रहण कर अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहिए।[४४]

२. **मोक्ष की प्राप्ति** :—जम्बू स्वामी ने अनेक जीवों का उद्धार कर स्वयं भी अष्टकर्म-क्षय कर मोक्ष को प्राप्त किया—

"जम्बू स्वामी छेहला केवली, श्री वीर ना शासन मझार हो।
ते मुगत गया आरे पाँचमें, त्यांरो नाम लियांइ निस्तार हो॥"[४५]

इस प्रकार अनेक सांस्कृतिक तत्त्व जम्बूकुमार चरित में पाए जाते हैं।

संदर्भ :

१. शिवदत्तज्ञानी : भारतीय संस्कृति, पृ० १७
२. भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर-खण्ड २, जम्बूचरित, ढाल ७, दूहा ५, पृ० ५६५
३. वही, ६/गाथा २/पृ० ५६४
४. वही, ढा० १३, दु० १-६ पृ० ५७३-५७४
५. वही, ढा० २२, गाथा १-६ पृ० ५९२
६. वही, ६/४/पृ० ५६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. वही, १२/१-३/पृ० ५७१
८. वही, १३/१-२/पृ० ५७४
९. वही, ४२/दु० १८/पृ० ६२१
१०. वही, ४६/दु० ५/पृ० ६२७
११. वही, ४२/दु० ५/पृ० ६२१
१२. वही, १९/१-२६/पृ० ५८५-८६
१३. वही, १७/१०/पृ० ५८१
१४. वही, ६/३/पृ० ५६४
१५. वही, १२/७-१५/पृ० ५७१
१६. वही, ३४/दु० १-५/पृ० ६११
१७. वही, ५/५,६,९/पृ० ५६३
१८. वही, १८/३२-३४/पृ० ५७३
१९. वही, २०-२१/१-४०,१-२४/पृ० ५८७-९१
२०. वही, ७/१-७/पृ० ५६५
२१. वही, १४/दु० ३-५/पृ० ५७५
२२. वही, १७/२२-२४/पृ० ५८२
२३. वही, १८ २६-२७/पृ० ५८२
२४. वही, १/दु० २/पृ० ५५७
२५. वही, २५/१-५/पृ० ५९७
२६. वही, १/दु० ४-५/पृ० ५५७
२७. वही, १/१/पृ० ५५७
२८. वही, २/दु० २/गा० १/पृ० ५५९
२९. वही, २/दु० १/पृ० ५५९
३०. वही, १३/दु० ३-५/पृ० ६२३-२४
३१. वही, १/२-४/पृ० ५५७
३२. वही, १/१२/पृ० ५५८
३३. वही, १/१४-१५/पृ० ५५८
३४. वही, १/१७/पृ० ५५८
३५. वही, ११/१-५/पृ० ५६९-७०
३६. वही, ४६/१-१४/पृ० ६२८
३७, वही,६/१-१०/पृ० ५६३-६४
३८. वही, १०/१५/पृ० ५६९
३९. वहीं, १०/१४/पृ० ५६९
४०. वही, ८/९/पृ० ५६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. वही, २८/६-७/पृ० ६०२
४२. वही, ३५/दु० २-४/पृ० ६१२
४३. वही, ३६/१-१५/पृ० ६१४-१५
४४. वही, ३५/१-१५/पृ० ६१२-१३
४५. वही, १६/२-१०/पृ० ५७९-८०
४६. वही, १७/१-३३/पृ० ५८०-८२
४७. वही, ३२/१-१९/पृ० ६०७-८
४८. वही, ३०/२४/पृ० ६०५
४९. वही, १६/दु० २/पृ० ५७९
५०. वही, २४/१३/५९६
५१. वही, ४५/१-१३/पृ० ६२६-२७
५२. वही, ८/दु० ३/पृ० ५६६
५३. वही, ४४/१-११/पृ० ६२५-२६
५४. वही, ४३/१-११/पृ० ६२४
५५. वही, ४६/१५-२०/पृ० ६२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापंथ-प्रबोध—एक अध्ययन

☐ समणी प्रतिभाप्रज्ञा

भारत भूमि पर अनेक संत कवियों ने जन्म लिया है। उनमें सूर, तुलसी, कबीर, दादु आदि ने अपनी अनुभूति को शब्दों का परिधान पहनाकर शाश्वत सत्यों की अभिव्यक्ति दी। उसी श्रृंखला में आचार्य तुलसी एक निसर्ग-संत कवि हैं। धर्म-संघ का प्रशासनिक दायित्व बड़ी कुशलता व आत्मीयता से निभाते हुए भी उन्होंने साहित्य की असाधारण सेवा की है। उनकी लम्बी काव्य-यात्रा की यात्रा करना सरल नहीं है। मैं अपनी यात्रा का विषय आचार्य श्री के सद्यस्क-सृजन की नई कड़ी 'तेरापंथ प्रबोध' को बना रही हूँ।

'तेरापंथ प्रबोध' एक इतिवृत गीत होने के साथ-साथ कवि के आराध्य का सम्पूर्ण जीवन-वृत है। इस गीत की विषय-वस्तु अत्यन्त विस्तृत है। ससीम शब्दों में असीम तथ्यों की अभिव्यक्ति इस बात का द्योतक है कि अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों का निर्माण तेरापंथ प्रबोध के एक-एक पद्य के आधार पर किया जा सकता है। कोई जिज्ञासु समाधान पाना चाहे कि तेरापंथ क्या है? कैसा है? इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है? इसका उद्‌भव और विकास कैसे हुआ? आदि ऐसे ही अनेक प्रश्नों का समाधान इस गीत में निहित है।

प्रत्येक गीत का अभिलक्ष्य होता है—महद्‌चरित्र एवं महदुद्देश्य की प्रतिष्ठापना। वह महद्‌चरित्र कोई उपजीव्य स्तव्य एवं समर्थ व्यक्तित्व होता है, जिसके प्रति गीतकार की साहजिकी-श्रद्धा किसी कारणवशात् स्वयमेव शाब्दिक रूप में अभिव्यक्त होने लगती है। विवेच्य गीत में एक महान्-व्यक्तित्व आचार्य भिक्षु के चरित्र की स्थापना की गई है। उनके विभिन्न रूपों का चित्रण हुआ है। राजस्थान के कंटालिया ग्राम में पिता बल्लुशाह व माता दीपां के घर पर वि. सं. १७८३ में एक पुत्र-रत्न हुआ।[1] बालक का नाम भीखण रखा गया। नवजात शिशु बचपन से ही तेजस्वी था[2]—'न खलु वयस्तेजसो हेतु:' तेजस्विता का हेतु अवस्था नहीं है, इसका सत्यापन बालक भीखण में होता है।

आचार्य भिक्षु स्कूल या कॉलेज नहीं गये। उन्होंने अध्ययन के नाम पर कुछ पहाड़े, महाजनी हिसाब आदि सीखे। परन्तु औत्पत्तिकी बुद्धि[3] की विपुल सम्पदा उनके पास थी जिसे आधार पर वे [illegible]सको कभी नहीं देखा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसके बारे में कभी नहीं सुना, ऐसे अर्थ के विषय में भी वे तत्काल जवाब देते थे। तत्कालीन परम्परानुसार अल्पायु में ही भीखण जी का विवाह हो गया। साधु-साध्वियों के सान्निध्य में रहने से भीखण जी व उनकी पत्नी के मन में वैराग्य भावना जाग्रत हो गई। एक ओर साधु जीवन की तैयारी दूसरी ओर काल का क्रूर व्यंग्य। अकस्मात् पत्नी का वियोग हो गया। इस घटना ने जाग्रत-भीखण को और जगा दिया।[४]

भीखण दीक्षा के लिए तैयार हो गये परन्तु माता मोहवश अनुमति नहीं दे रही है। आचार्य रघुनाथ जी स्वयं समझाने को आते हैं। माँ कहती है मेरा बेटा राजा बनेगा। जब यह गर्भ में था तब मैंने सिंह का स्वप्न देखा था। इसलिए में इसे साधु नहीं बनाऊँगी। आचार्य रघुनाथजी ने कहा यह साधु बन कर सिंह की तरह गूँजेगा।[५] कोई राजा बनता है, अपने देश में राज करता है साधु तो राजाओं का भी राजा होता है। इस बात से दीपां बाई प्रभावित हो गई। भीखण जी को दीक्षा की आज्ञा प्राप्त हो गई। वे मुनि बन गये।

मुनि भीखण जी ने देखा शास्त्रों में वर्णित मुनिचर्या और तत्कालीन साधुओं की चर्या में मेल नहीं है। कथनी और करनी का अन्तर देख संदेह उभरा। इसी समय राजनगर के श्रावकों ने साधु-संघ में बढ़ रहे शिथिलाचार और सुविधावाद से खिन्न होकर साधुओं को वंदना करना छोड़ दिया। मुनि भीखण को श्रावकों को समझाने हेतु राजनगर भेजा गया। उनका समझाने का ढंग इतना विलक्षण था कि श्रावक उनके प्रभाव में आ गये। उसी रात मुनि भीखण को तीव्र ज्वर आ गया। ज्वर का कारण खोजते-खोजते उन्हें आत्मग्लानी होने लगी कि मैंने श्रावकों की सही बात झुठलाने का प्रयत्न किया है। यदि मैं स्वर-मुक्त हो जाऊँ तो नये सिरे से इस परिस्थिति पर विचार करूँगा। सत्संकल्प ने दवा का काम किया। भीखणजी स्वस्थ हो गए। वहाँ से आकर उन्होंने गुरु को समझाने का बहुत प्रयत्न किया पर गुरु नहीं माने, अन्त में उन्हें संघ छोड़ना पड़ा।[६] अभिनिष्क्रमण कर पहली रात श्मशान में बितायी।[७] यहीं से संघर्षों की कहानी प्रारम्भ हो जाती है। जीवन की अनिवार्य अपेक्षाओं की पूर्ति भी मुश्किल हो गई। लेकिन विषम परिस्थितियों में वे अडिग रहे। अपनी साधना में जप-तप आदि से नया निखार लाते रहे।

एक दिन फतेहमलजी दिवान भीखणजी की धर्मक्रांति के संबंध में चर्चा कर रहे थे। उनके पास सेवग है जाति का एक कवि खड़ा था। वह सारी बातें ध्यान से सुन रहा था। तेरह साधु, तेरह श्रावक संख्या का अद्भुत योग देखकर उसने एक दोहा सुनाया—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साध साध रो गिलो करै, ते आप आप रो मंत ।
सुणज्यो रे शहर रा लोगां ! अै तेरापंथी तंत ।।[८]

सेवग का यह दोहा शीघ्र प्रसारित हो गया । तेरापंथ नाम सुनकर एक बार भीखण जी चौंके, फिर चिंतनपूर्वक स्वीकार करते हुए वंदन-मुद्रा में बोल उठे—"हे प्रभो ! यह तेरा पंथ"[९] यानी तेरा पंथ—प्रभु का पंथ, सबका पंथ । इसकी तात्त्विक व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा—जिस पंथ के साधु पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति इन तेरह नियमों का पालन करें, वह तेरापंथ है ।[१०] स्वतः ही संघ बन गया, उसका विधिवत् नामकरण हो गया । आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन मुनि भीखण जी आदि साधुओं ने नई दीक्षा ग्रहण की ।

आचार्य भिक्षु के प्रति चारों ओर विरोध का वातावरण था । एक बार केलवा में उन्हें ठहरने को स्थान नहीं मिला । लोगों ने 'अन्धेरी ओरी' का रास्ता बताया ।[११] भीखण जी वहीं ठहर गये । वह स्थान बड़ा भयावह था । यक्ष का बड़ा उपद्रव था । उस रात यक्षदेव ने कठिन परीक्षा ली, पर भीखण जी अप्रकम्प रहे अडोल रहे । रात बीती । उन्हें जीवित देख लोगों में आश्चर्य का पारावार न रहा । वहाँ के ठाकुर सहित पूरा गाँव तेरापंथी बन गया ।[१२] लगता है यहीं से वे स्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हो गये ।

जीवन भर संघर्षों की कसौटी पर कसते-कसते वे कुन्दन बन निखर उठे । वे एक क्रांतिकारी युग-पुरुष थे । उस समय धर्म-गुरुओं और धार्मिक लोगों ने धर्म को जाति, वर्ग, सम्प्रदाय और क्रियाकांडों में उलझा दिया था । आचार्य भिक्षु ने प्रतिवाद करते हुए कहा—"धर्म व्यापक तत्त्व है उसे जाति, सम्प्रदाय की सीमाओं में क्यों बाँधा जाए ।" धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—

० सत्प्रवृत्ति धर्म है, असत्प्रवृत्ति पाप है ।
० त्याग धर्म है, भोग पाप है ।
० संयम धर्म है, असंयम पाप है ।

धर्म की ये परिभाषाएं अपने आप में निर्विवाद व सार युक्त हैं ।

आचार्य भिक्षु केवल साधक, धर्म-संघ के संस्थापक, प्रचारक और अनुशासक ही नहीं थे, वे अपने युग के उत्कृष्ट साहित्यकार, आशुकवि भी थे । उन्होंने अपने जीवन में अड़तालीस हजार पद्य परिणाम ग्रन्थों की रचना की । गीतकार ने एक पद्य में उसका उल्लेख किया है—

नव पदार्थ, अनुकम्पा, श्रद्धाऽऽचार व्रताव्रत चौपाई
बारहव्रत, निक्षेप, विनीत, विपुल साहित्य पढ़ो भाई !
हो सन्तां ! भिक्खू-दृष्टांत तो हियड़ै रो हार हो ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखी शील री बाड़, रास टालोकर एकल री ढ़ालां
आगम रा आख्यान, थोकड़ा सावधान हो संभाला,
हो सन्तां ! अपणै जुग रा सर्वोत्तम सिरजणहार हो ।[13]

वे श्रम के देवता और अनुशासन के अधिष्ठाता थे इसी बात को प्रकाशित करती हैं ये पंक्तियाँ····

जीवन भर यायावर स्वामी·····[14]
प्रतिदिन व्याख्यान गोचरी श्रम सहचार हो··· ···

अन्तिम समय में आचार्य भिक्षु को अवधिज्ञान हो गया था। सात प्रहर के अनशन के साथ उन्होंने पंडित मरण का वरण किया।[15]

विवेच्य गीत भव्य जीवों के लिए संसार संतरण-समर्थ नौका के समान है। जीव मात्र को सांसारिक भोगों एवं भयंकर कष्टों से उपरमित कर धर्म-मार्ग में प्रतिष्ठापन एवं निर्वाण-शाश्वत शिव की प्राप्ति ही इसका उद्देश्य है। 'खुलग्यो अन्तःस्फुरणा रो अभिनव द्वार हो' जीव जगत् के अन्त-द्वार का उद्घाटन ही कवि को अभिप्रेत है।

जो काव्य की सुन्दरता का संवर्धन करे, सजाए उसे अलंकार कहते हैं। कवि ने स्थान-स्थान पर उपमा, रूपक, परिकर एवं स्वभावोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। बालक भीखण के जन्म के स्वाभाविक वर्णन में स्वभावोक्ति अलंकार ध्वनित हो रहा है।

राजस्थान गाम कंटालिय आधाढी तेरस आई,
बल्लु शा दीपां घर जायो पुत्र फली है पुण्याई ।।[16]

अभिप्राय युक्त विशेषणों के माध्यम से गीतकार ने परिकार अलंकार का समीचीन प्रयोग किया है। मघवागणी के वर्णन में—आत्म-विजेता नव-नचिकेता वीतराग री बानगी····

इसी प्रकार आचार्य भिक्षु के व्यक्तित्व को उजागर करने हेतु—

चर्चावादी कुशल प्रशासक मीमांसक संगायक हो[17]····। अनुकूल रसों की पुनः-पुनः आवृत्ति अनुप्रास अलंकार का लक्षण है। तेरापंथ प्रबोध में अनेक स्थलों पर अनुप्रास की सुरम्य छटा गीत के सौन्दर्य की अभिवृद्धि कर रही है यथा—

ससुराल सहचरी सौभागण सुगणी बाई[18]
जागी जागरणा जाण्यो जग निस्सार हो[19]
निर्मल निर्मायी निश्छल निरहंकार हो[20]

प्रस्तुत गीत में उपमान और उपमेय का साम्य अनेक बार उपमा अलंकार का उत्कृष्ट नमूना बन पड़ा है।

गीत के प्रारम्भ में—"मरुधर रा मंदार हो" के द्वारा आचार्य भिक्षु को उपमित किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजऋषि जी के वर्णन में—

चमक्या सूरज-सा भैक्षप-गण गिगनार हो,
जीवन जीयो बण ज्योतिर्मय अंगार हो,
उपमान और उपमेय में अभेद वर्णित करते हुए
कामधेनु है विश्व भारती....[२१]
कनकप्रभा केसर क्यारी....[२२]

उक्त कथन रूपक अलंकार के निदर्शन हैं।

कथाओं में कथोत्प्ररोह की भांति गीतोत्प्ररोह की शैली इस गीत की अपनी विशेषता है। मूल गीत के प्रवाह के साथ तेरह इतर गीतों का समावेश हुआ है जो इस गीत के प्रवाह को अवरूद्ध नहीं करते अपितु उसे गति ही प्रदान करते हैं। ये तेरह गीत तेरापंथ आचार्य भिक्षु आदि से संबंधित हैं। भक्ति-रस का पिपासु जब तेरापंथ प्रबोध के प्रवाह में बहता है तब बीच बीच में 'रूं रूं में सांवरियो बसियो', 'प्रभो ! यह तेरापंथ महान', 'घणा सुहाओ माता दीपां जी रा जाया', 'स्वामीजी थांरी साधना री मेरु सी उँचाई' जैसे गीत रागिनियों के परिवर्तन की दृष्टि से गायक व श्रोता दोनों को भांति-भांति के व्यञ्जन के समान प्रतीत होते हैं। कवि ने मूल गीत में अन्य गीतों का संकेत मात्र किया है जो इस गीत—गुलदस्ते में खिले रंग-बिरंगे फूलों की तरह इसकी शोभा को प्रवर्धमान बना रहे हैं।

आगम कवि का आधार है। अतः आगमिक सूक्तों का सहज अवतरण गीत में एक नया आलोक भर रहा है। प्रमाद की घुमावदार घाटियों में 'समयं गोयम मा पयायए' का प्रतिबोध अप्रमत्तता का दिव्य दीपक है। इसी प्रकार 'लाभालाभे सुहे दुहे जीणे मरणे में सम रहणो' जैसे सूक्त से समत्व का सम्प्रेषण पाठक के मन में होता रहता है। यथास्थान लोकोक्तियाँ व कहावतों का भी उपयोग हुआ है। भीखण जी के व्यक्तित्व में बचपन से ही महापुरुष के लक्षण प्रतिबिम्बित हो रहे है—'होनहार विरुवान चीकणा-पात, इस बात का साक्षी है 'कर कंगण आंख्यां स्यूं दीखै फिरक करसी आरसी' आदि कहावतें गीत को समृद्ध बना रही हैं।

कवि स्वतन्त्र होता है। वह भाषाओं के आग्रह में नहीं बंधता। राजस्थानी भाषा में रचे इस गीत में सस्कृत, हिन्दी, गुजराती, उर्दू और अंग्रेजी भाषा के शब्द प्रयुक्त हैं। आचार्य श्री तुलसी की यह उदार मनोवृत्ति भाषायी आग्रह की दीवार को लाँघकर भावों को एक नया क्षितिज प्रदान कर रही है। हर भाषा के शब्द पानक रसवत् एक नया मिठास, एक नया आस्वादन पैदा कर रहें हैं। इकरार, तकरार, काफिलो, जुर्मानों जैसे उर्दू शब्द एवं मूड, सीन और युनिवर्सिटि जैसे अंग्रेजी शब्द अगदंकार, आमय, अधि देवता, अभिनिष्क्रमण, अध्यात्मतंत्र जैसे हिन्दी के शब्द एवं खतरी, आरसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गादी, ठावो, सवारे, संभार जैसे गुजराती शब्दों का समावेश हुआ है, वहीं ठेठ राजस्थानी के कुछ शब्द गीत की प्रभावोत्पादकता को सम्बर्द्धित होते हैं—उणायत, पगफेरो, थोकड़ा, नेगचार, खलता खोड़, सिओ-दाओ आदि।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस गीत का माहत्म्य है। प्रथम पद्य में आचार्य भिक्षु का जन्म "सतरै सै तंयासी संवतं सुखकार हो····" से प्रारंभ कर 'अट्ठारै सतरै स्यूं बत्तीसै लग विषम बगत बीत्यो····' 'अट्ठारै तेपन में दीक्षा संस्कार···· गुणसट्ठै मा-सुद सातम अंतिम मर्यादा पत्र है····'आचार्य भिक्षु के जीवन भर की समस्त महत्वपूर्ण घटनाओं का विवरण विक्रम संवत् के माध्यम से बताते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से कालक्रम का सत्यापन किया गया है। इस गीत में तेरापंथ की पूरी पट्टावली, समस्त साध्वी प्रमुखाओं का नामांकन, हेमराज स्वामी का मूल्यांकन और साथ में आचार्य तुलसी युग की देन अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान, आगम-संपदा, साहित्य सृजन, जैन विश्व भारती, पारमार्थिक-शिक्षण-संस्था, समण श्रेणी, जैन विश्व भारती मान्य विश्वविद्यालय आदि की चर्चा है। आचार्य तुलसी द्वारा संपादित, प्रेरित सर्वजन-हिताय सर्व-जन-सुखाय कार्यों की संक्षिप्त झलक अजाने मानस को जिज्ञासु बना देती है वही परिचित व्यक्ति को पूरी ऐतिहासिक यात्रा करवा देती है।

गीतकार ने गीत के माध्यम से संस्कृति की अभिव्यक्ति दी है। इसमें श्रमण संस्कृति का भावपूर्ण और यथा चित्रण हुआ है। साथ ही दर्शन और आचार की परम्पराओं का समुचित उल्लेख इस कृति का वैशिष्ट्य है। नय निक्षेप, धर्म, अहिंसा, सापेक्षवाद, साध्य-साधन जैसे शब्दों से दार्शनिक अवधारणाओं पर स्वतः प्रकाश पड़ रहा है। कवि ने कहीं संक्षेप रुचि को अपनाया है तो कहीं विस्तार रुचि को स्थान दिया है। पूरी घटना का सार संक्षेप 'पग-पग पर लोग लगास्यूं थारै लार हो···मर पूरा देस्यां,···पाली घी, घी सहित घाट ली, शेर गुफा में ही जनमें···ये सब समास शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आचार्य भिक्षु का जन्म, विवाह, वैराग्य, दीक्षा के पश्चात् कथनी-करनी को देख उठने वाला अन्तरद्वन्द्व तथा हेमराजजी स्वामी की दीक्षा का वर्णन व्यास शैली का उदाहरण है।

संक्षिप्त में तेरापंथ-प्रबोध एक शृंखला बद्ध इतिहास है जिसमें संस्मरणों की मिठास है, सैद्धांतिक सार है, श्रद्धा का उपहार है।

संदर्भ :

१. तेरापंथ-प्रबोध—सम्पादिका, महाश्रमणी साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा, पद्य स० १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. वही पद्य स० ३
३. वही पद्य स० ३
४. वही पद्य स० ६
५. वही पद्य स० १०
६. ,, २३
७. ,, २६
८. ,, पृ० संख्या ५४
९. ,, पद्य संख्या ३५
१०. ,, पृ० संख्या ५५
११. ,, पद्य संख्या ३६
१२. ,, ३७
१३. ,, ७०-७१
१४. ,, ७३
१५. ,, ७७
१६. ,, १
१७. ,, ७२
१८. ,, ०५
१९. ,, ०६
२०. ,, १०७
२१. ,, १२२
२२. ,, ११७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापन्थ का राजस्थानी प्रबंध–काव्य

☐ डॉ० उमाकांत

साहित्य को 'समाज का दर्पण', 'जीवन की व्याख्या', 'मानवीय चित्त-वृत्तियों का प्रतिबिम्ब' एवं जीवन की अनुकृति जैसे अभिधानों से संज्ञायित किया जाता रहा है। साहित्य की रचना में जहाँ साहित्यकार की सृजनात्मक कल्पना, शिल्प और मनस-तत्त्व क्रियाशील होते हैं वहीं प्राणतत्त्व की पुष्टि समाज और उस काल विशेष के आकलन तथा प्रभाव द्वारा होता है। साहित्य और जीवन जल और वीचि तथा वाक् और अर्थ की भाँति सम्पृक्त होते हैं। हमारे जीवन का लेखा-जोखा कलात्मक मुद्रा में साहित्य में विद्यमान रहता है। उत्कृष्ट साहित्य की कसौटी भी यही है कि वह देश, जाति और काल से अनुप्राणित होते हुए भी सार्वकालिक, जीवन-मूल्यों की प्रस्थापना करे। वस्तुतः साहित्यकार के व्यक्तित्व और समाज को स्वतन्त्र होकर नहीं देखा जा सकता। साहित्य संसार के प्रति हमारे भावों और विचारों की प्रभावपूर्ण शाब्दिक अभिव्यक्ति है। संवेदनशील हृदयों की आवेग-संकुलता एवं अनुभूति-प्रवण-छवियाँ बहुविध अभिव्यक्त होती हैं। क्रौंचवध की सामान्य सी घटना ने आदि कवि वाल्मीकि के जीवन के एक भाव विन्दु को महाकाव्य के महार्णव में परिवर्तित करने की प्रेरणा दी। इसी महार्णव की रसार्णव में परिणति 'रामचरित मानस' (तुलसी) में देखी जा सकती है। 'मेघदूत' में कालिदास का गीतात्मक उद्रेक खण्डकाव्य के रूप में बह निकला तो कबीर, सूर और तत्पश्चात् बिहारी-घनानंद ने संवेदना की अभिव्यंजना जीवनानुभवों से जुड़े सन्दर्भों में मुक्तक के अन्तर्गत की। वस्तुतः ये तीनों अभिव्यंजनाएं जीवन के पूर्ण या खण्ड या क्षणिक स्वरूप को रेखांकित करती हैं। इसी स्वरूप व्यंजना को दृष्टिगत करते हुए साहित्य शास्त्रियों और मनीषियों ने काव्य के तीन भेद किए—प्रथम प्रबन्ध काव्य, द्वितीय मुक्तक काव्य तथा तृतीय चम्पू काव्य।

काव्य के कथित तीनों ही भेदों में प्रबन्ध काव्य की महत्ता सर्वोपरि स्वीकारी गई है। 'रामायण', 'महाभारत', 'पउमचरिउ', 'पृथ्वीराज रासो', 'पद्मावत', 'रामचरित मानस', 'साकेत', 'कामायनी', 'उर्वशी', 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', 'संशय की एक रात' तथा हिन्दूयेत्तर महाकाव्यों में पैराडाइज-लॉस्ट, 'आइल्डस ऑफ द किंग', सोहराब एंड रूस्तम', 'लाइट ऑफ द एशिया' आदि को रेखांकित किए जाने तथा मानव जीवन की विकास यात्रा में 'शील

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का स्तम्भ[1] कहे जाने की पृष्ठभूमि में अपने समय और जीवन की सुस्पष्ट, सुबोध, व्यापक एवं जीवन्त चित्रांकन शक्ति ही क्रियाशील है। रसपरिपाक जितना प्रबन्ध-काव्यों में सम्भव है, उतना अन्य किसी काव्य रूप में नहीं।

प्रबन्ध का अर्थ है—बन्ध सहित अर्थात् जिस काव्य में शृंखलाबद्ध रूप में वस्तु-वर्णन हो। प्रबन्ध में कथा की अपेक्षा रहती है, और विविध कथाओं की शृंखला-बद्धता का रूप उसमें आद्यांत देखा जा सकता है। यह 'शृंखला-बद्धता' पूर्वापर सापेक्ष होती है। रचनाकार की दृष्टि और चिंतन प्रबन्ध की विशेषता रहती है। जीवन के चित्रण के स्वरूप को लेकर समीक्षकों ने प्रबन्ध काव्य को दो भागों में विभक्त किया है—प्रथम-महाकाव्य, द्वितीय-खंड काव्य। महाकाव्य वह महत् काव्य रूप है जिसमें व्यापक कथानक, विराट चरित्र कल्पना, गम्भीर अभिव्यंजना शैली, विशिष्ट शिल्प विधि और मानवतावादी जीवन दृष्टि से उसका रचयिता युग जीवन के उन्नत बोध को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रतिफलित करता है। श्रेष्ठ महाकाव्य की रचना मानवता के मंगलमय आख्यान और लोक मानस की चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होती है।[2] खण्ड काव्य जीवन खंड का अपने में पूर्ण चित्र होता है। इसमें जीवन के किसी एक मार्मिक पहलू की अनुभूतिमय व्यंजना होती है। जीवन के खण्ड का बोध मात्र कवि के हृदय में नहीं होता, प्रत्युत उसका समन्वित प्रभाव उसके हृदय पर पड़ता है। तब प्रेरणा के बल पर जो रूप खड़ा होता है वह खंड काव्य कहलाता है।[3]

महाकाव्य में जहाँ सर्गबद्धता, लोक प्रख्यात कथानक, उदात्त पात्र, सृष्टि और भाषा का आभिजात्य अनिवार्य है वहीं खंड काव्य में लोक प्रख्यात की शर्त अनिवार्यता के साथ नहीं जुड़ी है। सर्गबद्धता भी उसके लिए मानक नहीं है। जीवन के समस्त उत्कर्ष-विकर्ष का वर्णन भी उसके लिए जरूरी नहीं। अपने छोटे से कलेवर में उद्देश्य की गरिमा का निर्वहन व चित्रण उसमें रोचकता के साथ होता है। अगले पृष्ठों में इसी पृष्ठभूमि में तेरापन्थ के राजस्थानी प्रबन्ध-काव्यों को परखने और कुछ निष्कर्ष निकालने का विनम्र प्रयत्न करूँगा।

राजस्थानी प्रबन्ध-काव्य परम्परा—

विश्व की अन्यान्य भाषाओं की भांति राजस्थानी भाषा में प्रबन्ध काव्यों की आवरल परम्परा प्रवहमान रही है। राजस्थानी के प्रबन्ध काव्यों की महत्ता का भास इसी तथ्य से लग जाता है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास के आदिकाल का महत्वांकन और विश्लेषण जिन प्रबन्ध कृतियों से किया जाता है वे राजस्थानी भाषा की ही हैं। उनमें मानव जीवन के अनेक पहलुओं को छूने और उसे विविध दृष्टि-बिन्दुओं से आंकने का प्रयास हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन प्रबन्ध काव्यों की एक प्रमुख प्रवृत्ति वीर-भावना की रही है। वीरत्व तो जैसे राजस्थानी माटी के कण-कण में समाया है। यहाँ एक से एक विकट योद्धाओं ने जन्म लिया और उनके अद्वितीय शौर्य को अंकित कर उनकी यश-कीर्ति को अमर कर देने वाले काव्यों की रचना कवियों ने की।[४] आदिकाल की पहचान 'पृथ्वीराज रासो' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। 'हम्मीर रासो' इसी शृंखला की अन्य महत्वपूर्ण रचना है। पंचम वेद से संज्ञायित 'पृथ्वीराज राठौड़ की' 'बेलि कृष्ण रूक्मणी री' ने तो राजस्थानी के प्रबन्ध-काव्यों की परम्परा को ही सम्पन्न नहीं किया अपितु राजस्थानी भाषा की गरिमा को भी द्विगुणित किया है। इस कृति को विश्व वाङ्मय में भी समान रूपेण आदर प्राप्त हुआ है। 'ढोला मारू रा दूहा' और 'माधवानल कामकन्दला' प्रेम काव्य परम्परा की वंदनीय कृतियाँ हैं जिन्होंने आडम्बर, रूढ़ि और सायास शिल्प संरचना के चमत्कार से दूर रह कर शुद्ध हृदयोच्छ्वास को स्थानीय रंग मे सिक्त कर बिम्बायित किया है। हर जी रो ब्यावलों शृंगार और वीर रस की समन्वित हृदयग्राह्य व्यंजना पूर्ण प्रबन्ध काव्य कृति है।

इसी परम्परा में आधुनिक काल में भी प्रबन्ध-काव्यों का रचना प्रवाह विद्यमान है। इनके माध्यम से रचनाकारों ने वर्तमान का कलात्मक लेखा पुराख्यानक मुद्रा में प्रस्तुत किया है। पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक एवं लोक गाथाएं आधुनिक प्रबन्ध काव्य कृतियों की कथाधार बनी है, किंतु युग की प्रखर आवाज इन कृतियों को प्रासंगिक बनाती है। डा० मनोहर शर्मा कृत 'कुंजो', पंछी, 'मरवण', 'अमर फल', अंतरजामी, श्री सत्यप्रकाश जोशी कृत-राधा, कान्हमहर्षिकृत-मरुमयंक, विश्वनाथ विमलेशकृत-रामकथा, गिरधारी सिंह परिहारकृत मानखो एवं करणीदान बारहठकृत शकुंतला नाम्नी कृतियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय एवं चर्चित रही हैं।

तेरापन्थ का राजस्थानी प्रबन्ध काव्य—

राजस्थान के चारण कवियों ने जहाँ एक ओर अपनी मातृभूमि-मूर्ति के कर-कमल में तलवार और दूसरे में वीणा समर्पित की, वहाँ दूसरी ओर धर्मनिष्ठ जैन साहित्यकारों ने माँ के वरदहस्त को अहिंसा एवं शांति की पीयूषवर्षिणी धारा में अभिसिंचित किया।[५] इनमें तेरापन्थ के आचार्य साहित्यकारों का योगदान अविस्मरणीय है। समाज और संस्कृति को नूतन दृष्टिधारा से जोड़ने के साथ-साथ इस पंथ के आचार्यों ने साहित्य की विविध विधाओं में अपनी लेखनी का सफल प्रयोग किया तथा ऐसी रचनाएं सरस्वती के भंडार को अर्पित कीं, जो युगों-युगों तक सत्प्रेरणा का दिव्य प्रकाश फैलाती रहेंगी। आगमिक, तात्त्विक एवं दार्शनिक कृतियों के साथ-साथ आख्यानात्मक, जीवन चरित एवं मुक्तकगीत आदि विभिन्न विधाओं को समृद्ध और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पन्न करने में अपना योगदान दिया। पंथ के प्रवर्तक आचार्य श्री भीखण जी से आचार्य श्री तुलसी तक साहित्य-सृजन की अजस्रधारा निरन्तर प्रवहमान है। पंथ के प्रथम आचार्य श्री भीखण जी और आचार्यश्री तुलसी की काव्य-साधना प्रबन्ध काव्यों के क्षेत्र में भी प्रतिफलित हुई है। आचार्यश्री भीखण जी कृत द्रौपदी रो बखाण, जंबूकुमार चरित, एवं सुदर्शन चरित (खंड काव्य), भरत चरित (महाकाव्य) तथा आचार्यश्री तुलसी कृत 'कालूयशो-विलास' इस आदान की समीचीनकृतियाँ हैं। समीक्ष्य कृतियों में आगमिक कथाओं का पुनराख्यान और चरित गायन ही नहीं है अपितु दर्शन-आध्यात्म एवं लोक व्यवहार के विभिन्न सन्दर्भों का उत्कीर्णन इन कृतियों की निजूणी निखाली विशेषता है, जो इन कृतियों को गरिमापूर्ण स्वरूप देता है। मानव जीवन तथा समाज एवं चिंतन तथा अनुभूति का सांगोपांग चित्रण जिस रचना में होता है वह जनमानस का कण्ठहार बनती है। आचार्यश्री भीखण तथा आचार्यश्री तुलसी के समस्त साहित्य-सागर में अनुभूति की वीचियाँ चिन्तन की अगाध जल राशि पर वर्तन करती देखी जा सकती हैं। आलोच्य प्रबन्ध काव्यों में जहाँ अनुभूति की विविधोन्मुखी दिशाएं एवं दार्शनिक व्युत्पत्तियाँ विद्यमान हैं, वहीं समाज में गहरी संसिक्ति भी विद्यमान है। एक ओर जहाँ इन कृतियों में आध्यात्मिक आह्लाद की लहरों का सृजन हुआ है, वहीं इनमें विद्यमान संवेदना एवं अभिव्यक्ति के स्तर इसे उच्चकोटि के साहित्य की श्रृंखला में स्थापित करते हैं। आलोच्य कृतियाँ त्यागी, तपस्वी एवं समर्पित व्यक्तित्वों एवं उनसे जुड़े काल का सजीव बोध कराती हैं, वहीं जैन दर्शन के चिन्तन-व्यवहार में अवतरणा की जीवन्त गाथा प्रस्तुत करती हैं। यही इन कृतियों की सृजन-प्रेरणा का प्रस्थान बिन्दु है। इस दृष्टि से ये राजस्थानी को तेरापन्थ का विशिष्ट आदान भी है। इस क्रम में तेरापन्थ के राजस्थानी प्रबन्ध काव्य-कृतियों का परिचयात्मक विवेचन समीचीन होगा।

भरत चरित—

'भरत चरित' तेरापन्थ के प्रथम आचार्य भीखण जी द्वारा रचित है। राजस्थानी भाषा में रचित समीक्ष्य काव्य कृति की कथावस्तु का आधार ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से चयनित है तथा जैन समाज में चिर-परिचित है। ७४ ढालों में सुगुम्फित कथा 'जम्बूद्वीपपन्नति सूत्र' से चुनी गई है। महा-काव्य के परम्परागत स्वरूप एवं लक्षणों की पूर्ति यद्यपि यह कृति नहीं करती किन्तु उसमें वर्णित भरत के जीवन की जीवंत कथा लोक प्रख्यात कथानक पर आधारित है। ऋषभदेव बाहुबलि तथा अन्य सौ भाईयों की सह कथाओं के साथ भरत की वीरतापूर्ण विजयों और चक्रवर्ती सम्राट् बनने की कथा का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताना-बाना बुना गया है। राजस्थानी काव्य-परम्परा में वीर रस की अद्भुत अभिव्यंजना एक अनूठी विशेषता है उसे भरत चरित में भली भांति देखा जा सकता है। एक बानगी प्रस्तुत है—

सींहनाद ज्यूं बोले सूरा रे, ते तो हर्ष विनोद मे पूरा
घोड़ा कर रह्या छे ही सारा रे, त्यांरा शब्द लागा छै प्यारा।
हस्ती गुल जुलाट करेता रे, ते अम्बर जेम बाजंता
रथ करे रह्या घणा घणारो रे, त्यांरा अनेक मिलिया छै थारो
बाजा विविध प्रकार न बारे रे, जाणे आकाशे अंबर गाजै
रूड़ा रूड़ा शब्द प्रचंजे रे, ते पूरतो चाले ब्रह्मांडो
बल वाहण समुदाय छे वृन्दों रे, तिण सहित चाले नरिंदो।

युद्ध जो एक चिरन्तन समस्या है, मानवता युद्ध की समस्या से आक्रांत रहती है। युद्ध की समस्या का निदान क्या हो? युद्ध का दायित्व किसका? क्यों सत्ता-शीर्ष पर बैठे लोगों के व्यक्तिगत स्वार्थ और अहं के कारण आम जन को युद्ध की हिंसा को भुगतना पड़ता है? शांति की स्थापना के लिए क्या किया जाए? जैसे प्रश्न जो काव्य की सृजन प्रेरणा के कारण समाधान का संधान के साथ-साथ समीक्ष्य कृति का महत् उद्देश्य भी हैं—

राज कीजो जीतो जिको, हूं भदसू थांरी साख
बीजा अनेदा लोकां भणी, कांय मरावो अन्हाख।

अथवा स्वामी ऋषभदेव के मुख से दिलवाया गया यह कथन भी कथित सन्दर्भों की पुष्टि करता है—

प्रति बूझो रे, म्हें थाने दीधो राज
तिण राज सूं काज सीझे, प्रति बूझो रे।
खोस्यो जाय राज, ते राज न दियो थांने सही।
खोस्यो जाय राज, ते राजन जाणो आपणो।

सत्ता लोलुपों के प्रति यह प्रहार रचना को प्रासंगिक भी बनाता है। जब तक राज्य को अपनी निजी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन मानेंगे तब तक हिंसा का क्रम चलता रहेगा। बिना लोभ लालच और अहं प्रति-रोपण के लोक कल्याण की ओर उन्मुख होना चाहिए, मानवीय कर्तव्यों का पालन किया जाना चाहिए। इस कथ्य को कवि ने दार्शनिक व्यंजना देते हुए लिखा है—

तन धन से परिवार, इहां का इहां रहसी सही
परभव नावे लार, त्यासूं गरज सरे नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परहड़े सगा नें सेण, परहड़े संचियो धन हाथ रो
बंधव क्रिया नें पूत, नहिं परहड़े धर्म जगन्नाथ रो

० ० ०

इन्द्री विषय कषाय, र अभितर मोमिया बस करो
मेटो तृष्णा लाय, सुमता रस चित्त में धरो।

'भरत चरित' चरित्र प्रधान काव्य है। यद्यपि कवि का कौशल अधिश: प्रसंगोद्भावन में है तथापि चरित्र विश्लेषण द्वारा कथानक का विस्तार कथितरूप से अधिक हुआ है। यों कहा जाए कि 'भरत चरित' चरित्र प्रधान कथा सृष्टि है तो अतिशयोक्ति न होगी। भरत (प्रमुख पात्र) के साथ बाहुबलि, ऋषभदेव का भी चरित्रांकन हुआ है। चरित्रांकन का वैशिष्ट्य इसमें है कि यह प्रसंगानुकूल है किन्तु सीमा यह है कि सपाट बयानी जो सप्रयोजन है। सहज सम्प्रेषणीयता, महाकाव्योचित गरिमा का संस्पर्श नहीं कर पाती।

शिल्प के स्तर पर भाषा सरल राजस्थानी है और यह बात कृति के पाठक की सोच और समझ से रचनाकार के सृजन अनुभवों को सहजता से एकाकार कराती है जो कवि श्री भीखण का अभिप्रेत भी है। उदाहरणार्थ एक बानगी प्रस्तुत है—

पुन्न तो सुख छे संसारना, मोख लेखे सुख छे नांहि
ज्यां मोख तणा ओलख्या, ते रीझे नहीं इण मांहि।

या

काम भोग सूं करसी प्रीत, बाँधे कर्म रास ने जी
ते होसी चिहू गति माहें फजीत, परया मोह फस में जी

या

काम भोग मोह कर्म रोग, ते पिण नहीं सासता जी
तिण सूं छोड़ दो कांम ने भोग, राखो धर्म आसता जी।

वस्तुत: कवि का प्रयास शिल्प के चमत्कार के लिए क्रियाशील न होकर जैन सिद्धांत और युग-चिन्तन के सहज संप्रेषण के लिए रहा है। इसी कारण 'भरत चरित' महाकाव्य है। उन अर्थों में तो नहीं जिनका बखान साहित्य शास्त्र की परम्परागत मान्यताएं करती हैं, बल्कि लोक प्रख्यात कथानक, मूल्यपरक दार्शनिक चिन्तन की अन्विति और उदात्त चरित्र सृष्टि के कारण इसे महाकाव्य कहने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालूयशोविलास--

तेरापन्थ के साहित्यिक अवदान की महती शृंखला का द्वितीय पुष्प है महाकाव्य 'कालूयशोविलास'। उत्कर्ष काल के उत्कृष्ट काव्यों में आचार्य तुलसी की प्रथम काव्य कृति 'कालूयशोविलास' का महत्वपूर्ण स्थान है। राजस्थानी भाषा की अवरुद्ध धारा को योगदान देने वाला प्रस्तुत काव्य 'महाकाव्य' की श्रेणी में रखा जा सकता है। डा० ब्रजनारायण पुरोहित का यह कथन समीक्ष्य कृति की महत्ता एवं सामर्थ्य को स्पष्टतः रेखांकित करता है कि युग पुरुष कालूगणी के जीवन चरित्र पर आधारित यह कृति कवि आचार्यश्री तुलसी की सूक्ष्म पर्यवेक्षणा-शक्ति और रचना मेधा का जीवंत प्रमाण है। रचनाकार ने चतुर्थ उल्लास (कालूयशोविलास का कथा वितान 'षष्ठ उल्लास' में बुना गया है जो आठ सर्गों की शास्त्रीय लक्षण मान्यता को तोड़ता है किन्तु रचना में कथा की सुगुम्फितता और लोक प्रख्यात कथानक के लक्षण पूर्ति के कारण यह बेमानी है) में कृति की सृजन प्रेरणा स्पष्टतः घोषित की है—

सौभाग्याय शिवाय विघ्नवितर्तेर्मदाय पंकच्छिदे,
आनन्दहिताय विभ्रमशत-ध्वंसाय सौख्याय च।
श्री श्री कालूयशोविलास विमलोल्लासस्तुरीयो उङ्कं
सम्पन्नः सततं सतां गुणमता भूयाच्चिरं भूतये।

स्वान्तः सुखाय में परान्तः सुखाय की यह यात्रा कालूयशोविलासकार को मानसकार तुलसी की स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा.......... की भावना के समकक्ष ले जाती है।

इस समीक्ष्य कृति के चरित नायक पंथ के अष्टम आचार्य कालूगणी आदर्श गुणों से युक्त धीरोदात्त नायक हैं। कवि (जो काव्य नायक के अति निकट रहा है) ने ऐतिहासिकता का पूर्ण पालन करते हुए घटनाओं का यथार्थतः चित्रण युग-सन्दर्भों में किया है। कालूगणी के आंतरिक गुण वैशिष्ट्य और कवि आचार्यश्री तुलसी को काव्यक्षमता की एक बानगी द्रष्टव्य है—

गुर मघवा सुरगमन लख, कालू दिल सुकुमार,
भारी विरह विखिन्न ज्यूं, कृषि बल बिन जलधार।
पलक-पलक प्रभु मुख वयण, स्मरण समीरण लाग,
छलक छलक छलकण लग्यो, कालू हृदय तडाग।
या
मनड़ो लाग्यो रे चितड़ो लाग्यो रे
खिण खिण सुमरू गुरु। थारो उपगार रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कियां विसराऊं म्हारां हिवड़ै रा हार
नेहड़ता री री क्यारी रो म्हारी रोके आधार रे
सूम्यो सो तो जो हकलोतो सूनो सो संसार ।

इस प्रकार घटनाओं के माध्यम से पात्रों की चरित्र विशेषताओं का उद्घाटन जहाँ नाटकीयता उत्पन्न करता है वहीं कवि की क्षमता भी उद्-भासित होती है ।

कालूयशोविलास नवीन शिल्प वैभव के साथ रचनाकार की जीवन दृष्टि को सहज और आत्मीय प्रस्तुति देती है । अपनी अनुभूतियों को व्यंजित करने हेतु रचनाकार ने राजस्थानी भाषा को अपनाया है । मुहावरेदार आलं-कारिक प्रयोग कथ्य को सम्प्रेषणीय बनाता है—

दया दान रे नावें चाले सोषण धर्म सदान में,
मारग मिथ्या मरम रो
चींटया रै बिल चून, चूसै खून मानवता रो रे
जड़ता मारी जगत में ।
एरण चोरी, सूई दान, अड़ीके स्वर्ग किनारो रे
देखो भगती भगत रे में ।
लोकोत्तर लौकिक धरमां ने एक ही रूप पिछाणै रे
ताणें खींचाताण स्यूं
घी तम्बाकू मेल मिलावै मैली अकल अडाणै रे
मूरख अपनी बाण स्यूं ।

युगबोध की इतनी सहज अभिव्यक्ति भाषा सामर्थ्य का तो उदाहरण है, साथ ही रचना उद्देश्य की महाकाव्योचित गरिमा का संस्पर्श भी इसमें द्रष्टव्य है । संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली ने जहाँ अर्थ गांभीर्य उत्पन्न किया है वहीं तद्भव और देशज शब्दावली रचना को सम्प्रेषणीय बनाती है । सर्गान्त छंद वैविध्य रचना शिल्प वैशिष्ट्य के साथ परम्परागत लक्षणों की पूर्ति का भी प्रमाण बना है ।

राजस्थानी की परागंध से सुवासित प्रकृति चित्र समीक्ष्य कृति की अन्यान्य विशेषता है । राजस्थान की भीषण और दारुण गर्मी का यह चित्र दर्शनीय है—

'ज्येष्ठ महीनों ओ ऋतु गर्मीनो
मध्यम सोनो हो हिवै हठीनों
लू हर माला हो अति विकराली
भू मई भट्टी हो तरणी तोय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रेणु कण्ठी हो तनु संतापे
अजिन रू अठी हो भट्टी व्यापे ।'

'कालूयशोविलास' के माध्यम से कवि आचार्य श्री तुलसी ने ऐसे नर-श्रेष्ठ व्यक्तित्व का चरितगान किया है जिनका जीवन वर्तमान समय (जिसमें छद्म चरित्र अधिक है) में मूल्यवान नैतिक, मर्यादित जीवन जीकर लोक मानस को सदैव प्रेरित करता रहेगा। कष्ट-सहिष्णुता और शारीरिक सुख के प्रति वैराग्य; करुणा तथा परोपकार; सबके प्रति मैत्री भाव, हिंसा का निषेध आदि वे गुण हैं जो भारतीय संस्कृति की प्रतिमूर्ति काव्य नायक को सिद्ध करते हैं। वर्तमान सन्दर्भों में यह अभिव्यक्ति कृति को महत् उद्देश्य का संवाहक घोषित करती है जो महाकाव्य की अंतिम कसौटी है।

द्रोपदी रो बखाण

काव्य रूप की दृष्टि से 'द्रोपदी रो बखाण' खंड काव्य है। 'ज्ञाता सूत्र' से चयनित कथानक समीक्ष्य कृति का रचनाधार रहा है। भीखणजी कृत 'द्रोपदी रो बखाण' की द्रोपदी महाभारत में वर्णित कथानकों से भिन्न जैन धर्म की आस्थाओं एवं लक्षणों की प्रतीक बनकर वर्णित हुई है। धर्म और नीति अर्थात् सत्वशील और नय भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण किम्वा अनिवार्य तत्व है। 'द्रोपदी रो बखाण' में भारतीय संस्कृति के इन सनातन जीवन मूल्यों का जीवंत रूपांकन हुआ है। ३३ ढालों में निबद्ध समीक्ष्य काव्य की कथा में यद्यपि प्रबन्धकाव्योचित गरिमा का भास विद्यमान है किन्तु खंड काव्य के तात्त्विक कलेवर के निर्वाह का अभाव इसमें दृष्टिगत होता है। कथानक में नाटकीय संधियों का अभाव है किन्तु कथानक लोक प्रख्याततता की अनिवार्य शर्त (जो खंड काव्य के लिए अनिवार्य नहीं है) इसमें आद्यांत फैली देखी जा सकती है। जीवन का एकांगी किम्वा उत्कर्षापकर्ष विहीन चित्रांकन इसको खंडकाव्य की दिशा में बढ़ाता है। नागश्री द्वारा अखाद्य तुम्बी शाक तपोधनो धर्मरुचि को देना, धर्मरुचि का चींटियों को मरते देख प्राणी-रक्षार्थ अनिष्ठ को रोकने हेतु स्वयं शाक को खा लेना फलस्वरूप स्वर्गारोहण, नागश्री का सुकुमालिका के रूप में पुनर्जन्म, विवाह, पति द्वारा परित्यक्त होना, दीक्षा, तत्पश्चात् कठोर तपस्या और देह त्याग, पुनः जन्म, द्रोपदी के रूप में पाँच पांडवों से विवाह, नारद का तिरस्कार जनित प्रतिशोध, द्रोपदी अपहरण, युद्ध, द्रोपदी की वापसी, द्रोपदी की संयम-तपस्या और देह त्याग, पंच पांडवों की दीक्षा, वे सूत्र हैं जिनसे समीक्ष्य काव्य की कथा का ताना-बाना बुना गया है। अभिव्यंजना के स्तर पर सहजता और सरलता का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समंजन जहाँ बुनावट को आकर्षक बनाता है वहीं जीवन दर्शन (जो जैन दर्शन की अहिंसा और सत्य अवधारणा से अनुस्यूत है) पारदर्शी रूप में प्रस्तुत होता है। अहिंसा की अवधारणा की सहज अन्विति और अभिव्यक्ति की एक बानगी द्रष्टव्य है जिसमें धर्मरुचि का गिरी हुई बूंदों को चख लेने से मृत्यु को प्राप्त होती चींटियों को देखकर स्वयं समस्त शाक को खा लेने और स्वयं मृत्यु का वरण कर अन्य प्राणियों की रक्षा का शिव-प्रयास चित्रित किया है। भाव और भाषा का संगम देखते ही बनता है—

'तू और आहार पाणी पारणो कीजे, ओ तूंथड़ो परठ ले एकंत जाय
र गुरु नो वचन सुणे परठण चाल्यो,
थउ ले जाय परठयो एक बूंद मात।
तिहां कीड्या आई चींगट परसंगे,
ल्या हजारां गमे हुई कीड्या री घाट।
एक बूंद परठ्या इतली कीड्यां मूई,
ते सगलो परठ्या हुवे अंतत संघार।
तो मोने श्रेय निरजरा धर्म हेतें मंगलाई तूंबा रो करणो आहार।
आप सूं मरता जीव जाणे नें, कड़वा तूंबा रो कीधो आहार।'

रचनाकार ने कार्य और परिणाम को साथ जोड़कर (धर्मरुचि का मरकर स्वर्ग प्राप्त करना और नागश्री का दुःखद अंत, अगले जन्म में सुकुमालिका के रूप में तपस्या और देवलोक प्राप्ति, पुनः दूसरे जन्म में द्रोपदी के रूप में तपस्या और देवलोक प्राप्ति) नैतिक मानदण्डों और आदर्शों की पुनर्स्थापना का सारस्वत कार्य किया है। यह प्रस्थापना रचना को प्रासंगिक स्वरूप प्रदान करने की दिशा में एक प्रबल बिन्दु है। आज जब सर्वत्र आराजक, आतंककारी हिंसावादी प्रवृत्तियाँ क्रियाशील हैं, सामाजिक मूल्यों में पतन हो रहा है सांस्कृतिक धारा पर चोट की जा रही है, कवि की प्रस्थापनाएँ महत्वपूर्ण हैं। यही कृति को पठनीय बनाता है और महत् उद्देश्य के जीवनांतरण की प्रेरणा देता है।

जम्बूकुमार चरित—

समीक्ष्य कृति का केन्द्र सुधर्मा स्वामी के शिष्य जम्बूकुमार का जीवन चरित है। 'जम्बू पइन्ना' से चयनित 'जम्बूकुमार चरित' की कथा ने ४६ ४६ ढालों में काव्यात्मक विस्तार पाया है। इसकी बनावट से यह उद्घाटित होता है कि इस खण्डकाव्य में निश्चित विचार दर्शन की प्रतिष्ठा का स्पष्ट और सारस्वत प्रयास हुआ है। यह प्रयास दो प्रकार से हुआ है—प्रथम जीवन के शाश्वत मूल्यों की श्रेष्ठता प्रतिपादित करके तथा द्वितीय भौतिकवादी दृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का निषेध करके। अधिकांशतः रचना भाग काव्य नायक जम्बूकुमार और उनकी आठ पत्नियों के मध्य हुए संवादों से युक्त है। जम्बूकुमार में सुधर्मा स्वामी के संसर्ग से वैराग्य जागता है; माता-पिता इस तथ्य से चिंतित हो उसका विवाह आठ श्रेष्ठी कन्याओं से करवाते हैं। मातृ-भक्त जम्बूकुमार सौभाग्य रात्रि में राग में न पड़कर पत्नियों को सतर्क-सदृष्टांत एवं मंतव्य से अवगत कराता है। पत्नियाँ ही नहीं चोरी करने आए चोर प्रभव का मन भी वीतरागी हो उठता है। यही नहीं उनके माता-पिता भी साथ ही दीक्षित हो जाते हैं। जम्बू स्वामी साधना से कैवल्य प्राप्त करते हैं। प्रवाह एवं गंभीरता कथानक की विशेषता है। यहाँ कथानक में वैशिष्ट्य एवं जीवनादर्श सम्बन्धी प्रस्थापनाओं की महत्ता को रेखांकित न करके शिल्पगत कौशल की पड़ताल करना चाहूँगा, जो भीखणजी की सृजन सामर्थ्य का भी दर्पण है तथा रचना की सफलता का एक महत्वपूर्ण आधार भी है। 'जम्बूकुमार चरित' पर दृष्टि-पात करें तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान प्रस्तुति पक्ष पर जाता है। संवाद में संवाद की योजना इस प्रस्तुति का आधार है। मूल रूप में राजा श्रेणिक और उनकी पत्नी रानी चेलणा के वीर स्वामी (वर्धमान) द्वारा दिया गया उपदेश है तथा जम्बू और उनकी आठों पत्नियों का प्रश्नोत्तर संवाद जो आवंतर कथा है किन्तु उद्देश्य की प्राप्ति से जुड़े होने के कारण प्रमुख कथा बन गई है। कथा का यह प्रस्तुतीकरण जहाँ कृतिकार की रचना में संसिक्ति को ही उद्‌घाटित करता है वहीं रोचकता में वृद्धि भी करता है। सौन्दर्य की इस रश्मि का नृत्य प्रस्तुति में ही नहीं भाषा सामर्थ्य में भी देखा जा सकता है जो अभिप्रेत को पूरी शक्ति के साथ व्यंजित करता है। भाषा के आडम्बर और कलात्मक छद्म से अलग सहज और कारगर प्रस्तुति की एक बानगी द्रष्टव्य है—

हाथी जिम छे मरण केडे जीव रे, कुआजिम तूं जन्म दुख जाण
नरक तिर्यंच गति अजगर जिसी, क्रोधादिक च्यारू सर्प समान
बड़ साखा ज्यूं आऊखो जीव रो, ते दिन ओछो थात
माखी जिम व्याधि में वेदनां, वले ओर चड़ा चूंटी जाण
घर मांहे बसे तिण जीव रे, लागे अनेक विध आण।

एक उद्धरण और देखिए जहाँ कविता और दर्शन एक हो जाते हैं, शब्द और अर्थ आत्म स्वरूप हो जाते हैं—

ओ संसारहट बाड़ को मेलो, निश पडयां विघड़ जासी रे लौ
आ हिज विध तुमें तननीजाणो बार-बार नर भव नहीं पासी रे लौ
देसो रे आंधा येते नांहीं।
मात पितादिक कुटुम्ब कबीलो, स्वारथ रा सगा जाणो रे लो
दोहरी विरियां आय पड़े जब, कोई आडो न फिरे आणो रे लो।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कूड़ कपट कर धन मेलो कीधो, ते पिण साथे न आवे रो रे लो
तिन धन मेलतां अशुभकर्म लागे,
तिण सूं आगे घणो दुख पावे रे लो।

गेयात्मकता भीखण जी के समस्त पद्य साहित्य की एक अनन्य विशेषता है। विविध लोक रागों पर आधारित गीत, जिसकी परम्परा अब विरल है, आंतरिक लय और उसके अदृश्य संगीत से पाठक को गहरे अन्तस्थल तक छू जाती है। आलंकारिक सहजता के अनायास प्रयोग ने संप्रेषणीयता को और अधिक धारदार बनाया है। जम्बूकुमार का दूल्हा रूप में चित्रण देखते ही बनता है—

'रूप जंबूकुमार तणो, देखत पायें आनन्द
जाणे बादला मांसू नीकल्यो, रज रहित पूनम रो चाँद।'

मुहावरों का स्वाभाविक प्रयोग भीखण जी की भाषा सामर्थ्य की ही पहचान कराता है। सायास प्रयोगों का अभाव काव्य को ग्राह्य तो बनाता ही है; रसास्वादन में भी सहायक है—

'व्रत लेवारी मनसा जे आणी, तिण में नहीं पैसे पाणी
अवसर लाहि चतुर न चूके, लीधो पिण नेम न मूंके।'

लोक कथात्मक शैली का यह प्रबन्ध-काव्य राजस्थानी की एक महत्व-पूर्ण कृति है। दृष्टांत में दृष्टांत और संवाद में संवाद के कारण राजस्थानी लोक कथा परम्परा की पद्य वात-धारा से समीक्ष्य कृति जुड़ी दृष्टिगत होती है। यहाँ पाठक से सहजता के साथ अपने सरोकारा का रिश्ता स्थापित करने की कृतिकार की मंशा आकार लेती दृष्टिगत होती है। तत्सम शब्दावली समीक्ष्य रचना भाषा सामर्थ्य का सम्बल बनी है और इसे कवि की रचना सामर्थ्य का पर्याय ही कह दिया जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।

सुदर्शन-चरित—

खण्ड काव्य 'सुदर्शन चरित' कवि भीखण जी द्वारा रचित संयम के आदर्श स्वरूप भोग और साधना के संघर्ष की मार्मिक गाथा है। परिवेशगत विषमताएं और बदलती मूल्य दृष्टि समीक्ष्य कृति की सृजनात्मक प्रेरणा का कारक बिन्दु रही है। यही बिन्दु सुदर्शन, कपिला, महारानी अभया, राजा धात्री वाहन व स्वामी धर्मघोष के बीच विकसित हुई है। सुदर्शन, उनकी पत्नी मनोरमा और स्वामी धर्मघोष भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यों को पक्ष-धरता के साथ उद्घाटित करते हैं तो कपिला, महारानी अभया, राजा धात्री वाहन प्रतीक हैं युगीन कुचक्रों और भुलावे-छलावे की जीती-रचती मानसिकता के सुदर्शन सेठ को कपिला द्वारा शरीर के बाह्य सौन्दर्य को भोगने के लिए विवश किया जाना किन्तु बुद्धि-योग से सुदर्शन का बच निकलना, आहत स्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपिला का अभया के माध्यम से सुदर्शन को भ्रष्ट करने का षड़यन्त्र और अभया की असफलता पुनः प्रतिशोध स्वरूप सुदर्शन को फांसी पर चढ़ाया जाना किन्तु अन्ततः सत्, शील, संयम की विजय में समीक्ष्य खंड काव्य का वितान बुना गया है। इस कथानक की बुनावट में ही सृजन प्रेरणा अभिप्रेत तक की यात्रा करती है। दासी एवं धात्रीवाहन हमारी उस मानसिक स्थिति का अन्विति देते हैं जिसमें विवेकहीनता एवं निर्णय का अभाव एवं यथा-स्थिति मात्र जीना ही सब कुछ है। विपरीत और गलत से लड़ने की शक्ति के ह्रास को ही हम जीते हैं इसलिए कुछ न करके भी हम दोषी होते हैं। यह मानसिकता स्वयं व्यक्ति के लिए, समाज और राष्ट्र के सही दिशा के विकास में बाधक बनती है। भीखणजी ने इस मानसिकता को ही पात्रों में घटाया है और यह कृति को अर्थवान बनाता है। मनोरमा भी गौण सी स्त्री पात्र है किन्तु नारी के आदर्श स्वरूप की प्रतिनिधि है और पुरुष की शक्ति भी। स्वामी धर्मघोष कवि के विचार और दर्शन के प्रवक्ता हैं। जहाँ वे सत्पथ की ज्योति बनकर पथ-प्रदर्शक की भूमिका निर्वाहित करते हैं वहीं बुद्धिजीवी वर्ग की निष्क्रियता को स्वामी धर्मघोष के माध्यम से परोक्षतः उद्घाटित करने का प्रयत्न भी है। रचनाकार रेखांकित करना चाहता है कि भारतीय मनीषी को भी अपना दायित्व पहचानना होगा। पहचानना ही नहीं निर्वाहित भी करना होगा। कृति के पात्र रचना के कथानक के साथ-साथ चलते हैं आडम्बर या कृत्रिमता में जीते हुए दृष्टिगत नहीं होते हैं। वर्णनात्मकता चरित्र सृष्टि का प्रमुख शैलीगत आधार है। चरित्र अपने प्रतीकों की रचना उद्देश्य को सार्थकता के साथ जीते दिखाई देते हैं। यह कृति का घनात्मक पक्ष भी है।

समीक्ष्य प्रबन्ध काव्य कृतियाँ राजस्थानी की प्रबन्ध-काव्य परम्परा को तेरापंथ का श्लाघनीय किम्वा अविस्मरणीय आदान है। इन कृतियों का वैशिष्ट्य जहाँ जैन-दर्शन की प्रपत्तियों को कलात्मक अभिव्यक्ति देने में है, वहीं लोक विश्वास, लोक परम्पराओं और आंचलिक सौन्दर्य की व्यंजना में भी समीक्ष्य कृतियों की सार्थकता खोजी जा सकती है। भाषा के आभिजात्य को तोड़कर सहज किन्तु सम्प्रेषीय शिल्प का समायोजन आलोच्य कृतियों को महत्वपूर्ण बनाता है; जीवन दर्शन का पारदर्शी अंकन युग-जटिलताओं के कुहासे को चीरकर सही दिशा की ओर स्पष्टतः संकेतित करता है, यही इन कृतियों की अर्थवत्ता सिद्ध होती है। इसी कारण राजस्थानी प्रबन्ध-काव्य परम्परा में ये विशेष स्थान के अधिकारी हैं।

संदर्भ :

१. डा० रामधारी सिंह दिनकर —संस्कृति के चार अध्याय।
२. डा० देवी प्रसाद गुप्त—हिन्दी महाकाव्य : सिद्धांत और मूल्यांकन, पृ० ३०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. डा० शकुन्तला दुबे —काव्य रूपों के मूलस्रोत और उनका विकास, पृ० १४७ ।

४. डा० किरण नाहटा : आधुनिक राजस्थानी साहित्य : प्रेरणा स्रोत और प्रवृत्तियाँ, पृ० १३८ ।

५. डा० ब्रजनारायण पुरोहित—तेरापन्थी जैन श्वेतांबर सम्प्रदाय का राजस्थानी और हिन्दी साहित्य : निवेदन से उद्धृत,

६. आचार्य विश्वनाथ—साहित्य दर्पण, परिच्छेद ६, पृ० ३१५-३२५

७. डा० ब्रजनारायण पुरोहित—तेरापन्थ जैन श्वेतांबर सम्प्रदाय का राजस्थानी और हिन्दी साहित्य, पृ० २१७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापंथी आस्था की धुन : "नन्दन-निकुञ्ज"

□ डॉ० नन्दलाल कल्ला

विगत तीन शताब्दियों से जैन धर्म सम्मत-मौलिक प्रतिस्थापनाओं से मण्डित तेरापन्थ का प्रणयन जिन क्रांतिकारी परिस्थितियों में हुआ—वह स्पष्टतः राजमहलों की भौतिक स्थूलताओं में आपाद-मस्तक निमज्जित विलासी और अकर्मण्य सामन्तों के लिए नहीं था। दूसरी बात यह तेरापंथ उन लोगों के लिए भी प्रवर्तित नहीं था जो भगवावेशधारी केवल माला के बड़े-बड़े मनकों में ही विश्वास करते थे न कि मन के 'मनकों' को फेरने में। इसलिए हम कह सकते हैं कि तेरापंथ मूलतः जन-जन की भावना का पंथ था—लोक चेतना का पंथ था—"सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय" की भावना का पंथ था। संभवतः इसी दृष्टि को ध्यान में रख कर तेरापंथ के आचार्यों की वाणी में ज्ञान का बोझ न होकर, सहज उद्गार देखा जा सकता है। इसीलिये इनकी वाणी में राजकीय उद्यान में खिलनेवाली फूलों की चटक-मटक नहीं वरन् जंगल में खिलनेवाले फूलों का अकृत्रिम सौरभ सम्पन्न सौंदर्य अनुभव किया जा सकता है। यहाँ पहाड़ी झरने के समान कल-कल नाद की ध्वनि सुंदरता है। इन आचार्यों ने आडम्बरों से सन्तप्त जन-मानस को अपनी गीतिकाओं की सहज व सरस शीतलता प्रदान करके अपूर्व आनंद प्रदान किया है। संगीत के तरल सौंदर्य की रसधारा में आकंठ निमग्न जन-जन की भावना झंकृत हो जाती है। तेरापंथ के आचार्यों ने कहीं स्तुति शैली, कहीं प्रबन्ध महाकाव्यात्मक शैली तो कहीं गीतों की योजना के माध्यम से जन चेतना को सहज रूप से चमत्कृत किया है। इन गीतों में आस्थाओं की बांसुरी गूँज भरती है।

'अमृत सन्देश' प्रदायक एवम् त्रिताप पीड़ित सांसारिकों के लिये सात्त्विक 'सामरस' का लहराता सिंधु तथा सम्प्रति विषमताओं, विडम्बनाओं विद्रूपताओं, विकृतियों, विसंगतियों की तीव्र तप्त भूमि पर लड़खड़ाते आज के 'मनु' की नूतन चेतना और श्रद्धा प्रदायक कृति का नाम—'नन्दन निकुंज' है। पथभ्रान्त, श्रान्त और क्लान्त, थकित और श्रमित, कर्मबोझिल तथा ऐषणाओं से भाराक्रान्त जन-मानस के लिए नंदन निकुंज आस्था का नखलिस्तान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरी दृष्टि में 'नन्दन निकुंज' के सिरजनहार—आचार्य शिरोमणि, आध्यात्मिक पथ अधिनेता, शरच्चन्द्र श्वेती, धर्मसंघ संवाहक, विषय-वासना उपरत, अनिकेतधाम तुलसी जी की इस अभिनव रचना में जैसी सरसता, मनोहरता, कर्णप्रियता, लयात्मकता, रागात्मकता तथा लोकात्मकता दृष्टिगत होती है वह अन्यतम है ।

'नन्दन निकुंज' का प्राणतत्त्व है—गीत । गीत हमारे मन की सुख-दुखात्मक अनुभूतियों की भावोच्छ्वासपूर्ण सरस अभिव्यक्ति को कहते हैं । संगीत में आनन्द निर्झर प्रवाहित होता है । यह ब्रह्मानद सहोदर काव्यानंद का प्रतिरूपण है । इसे शब्दगम्य, अर्थ प्रतीतिगम्य तथा रागबोधक कहा जा सकता है ।

'नन्दन निकुंज' केवल गीतों की ही दुनिया नहीं है, वह संगीत की अभिनव सृष्टि है । संगीत में गीत, लय और राग की त्रिवेणी का संगम होता है अर्थात् संगीत यदि तीर्थराज है तो इस तपतीर्थ सृष्टा की गरिमा को क्या शब्दों में निबद्ध किया जा सकता है ? उत्तर है—नहीं । ऐसा क्यों ? वस्तुत: आचार्य श्री की साधना में सम्पूर्ण रूप में प्रकृति की छटा का दिग्दर्शन होता है—इसलिये । कैसे ? उत्कृष्ट विचारों के हिमालयी उत्तुंग शिखर, कल्पना के लहलहाते स्फीत महासागर, भावना की गंभीरता मण्डित सरिता, पंथ-मर्यादा के घाटों से बंधी आचरण-अनुभूति की गंगा, दुरंगे आचरण को विद्रूपता को झुलसाने वाली व्यंग्य अभिव्यक्ति की चिनगारियाँ बिखराती लू, सरस वाणी की मृदु मुस्कान भरी बसन्ती बयार, गुरु वन्दना की प्रभाती सुनहरी रश्मियों का आलोक और अरिहन्त वन्दन की शुभ्र, अमंद, अकलुष, परमोज्ज्वल, सुधा-सिक्त शरत्चन्द्रिका की अपनी आभा और प्रभा । और इन सब अनुभूतियों को एक शीर्षक में समांकित किया जा सकता है—'नन्दन निकुंज' । स्वयं आचार्य श्री ने अपनी इस कृति की सृजन-प्रक्रिया का चिन्तन इस प्रकार से व्यक्त किया है—"जब कभी संगीत की मधुर धुनें कानों में पड़ती हैं, मन की चेतना वहाँ केन्द्रित हो जाती है ।.....ध्यान के उन क्षणों में ऐसी प्रतीति होती है कि जीवन का कण-कण संगीतमय हो रहा है । संगीत में मुझे रस था । उस रस का प्रकर्ष मिला पूज्य गुरुदेव कालूगणी के समय में । मेरा कण्ठ मधुर था और स्वर सूक्ष्म ।.....धीरे-धीरे सर्जक बनने की धुन लगी और मैं अपनी भावनाओं को शब्दों के परिवेश में ढालने लगा ।"

आचार्य शिरोमणी के इस आत्म-वक्तव्य में दो बातें स्पष्ट झलकती है—प्रथम गुरु-प्रसाद और द्वितीय में शब्द को राग में ढालने की प्रवृति । इसी वक्तव्य में गीत-सृष्टि में प्रयोजनीयता भी झलकती है । रचनाकार का सृजन-प्रयोजन आत्म-परितोष है । इसी आत्म-परितोष में भारतीय सन्त परम्परा का सर्वोच्च उद्घोष गुँजित होता है—'स्व' नहीं—'सर्वेभवन्तु सुखिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और परम पुनीत, परमप्रेमास्पद गुरु-स्तवन। नन्दन-निकुंज में मन-मधुकर केवल रसग्राही प्रतीत होता है। शास्त्रीय चेतना का अहंकार, अहम् चैतन्य और पांडित्य की प्रदर्शिका मनोवृत्ति इसमें नहीं है बल्कि इसमें हृदय के सहज अनुभव-संसार की झंकृति गुंजायमान है।

'नन्दन निकुंज' का अनुक्रम आठ शीर्षकों तथा एक सौ सत्तासी गीतिकाओं में विभाजित है। प्रथम चरण अर्हत् उत्कीर्तना है जिसमें कवि उर्जस्वी स्वर में गाता है—

"प्रभो ! तुम्हारे पावन पथ पर जीवन अर्पण है सारा।
बढ़े चलें हम। रुकें न क्षण भी, हो यह दृढ़ संकल्प हमारा।।"

आत्म निवेदन के रूप में कभी वन्दना-भाव पुलकित होकर श्री पार्श्व देव तो कभी तीर्थंकर महावीर के चरणों में ध्यान धरते हुए हर श्वास में स्पंदित कवि की भावना बार-बार यही कहती है कि—

"आज चारों ओर, घोर अशान्ति जन-जन को सताती।
रो रहा मानव हृदय यों, सिकुड़ती है साथ छाती।।
इस विषाक्त उदन्त में, तू ही सहारा एक शान्ति।"

इस रचना का द्वितीय सोपान 'मर्यादा-महोत्सव उत्कीर्तना' तेरापंथ धर्मसंघ की विश्व-विश्रुति का मूलाधार है—इसकी अनुशासनात्मक संगठन भीत्तिका। इसका प्रथम शिलारोहण आचार्य भिक्षु के कर कमलों से हुआ। उनके निर्दिष्ट 'लिखतों' की प्रत्येक धाराओं के आधार पर वि. सं. १८५९ में श्रीमद् जयाचार्य ने मर्यादा महोत्सव का सूत्रपात किया। 'मर्यादा-महोत्सव उत्कीर्तना, खण्ड में चौवन गीत हैं। इनमें साधना के उच्च शिखरों पर जीने के विज्ञान को कोटि-कोटि कण्ठों से ध्वनित करने की प्रतिज्ञा झलकती है। अधिकांश गीतों में आचार्य भिक्षु के प्रति अटल संकल्प झलकता है। श्री जयाचार्यजी के प्रति कवि की विनम्र गीतांजली दृष्टव्य है—

"मर्यादोत्सव की आभा अभिराम है।
जयाचार्य की सूझ-बूझ का सुन्दरतम परिणाम है।"
मर्यादोत्सव तेरापंथ में, अभिनव कल्प-प्रयोग है,
संघ-चतुष्टय स्वास्थ्य साधना का अन्यतम योग है।
कायाकल्प करें सब पहला काम है।"

केवल तर्कवाद से पीड़ित इस समूचे संसार को 'तेरापंथ' का अवतरण जहाँ अमृतदान है वहीं मर्यादा महोत्सव इसकी अनुपम उपलब्धि —

"भिक्खण' का भाव भरा मन्थन,
श्री 'जयाचार्य' का सद्ग्रंथन।
'तुलसी' का सफल-सूफल चिन्तन, मंजुल मर्यादा-महोत्सव है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'मर्यादा-महोत्सव' के महत्व के प्रति आचार्य प्रवर की दृष्टि कहती है—यह कथन समसामयिक भारतीय परिवेश की व्यथा का संतोषजनक समाधान करने का आह्वान करता है—

"शाश्वत मूल्य धर्म का जो वह कैसे घट सकता है ?
धर्म नाम पर मानव-मानव कभी न बँट सकता है।
आश्रय लेकर धर्म नाम का जहर नहीं फैलाएं ॥"

तीसरा सोपान 'निर्वाण महोत्सव' समर्पित है, जो अधिकांशतः आचार्य भिक्षु के प्रति प्रणाम अंजली ही है। 'आचार्य उत्कीर्तना' में पूर्ववर्ती गुरु परम्परा की सश्रद्ध गीतिमय भाव प्रवण हृदय स्पर्शी प्रस्तुति है। 'साध्वी प्रमुखा उत्कीर्तना' में महासती सरदारां, सती गुलाबां, साध्वी प्रमुखा श्री नौलांजी, महासती जेठांजी इत्यादि का पुण्यमय स्मरण है। शेष उत्कीर्तनाओं में मातृ-स्तवन और गुणोत्कीर्तना है। 'धर्म उत्कीर्तना' में आचार्य श्री की वह रचना है जो तेरापंथ के सिद्धांतों व अणुव्रत का भाष्य है—'संयममय जीवन हो।'

सम्पूर्णतः 'नन्दन निकुंज' के गीतों की रचना की गेय भूमि तीन प्रकार की है—अधिकांश गीतों की तर्ज लोक गीतों पर आधारित है, जिसे हृदयंगम व कंठस्थ करने में किसी भी श्रद्धालु को प्रयत्नज नहीं होना पड़ता, वे तो जन्मजात जन्मघुटी के रूप में उसे प्राप्त हुई हैं। कुछ गीत शास्त्रीय राग में विशेषतः मालकोश पर आधारित हैं। कुछ गीत प्रसिद्ध फिल्मी तर्ज पर निबद्ध किये गये हैं। सम्पूर्ण ग्रंथ भी भाषा में कहीं भी कृत्रिमता का बोझ, छंदों व अलंकारों का भार नहीं है। निष्कलुष गगन मण्डल में जगमगाते नक्षत्रों भी भांति भावनाओं की ऐसी समुज्ज्वल अभिव्यक्ति का रागमूलक सौन्दर्य 'नन्दन निकुंज' है, जिसकी प्रत्येक पंक्ति यही उद्घोष करती है—

"मैत्री भाव हमारा सबसे प्रतिदिन बढ़ता जाए,
समता, सह-अस्तित्व, समन्वय नीति सफलता पाए।
शुद्ध साध्य के लिए नियोजित मात्र शुद्ध साधन हो।
संयममय जीवन हो।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री तुलसी विरचित 'माणक-महिमा' और 'डालिम चरित्र' में आवर्तन के परिदृश्य : शैलीवैज्ञानिक संदृष्टि

☐ डॉ० कृष्ण कुमार शर्मा

शैलीवैज्ञानिक अध्ययन कृति का भाषानिष्ठ विश्लेषण है। यह प्रणाली कृति के संदेश को वस्तुनिष्ठता से उजागर करने का विधान प्रस्तुत करती है। शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण संदर्भ के प्रकाश में किया जाता है और इसीलिए संदर्भबद्ध (context Bound) संरचनाओं को शैलीचिह्नक के रूप में पहचाना गया है। किसी रचना के भाषिक पट में संलक्षित—समांतरता, आवर्तन, अग्रप्रस्तुति, विचलन, प्रशाखन आदि उपादानों का विश्लेषण इस विधि में अपेक्षित है।

इस विधि से राजस्थानी भाषा में रचित तेरापंथ के साहित्य का अध्ययन नये आयाम उन्मीलित कर सकता है, पर साहित्य विपुल मात्रा में है और यह अध्ययन समय की अपेक्षा रखता है। प्रस्तुत आलेख में—'माणक महिमा' और 'डालिम चरित्र' ये दो ग्रंथ ही लिये गये हैं और आवर्तन तथा किञ्चित् अन्य प्रतिमानों का भी सहारा लिया गया है।

तेरापंथ के साहित्य ने नैतिकता, दृढ़चरित्र और उदात्त भावों का प्रसारण तो किया ही है, राजस्थानी भाषा की भी महती सेवा की है। राजस्थानी भाषा में वाङ्मय के विविध रूपों का प्रणयन हो रहा है, किन्तु उसकी पहुँच जन-जन तक नहीं है। तेरापंथ का प्रचार-प्रसार व्यापक है, असंख्य अनुयायी हैं इस पंथ के, उनके बीच यह साहित्य श्रद्धा और आदर के साथ पढ़ा-सुना जाता है। यह साहित्य सरल राजस्थानी में है, इससे राजस्थानी भाषा की शक्ति विकसित हुई है। मैंने आचार्य तुलसी विरचित 'माणक महिमा' और 'डालिम चरित्र' ग्रन्थ पढ़े हैं। आचार्य श्री संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के जैसे कुशल प्रयोक्ता हैं, राजस्थानी भाषा के लोक प्रचलित मुहावरों और सटीक शब्द प्रयोग के भी उतने ही खरे जानकार हैं।

ये दोनों ग्रन्थ प्राकृत-अपभ्रंश की चरितकाव्य-परम्परा का आधुनिक राजस्थानी में निर्वाह करते हुए भी उस परम्परा से अलग हैं, या कहें आगे हैं। इनकी अपनी शैली है, पूरा कथाचक्र ढालों में नियोजित है, ढालों के अंतर्गत दूहा, सोरठा, नवीन आदि छंदों में विभिन्न प्रसंग प्रस्तुत किये जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह साहित्य दूहा, सोरठा की परम्परा को आज भी जीवंत बनाये हुए है। इतना ही नहीं 'माणक महिमा' में 'लावणी' जैसे लोक छंद का प्रयोग भी किया गया है। इस आलेख में, मैं आवर्तन को प्रमुख प्रतिमान बना रहा हूँ, कुछ एक संकेत और भी हैं। विस्तृत अध्ययन की दिशा में इसे मात्र विनम्र सूत्र विन्यास ही समझा जाना चाहिए।

शैलीविज्ञान आवर्तन को शैली का विशिष्ट उपादान प्रतिपादित करता है। आवर्तन में मूल संदेश तो निरन्तर पुष्ट होता ही है, आंतरिक लय-निर्मिति भी होती है, अतएव यह विविध अर्थ छायाओं को परस्पर संसक्त करने का विधान भी है। आवर्तन में केवल शब्द ही आवर्तित नहीं होते, संरचना का भी आवर्तन होता है। समान संरचना में शब्द भिन्न हो सकते हैं, इस के कारण किञ्चित् अर्थवैभिन्न्य भी प्रतीत हो सकता है, फिर भी उनमें अर्थ संकेतों का परस्पर व्यापन रहता है। समान संरचनाओं में प्रयुक्त ये भिन्न शब्द एक ही हाइपोग्राम से संबद्ध होते हैं। आवर्तित संरचनाएँ अग्र-प्रस्तुती का एक प्रकार भी है और समांतरता का विधान भी।

दोनों ही ग्रन्थों में इसका प्रयोग प्रयोजन-प्रेरित होने से विशिष्ट प्रतीत होता है। माणक महिमा के प्रारम्भ में ही माणक-स्मृति प्रसंग है, इसमें आवर्तन बहुत सार्थक प्रयोग हुआ है। आवर्तित अंशों की संरचना समान है, पर अर्थछाया में भिन्नता है, देखें—

१. क्यूं नहीं साधना धन री, बलिहारी जाऊँ मैं ?
२. क्यूं ना सत्पुरुषार्थी नै, ध्यानस्थ ध्याऊँ मैं ?
३. वांरै रस पर धार री, आख्या सुणाऊँ मैं ?
४. उण री पल-पल छिन-छिन में, क्यूं सुध बिसराऊँ मैं ?[1]

रेखाँकित अंशों की संरचना समान है, कर्ता का निवेश सभी संरचनाओं के अन्त में और क्रिया पद मध्यस्थ है। कर्तापद का अंत में निवेश उसे अग्रप्रस्तुत (Fore grounded) करता है। १, २, और ४ चरणों में प्रश्नवाचकता, निषेधात्मक 'नहीं', 'नां' के योग से विधेयात्मक बन गयी है, अर्थात् वक्ता वैसा करेगा ही। तीसरे चरण में प्रश्नात्मकता का अध्याहार है। तीसरे और चौथे चरण में प्रयुक्त 'वांरै' और 'उणरी' इन चरणों की पूर्व प्रसंगों से संसक्ति का विधान करते हैं। वक्ता की विभिन्न मानसिक स्थितियों को व्यक्त करने में यह आवर्तन सक्षम है। विधेयांश में प्रयुक्त पद ही उद्देश्य कथन के शब्दों को भी निर्दिष्ट करते हैं—'आपने धन की साधना नहीं की, इसीलिए मैं बलिहारी जाता हूँ।' इसमें वक्ता आचार्य माणक की त्यागवृत्ति से अभिभूत है। 'आप सत्पुरुषार्थी हैं, मैं ध्यानस्थ होकर ध्यान क्यों न करूँ।' इसमें वक्ता की श्रद्धा, इच्छा और संकल्प मुखरित हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'उनके रस पट-धार की मैं आख्या सुनाता हूँ।' में श्रेय और प्रेय भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इन संरचनाओं का संदेश है कि आचार्य माणक धन के लोभ से मुक्त, सत्पुरुषार्थी और मुक्त रस से युक्त व्यक्तित्व के धनी हैं, उनका व्यक्तित्व वक्ता के मन में उन पर न्यौछावर हो जाने की, ध्यान लगाने की, उन्हें निरन्तर स्मरण करने की प्रेरणा देता है। ऐसे महापुरुष की महिमा का गान है—'माणक-महिमा' ग्रंथ। इन प्रयोगों से सिद्ध होता है कि जैसे वक्ता के मानस पटल पर आचार्य श्री माणक जीवंत हैं, उसके मानस चक्षुओं के समक्ष हैं और उसके मन में श्रद्धा, विश्वास, उत्सर्जन तथा दृढ़ संकल्प के भावों की तरंगें उमड़ रही हैं—अनवरत। इन अंशों में विचलन भी है, उद्देश्य और विधेय के स्थापन में। इसका कार्यफलन (Function) है, वक्ता के मन के भाव को अग्रप्रस्तुत करना।

इस ग्रन्थ की तीसरी ढाल में—

लालाजी ! थांरों, ओ माणक मनभावणो[२]

संरचना का तीन बार यथावत् आवर्तन है, रचनाकार प्रारम्भ के ग्यारह दोहों में लिछमणदासजी और उनके परिवार की लाडनूं यात्रा की चर्चा करके श्री जयाचार्य द्वारा कहलवाता है—'लालाजी ! थारों ओ माणक मनभावणो' अभी दीक्षा की बात नहीं है। तदनन्तर लालाजी ही संकेत समझते हैं, दूहा बारह से सतरह तक लालाजी का कथन है जिसमें माणकजी के स्वभाव, उनके प्रति लालाजी का स्नेह कथित है। दूहा अठारह से बीस तक स्पष्ट कथन है—

थांरै ही घर क्यूं रहै ? जो म्हांरै घर रै जोग हो।
छोटो सो साधू बणै लाला तो इण रो उपयोग हो।[३]

अलग-अलग प्रसंगों को यह आवर्तित अंश परस्पर संसक्त करता है और यह भी व्यक्त करता है कि वक्ता के मन को उस माणक नाम के अल्पवय बालक ने बहुत गहराई से प्रभावित किया है। लालाजी स्वयं सम्पन्न व्यक्ति थे, शायद उनके पास बहुत से माणिक्य रत्न भी थे, इसलिए 'ओ माणक' प्रयोग विशेष अर्थ गौरव से युक्त है—अन्य माणिक्य नहीं—'ओ माणक मन भावणो'।

'लालाजी ! थांरो ओ माणक मनभावणो' का तीन बार आवर्तन वक्ता के मन के दृढ़ भाव और तीव्र इच्छा का व्यंजक है। भाव को पुष्ट और कथ्य को सघन बनाता है। यह आवर्तन आचार्य श्री माणक के भाविष्यिक कार्य-कलापों की पृष्ठभूमि का सुष्ठु निर्माण करता है।

चौथी ढाल में आवर्तन का एक और रूप है—

१. शासण भाग्य सरांवां म्हे
२. मन में इचरज पावां म्हे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. वचन अगोचर गावां म्हे
४. म्हारो शीष झुकावां म्हे
५. दृढ़ विश्वास दिरावां म्हे
६. थांरी मरजी चावां म्हे[४]

इस आवर्तन में उद्देश्य का अंत में स्थापन सभी संरचनाओं में है, विधेय + उद्देश्य भी है, उत्तमपुरुष शैली है, आत्मकथ्य जैसा है। प्रथम में वक्ता के मन में उद्‌बुद्ध सराहना का भाव, द्वितीय में आश्चर्य का भाव, तृतीय में इच्छा, चतुर्थ में विनम्रता, पाँचवे में विश्वस्तता, छठे में चाहना—आकाँक्षा। किन्तु इन विविध भावों में संसक्ति बनाता है—'म्हे'। बहुवचन 'म्हे' अपने में एक पूरे समुदाय को निहित किये है। संदेश रूप में फिर आचार्य श्री माणक का वैशिष्ट्य उभरता है। शब्द चयन कथ्य को उजागर करता है, सटीक है

भाग्य के साथ सरावां, इचरज के साथ पावां, वचन-अगोचर के साथ गावां, शीष के साथ झुकावां, विश्वास के साथ दिरावां और मरजी के साथ चावां। यह चयन प्रक्रिया रचनात्मकता के दौर में, सिद्ध कवि के मन में स्वत: चालित होती है, शब्द स्वयं अपने अनुकूल दूसरे शब्द की खोज के लिए रचनाकार को प्रेरित करता है। आनंदवर्धन ने इसीलिए कहा है—

"यत्नत: प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थो महाकवे:"

इस ग्रन्थ का बीज भाव या प्रतीकार्थविज्ञान की शब्दावली में मैट्रिक्स (MATRIX) तो आचार्य श्री माणक का चरित्र है ही, वही इन विभिन्न किन्तु परस्पर संसक्त मॉडल्स (MODEL) को निष्पन्न करता है।

बारहवीं ढाल में 'जी गच्छाधिप जी' पदबन्ध का आवर्तन रचयिता की अतिशय श्रद्धा का द्योतक तो है ही उसकी आत्मीय एकात्मकता का भी प्रत्यायक है।

'माणक महिमा' में ढाल शीर्षक नहीं दिया गया है, किन्तु है वही शैली। ढाल, उसके अंतर्गत दूहा, सोरठा और लावणी। स्वयं रचयिता ने कहा है—

'तुलसी तीजी ढाल में, लह्यौ माणक हर्ष प्रकाम हो'

आचार्य श्री तुलसी विरचित 'डालिम चरित्र' तेरापंथ के सातवें आचार्य श्री डालिमचंदजी का चरित्र आख्यान है। इसमें भी ढाल, उसके अंतर्गत दूहे, सोरठे और नवीन छंद हैं। आवर्तन का वैशिष्ट्य इस रचना में भी है। ढाल चार में—

'प्यारा म्हांने लागो रा स्वामी जी'[५]

संरचना का छह बार आवर्तन हुआ है। इन आवर्तनों से इनके पूर्व आने वाले कथन परस्पर संसक्त होकर एकसूत्रता का विचित्र विधान करते हैं। केवल एक आवर्तन में, 'प्यारा' के स्थान पर 'आछा' का प्रयोग है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'आछा म्हांनै लागो रा स्वाम जी'

'प्यारा' और 'आच्छा' एक ही हाईपोग्राम के शब्द हैं। ढाल पाँच में 'दयानिधि डाल मुनि' पदबंध का आवर्तन है। इस आवर्तन से प्रतीत होता है, जैसे रचयिता 'डालमुनि' के विषय में अन्य बहुत कुछ कहता हुआ भी उनकी दयालुता पर केन्द्रित है, इसे भूल नही पाता, बार-बार स्मरण करता है। आवर्तन की यह विधि राजस्थानी साहित्य में विरल ही है।

छठी ढाल में डालमुनि के चरित्र को कहते हुए रचयिता—

'डालचंद-चरित्र परम पवित्र सुण तन मन ठरै'[१]

संरचना का तीन बार आवर्तन करता है, जैसे चरित्र-गान ही उसका उद्देश्य नहीं है, वह उसका प्रभाव भी बतलाना चाहता है। जैसे वह उनके चरित्र से इतनी एकात्मता का अनुभव करता है कि एक प्रकार के कथन से उसे संतोष नहीं होता, आत्मविश्रान्ति नहीं मिलती अतः ढाल आठ में पुनः—

'भाविक मन भावणोरे, डालमचंद चरित्र'।[७]

संरचना का दो बार आवर्तन करता है। जैसे, डालमचंदजी के चरित्र-सागर में ऊभ-चूभ हो रहा हो। इन आवर्तनों से यह चरित्र-कथन सघन हो उठता है, सहज प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। ढाल तेरह में—

'लाख उपचार करो'

उपवाक्य का आवर्तन कथ्य की मार्मिकता को उजागर करता है। रचियता कहता है—

आ टलै न होवणहार, लाख उपचार करो,
इण आगै सबकी हार, लाख उपचार करो॥[८]

श्री माणक मुनि अस्वस्थ हुए, उपचार-प्रयत्न किये गये, पर होनी को कौन टाल सकता है, उसके आगे तो सब विवश हैं। यह आवर्तन मनुष्य की विवशता, उसकी सीमा की व्यंजना करता है। इसी प्रसंग में—

'शासण सारो सब साध-सत्यां, शोभै शासणपति रा सागै'[९]

संरचना का तीन बार आवर्तन तेरापंथ के सत्य को तो उजागर करता ही है, सामान्य यथार्थ का भी ज्ञापक है। यही आवर्तन इस ढाल की गीतिकाओं को एक सूत्र में निबद्ध करने वाला तत्त्व है, इस ढाल का उन्मीलक है, यही अग्रप्रस्तुत भाषिक उपादान है। मानवीय वैवश्य का इतने सरल शब्दों में कथन, वस्तुतः अद्भुत है। इसी विवशता की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में है—शोक इस प्रसंग का बीज भाव है, आवर्तन में घनीभूत हुआ है—

ओ बिना बगत सूरज छिपग्यो, लागै है अंबरियो ऊणो,
बुझग्यो दीपक जो जगमगतो, करग्यो सगलै घर नै सूनो।
तारा नक्षत्र घणां नभ में, पिण चाँद बिना फीका लागै,
शासण सारो सब साध-सत्यां, शोभै शासणपति रा सागै॥[१०]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल चौदह में—

'आच्छी राखी रे स्याणां सन्तां ! भैक्षव गण री रीत'

संरचना का आवर्तन भर्त्सना की व्यंजना करता है। स्वयं रचनाकार कहता है—'दुःखद घटना अवसरे, राखी आछी रीत'

ढाल पन्द्रह में भी समान संरचनाओं का आवर्तन हुआ है—

इण रै गणि पद-तिलक लगायल्यो कनी,
इण रै जीवन ग्रन्थ बंचायल्यो कनी,
इण री आख्याँ रो पाणी अजमायल्यो कनी,
इण रो गौरव अपार गुण गायल्यो कनी
इण नै गादी बिठाय गुंजायल्यो कनी[11]

प्रत्येक आवर्तित पंक्ति के पूर्व आचार्य की एक अलग-अलग विशेषता कथित है, तदनन्तर—

इण रै/री/नै.....कनी

संरचना का आवर्तन है। क्योंकि वह विशिष्ट है, इसलिए गणि पद-तिलक लगाया जाना है, उनका जीवन ग्रन्थ बाँचा जाना है, आँखों के तेज (पानी) को आजमाया जाना है, उनका अपार गौरव गाया जाना है। वह इन सब बातों के योग्य है। इस आवर्तन से कथ्य की निरन्तर पुष्टि होती जाती है।

आवर्तनों की यह विधि इन चरित काव्यों की शैली की पहचान है, इसलिए यह शैलीचिह्नक भी है। यह आचार्य श्री तुलसी के रचनाकर्म का भी शैलीचिह्नक (STYLE MARKER) है या नहीं, यह तो उनकी अन्य रचनाओं के परीक्षण के बाद ही कहा जा सकता है। प्राकृत-अपभ्रंश के चरित काव्यों में मुझे यह नहीं मिली। आवर्तन एक ओर कथ्य को केन्द्राभिसारी बनाता है, दूसरी ओर रचयिता के शिल्प को भी उजागर करता है। इस दृष्टि से यह साहित्य एक परम्परा की नींव भी है।

कतिपय अन्य प्रयोग भी हैं जिन्हें शैलीचिह्नक कहा जा सकता है। जब-जब रचयिता किसी मुनि आचार्य द्वारा शासना की बात कहता है, वह—

एक आसन बैठे गुरु घड़ी रे घड़ी,
सागी शेर ज्यूं दडूकै ज्यांरे देशना करै।[12]

× × ×

पाटै पर बेठ्यो ही बाबो शेर ज्यूं दडूकै[13]

'शेर ज्यूं दडूकै' पदबंध का प्रयोग करता है। एक प्रकार से यह पदबंध संदर्भबद्ध है, इसलिए मैं इसे शैलीचिह्नक कहना चाहता हूँ।

आचार्यश्री तुलसी रचनाकार के रूप में सिद्ध कवि हैं। जिस भाषा में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे रचनाकर्म करते हैं, उसकी प्रकृति से, उसके मुहावरों से खूब परिचित होते हैं। राजस्थानी भाषा के बहुप्रयुक्त शब्दों का उन्होंने सजगता से चयन किया है—

१. गुण 'नन्दनवन' लड़ालूम्ब लहरै[१४]

२. झीणी-झीणी सीख छाणै, जाणै अमृत झरै[१५]

३. दोन्यूं गोड्यां ढाल, द्विकर जोड़ डालिम बदै[१६]

४. कानाबाती पल-पल है, आ के हलचल है, हलचल है[१७]

५. सुण्या बात मनगमती, जिवड़ो म्हांरो भी ललचावै[१८]

इन पंक्तियों में प्रयुक्त 'लड़ालूम्ब', 'झीणी-झीणी', 'दोन्यू गोड्यां ढाल', 'कानाबाती', 'मनगमती' शब्द राजस्थानी लोक और साहित्य में बहु-प्रयुक्त शब्द हैं, इनमें राजस्थानी माटी की सुगंध है, इनमें राजस्थानी जन-मानस बोलता है, ये शब्द स्वयं बोलते हैं।

राजस्थानी भाषा के शब्दों का चयनपूर्ण प्रयोग माणक महिमा में भी देखने योग्य है—

तोड़ तिणखले की ज्यूं तत्खिण निविड न्याति जन नेह।[१९]

× × ×

भणसी-गुणसी सद्गुण चुणसी, जौहरी पुत्र सुजाण।[२०]

जौहरी पुत्र के साथ 'चुणसी-गुणसी' क्रियाएँ बहुत सटीक हैं। अंग्रेजी भाषा के टाइम से बना राजस्थानी प्रयोग 'टेमोटेम' बहुप्रचलित है, 'माणक महिमा' में भी यह प्रयोग है—

संत सत्यां री वंदना, साझै टेमोटेम। (माणक महिमा, पृ० ५१)

धारासार वर्षा के लिए—'सघन घनाघन रीझ' और 'निपट कलह की नूंध' में 'नूंध' ठेठ राजस्थानी प्रयोग हैं, राजस्थानी भाषा का प्रयोक्ता इन शब्दों के अर्थगौरव से सुपरिचित है।

अहं और हठ के लिए 'अकड़-पकड़' सटीक योजना है—

मतमतान्तरां फैली हो, मति मैली मिनखां री करै,
अकड़-पकड़ री आ झूंठी झकझोड़। (मा. म. पृ. ७७)

राजस्थानी भाषा में मादा शेरनी के लिए 'बाघण' शब्द है, इसका एक प्रयोग देखें—

पण आ तो बिरची बाघण बणी लुगाई। (मा. म. पृ. ७७)

अपने बालक की रक्षा के लिए, उसे पाने के लिए स्त्री बाघण जैसी आक्रामक और भयंकर हो उठती है, इस स्थिति में स्त्री स्वभाव का व्यंजक 'बाघण' शब्द से बढ़कर और कौन सा शब्द हो सकता है।

'कूडी' भी ठेठ राजस्थानी शब्द है, लोकगाथाओं में भी प्रयुक्त हुआ है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणक महिमा में इसका प्रयोग है—

'अथवा कोरी कल्पित है कहाणी कूडी' (मा. म. पृ. ७८)

इन प्रयोगों की कथ्य और लोक परिवेशानुगामिता प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखती।

इस आलेख में शैलीविज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली का बहुत सीमित उपयोग है। प्रतिमान भी एक ही लिया गया है—आवर्तन। तेरापंथ के साहित्य (राजस्थानी भाषा के) का शैलीचिह्नक प्रतिमान के आधार पर शैलीवैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है, वह महती शोध और श्रम सापेक्ष्य कार्य है, पर निर्विवादतः महत्वपूर्ण है।

यह आलेख तो एक नमूना है, एक संकेत है इस दिशा की ओर, इसी निवेदन के साथ समाप्त करता हूँ।

सन्दर्भ :

१. आचार्य श्री तुलसी, माणक महिमा, पृ० २५
२. वही, पृ० ३५
३. वही, पृ० ३६
४. वही, पृ० ४२
५. आचार्यश्री तुलसी, डालिम चरित्र, पृ० ३८
६. वही, पृ० ४४
७. वही, पृ० ५२
८. वही, पृ० ६८
९. वही, पृ० ६८
१०. वही, पृ० ६८
११. आचार्य श्री तुलसी डालिम चरित्र, पृ० ७५
१२. ,, ,, ,, ,, पृ० ३३
१३. ,, ,, ,, ,, पृ० ५३
१४. ,, ,, ,, ,, पृ० २७
१५. ,, ,, ,, ,, पृ० ३४
१६. ,, ,, ,, ,, पृ० ३६
१७. ,, ,, ,, ,, पृ० ७६
१८. ,, , ,,, ,, पृ० ७६
१९,२०. ,, ,, ,, ,, पृ० ४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

(लेखक-परिचय)

लेखक	पता
१. मुनि श्री सुखलालजी—	जैन मुनि
२. डॉ० सियाराम सक्सेना—	निवास—"सेवाधाम" ३ग/१६ हाउसिंग बोर्ड, शास्त्रीनगर, जयपुर (राज०) ३२००१६
३. डॉ० देव कोठारी—	निदेशक—साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर ३१३००१ निवास—१३, मेहता जी की खिड़की, मालदास स्ट्रीट, उदयपुर
४. डॉ० हरिशंकर पाण्डेय—	व्याख्याता, प्राकृत भाषा एवं साहित्य विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं—३४१३०६
५. डॉ० मनमोहन स्वरूप माथुर—	प्रवक्ता, राजस्थानी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर! निवास—युनिवर्सिटी बंगला, सी-सेक्टर ११, एजेन्सी पोस्ट ऑफिस के पास, जोधपुर (राज०)
६. डॉ० मूलचन्द सेठिया	२७६, विद्याधर नगर, जयपुर, (राज०)
७. साध्वी कानकुमारीजी	जैन साध्वी
८. मुनि श्री मधुकरजी—	जैन मुनि
९. सुश्री निरंजना जैन—	शोध-छात्रा, प्राकृत भाषा एवं साहित्य विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं (राज०) ३४१३०६
१०. साध्वी चंदनबालाजी—	जैन साध्वी
११. साध्वी निर्वाणश्रीजी—	जैन साध्वी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. डॉ० किरण नाहटा— व्याख्याता, हिन्दी विभाग,
राजस्थान राजकीय महाविद्यालय,
जैसलमेर
निवास—नाहटा निकुंज,
७ ग ५—दक्षिण विस्तार
पवनपुरी, बीकानेर (राज०)

१३. डॉ० परमेश्वर सोलंकी— सम्पादक, तुलसी प्रज्ञा,
जैन विश्व भारती संस्थान,
लाडनूं—३४१३०६

१४. साध्वी जिनप्रभा— जैन साध्वी

१५. साध्वी पीयूषप्रभा— जैन साध्वी

१६. डॉ० लक्ष्मीकांत व्यास— शोध अधिकारी, साहित्य-संस्थान,
राजस्थान विद्यापीठ,
उदयपुर (राज०) ३१३००१
निवास—दुर्गा निवास, ३२/न्यु फतहपुरा
उदयपुर (राज०)

१७. समणी स्थितप्रज्ञा— जैन समणी

१८. समणी प्रतिभाप्रज्ञा— जैन समणी

१९. डॉ० उमाकांत गुप्त— व्याख्याता, हिन्दी विभाग,
डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर (राज०)

२०. डॉ० एन० एल० कल्ला— सह-आचार्य, हिन्दी विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर (राज०)
निवास—मातुश्री, न्यू चांदपोल रोड़
जोधपुर (राजस्थान)

२१. डॉ० के० के० शर्मा— प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा (उ० प्र०)
निवास—सेन्ट्रल बैंक लेन,
बी-४७, कमला नेहरू नगर,
आगरा (उ० प्र०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org